वे अभागे

{[१५]}

लेखक की अन्य कृतियाँ

उपन्यास

१	निर्वासिता	३)
२	समाज की वेदी पर	१।)
३	साक़ी	१)
४	रूप-रेखा	१)
५	ज्योतिर्मयी	२)
६	गरीबी के दिन	२)
७	ज्वाला	१)
८	सविता	२)
९	मीमांसा	२)
१०	अभिशाप (प्रेस में)	
११	दर्द की तस्वीरें (प्रेस में)	

संपादित

१	रहिमन-सुधा	॥)

अलंकार

१	काव्यालंकार दीपिका	॥)

जीवनी

१	मुसोलिनी का बचपन	।-)

वे अभागे

अनूप साहित्यरत्न

युगान्तर-साहित्य-मंदिर
भागलपुर सिटी : बिहार

प्रकाशक
युगान्तर-साहित्य-मन्दिर
भागलपुर सिटी : बिहार

प्रथम संस्करण अगस्त १९३८
मूल्य—ऐंटिक पेपर सजिल्द ३॥)
सस्ता संस्करण २॥)

मुद्रक
बाबू मानिक लाल
युनाइटेड प्रेस लिमिटेड
भागलपुर सिटी
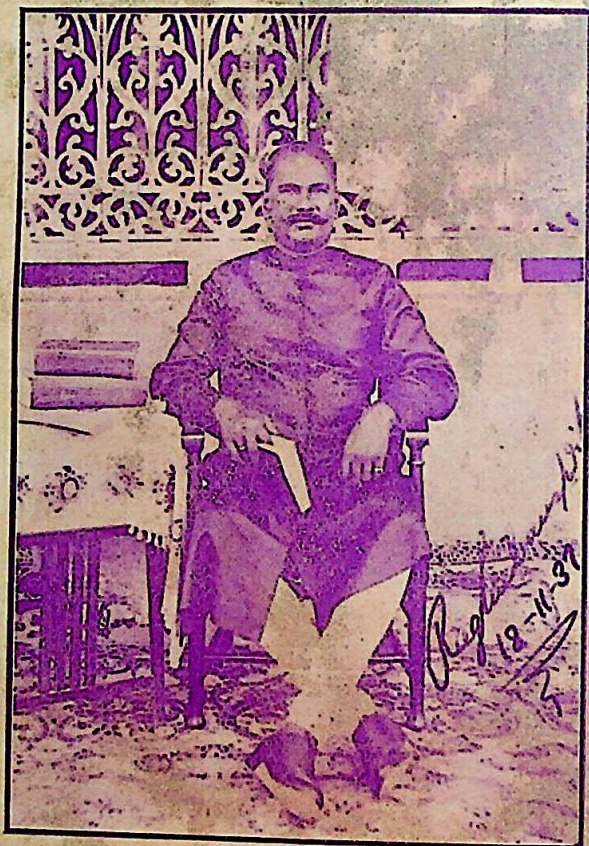
बाबू रघुवंश प्रसाद सिंह

यह कृति सादर समर्पित है—

कुरसेला इस्टेट—पूर्णिया के स्वत्त्वाधिकारी समादरणीय

श्रीमान् बाबू रघुवंशप्रसाद सिंह जी को

जिनके भाव-प्रवण हृदय में उन अभागों के प्रति दर्द है, जो सब तरह से संत्रस्त हैं, जिनकी वदान्यता अपनी किसी परिधि में सीमित नहीं रहा चाहती; जिन्हें हिन्दी-साहित्य के उन्नयन का आंतरिक अनुराग है और जिनकी मंगलमयी प्रेरणा से मैं इस 'वे अभागे' को हिंदी-संसार के सामने उपस्थित करने में समर्थ हो सका।

—'अनूप'

वे अभागे—प्रस्तुत कृति उन अभागों का सजीव चित्र है जिन्हें हम इस भौतिक जगत में अपनी खुली आँखों देख तो लेते हैं, पर जिन्हें देखकर भी देखना पंसद नहीं करते और जिनके प्रति सोचने-सोचने को होकर भी हम अपने को सोचने का अवसर नहीं देना चाहते—जो स्वयं दलित हैं, त्रस्त हैं, पतित हैं, उपेक्षित हैं और जो हमारी सहानुभूति के अधिकारी हैं। मैंने उन्हें जैसा पाया—जैसा समझा, हू-ब-हू वैसा ही उन्हें व्यक्त करने की चेष्टा की, अपनी ओर से कुछ भी जोड़ना-घटाना अपेक्षित न समझा और न यही चाहा कि मैं अन्धकार को प्रकाश के रूप में व्यक्त करूँ और प्रकाश को अन्धकार के रूप में। समझता हूँ, पाठकों का वह वर्ग जो जीवन में प्रकाश के सिवा और कुछ देखना पसंद नहीं करता, अवश्य संक्षुब्ध हो उठेगा; पर दूसरा वर्ग, जो जीवन के लिए प्रकाश और अन्धकार—दोनों को अनिवार्य समझता है, आशा है, प्रसन्न नहीं तो कम-से-कम असंतुष्ट भी नहीं होगा। मैं इसी आशा और विश्वास को लेकर प्रस्तुत कृति आपके सम्मुख रख रहा हूं। हाँ, इसकी पांडुलिपि मेरे मित्र 'बीसवीं सदी' संपादक बाबू तारकेश्वर प्रसाद ने प्रेस जाने के पूर्व एक बार देख लेने की कृपा की है और इसका प्रूफ प्रियवर तपेशाचन्द्र त्रिवेदी ने देखकर मुझे अनुगृहीत किया है, अतएव इन दोनों सज्जनों के प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापनकर उनकी गुरुता को हल्का नहीं करना चाहता। अवश्य इसके प्रकाशन में पर्याप्त से अधिक विलंब हुआ, जिसके लिए मुझे आंतरिक खेद है।

नैनीताल-प्रवास

१४-५-३८

—अनूप

वे अभागे

—एक—

उस दिन चितपुर रोड पर काफी भीड़ जमी थी। कारण था, रास्ते पर ही एक बैलगाड़ी का बैल, न जाने क्यों, जुते हुए ही, थक-थका कर बैठ गया था। उसके मुँह से बेतरह फेन बह रहा था, पर उसका भाग्य-विधाता—उसका मालिक गाड़ीवान उस पर बेरहमी से साँटा चला रहा था। फिर भी उस बैल में उठने की इतनी भी स्फूर्त्ति न थी कि, वह मार खाकर अपने प्रभु को संतुष्ट करने को उठ खड़ा हो। और यही कारण था कि, दोनों ओर के पैसेंजर रुक-से गए थे। गाड़ी, बसें, मोटरें और ट्राम, जो जहाँ थे, वहीं रुक गए थे। गाड़ीवान ने अपने जानते काफी परिश्रम किया, वह पसीने से तर था, उसकी आँखें आग उगल रही थीं, फिर भी उसकी बुद्धि फेल हो रही थी। भीड़ जम गई थी, पुलिस उसे हटाने की कोशिशों में लगी थी—आखिर, भीड़ कमी नहीं, जमती ही गई। बेचारी पुलिस अपने काम में कामयाब न हुई।

इसी बीच में, भीड़ में से, कोई चिल्ला उठा—काफी जोर से—'पाकेटमार' !

हाँ, पाकेटमार ! लोग चौकन्ना होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे । किसी ने अपनी जेबें टटोलीं, किसी ने अपने साथियों से कहा—देखा न ! तुम्हें विश्वास ही नहीं होता ! कलकत्ता है, भैया कलकत्ता ! यहाँ तो दिन दहाड़े चोरी होती है—आँखों में धूल झोंक कर !

और वह पाकेटमार पकड़ा गया । बड़ा हट्ठा-कट्ठा जवान था वह । उसकी लंबी मूँछें बड़ी शानदार दीख रही थीं । शरीर पर एक फटा-चिटा कुर्त्ता था मैला जैसा । उसकी आँखें चमक रही थीं पर वह पकड़ा जाकर भी, जैसा उदास होना चाहिए था, वैसा न था ।

और उसी के सामने एक नवयुवक खड़ा था । उसी की जेब कटी थी । उसके मुँह पर रोष न था—दया थी । वह परिस्थिति को समझने की चेष्टा कर रहा था । आज उसने बड़ी मुश्किल-मसक्कत से रुपए जुटाए थे—कुल ८५।—) । जिनमें से अधिकांश अस्सी के करीब जमा करवाने थे—युनिवर्सिटी की फीस के रूप में और शेष उसके दूसरी काम के थे ।

उसके साथी ने कहा—देखा नवीन, मैं तो कह रहा था न, रुपए संभाल कर रख छोड़ो ! यहाँ तो इन पाकेटमारों के चलते नाकों दम है । इन बदमाशों के चलते भले मानसों की एक न चलती । और यह पुलिस.......!

पर वह—नवीन—कुछ सोच रहा था, मानो उसने साथी का कहा सुना ही नहीं—या सुना भी तो कुछ समझा ही नहीं। शायद वह सोच रहा था—आखिर वह बेतरह पकड़ा गया। कोई आवश्यक काम होगा आज उसे रुपए का। नहीं तो.......नहीं तो वह यह घृणित कार्य करने पर क्यों उतारू होता ?

और वह बोल उठा—यह बे-गुनाह है। मेरी जेब कटी नहीं—देखो, सुरक्षित है। क्यों इसे पकड़े हुए हो।

"नहीं बाबू"—भीड़ में से, जो उसके पास था, बोल उठा—"मैंने अपनी आँखों देखा है। किस तरह उसने जेब में हाथ रखा और किस तरह उसने सभी की आँखें बचा कर आपकी जेब से एक बंधा-सा रूमाल निकाला। आप अपनी जेब तो टटोलिए !"

और उत्तर की प्रतीक्षा में वह बोलनेवाला उसकी ओर अप्रत्याशित दृष्टि से निहारने लगा। उसकी आँखें सहानुभूति से चमक रही थीं। उसे बड़ा संतोष था—आखिर हो क्यों न ? उसने एक पाकेटमार को आज पकड़ा था न।

पर, नवीन ने साफ कह दिया—वह बेचारा बेगुनाह है ! क्यों इसकी मिट्टी पलीद कर रहे हो ? "जाओ, भाई, रास्ता नापो !"—उसने उस पाकेटमार से कहा। "छोड़ दो इसे !"—वह पुलिस से बोल उठा, जिसने बड़ी मुस्तैदी से उसे पकड़ रखा था।

पुलिस के कांसटेबल ने सोचा—सोचा होगा—कौन यह झंझट मोल ले। जब जेबवाला खुद कह रहा है—उसके रुपए गए नहीं। आखिर उसने उसे छोड़ दिया।

पाकेटमार ने एक वार उसकी ओर देखा—फिर वह दूसरी ओर भीड़ को फाड़ता हुआ आगे को बढ़ चला। इतने में बैल भी उठ खड़ा हुआ। भीड़ छँट गई। ट्रामें निकल गईं। मोटर-बसें अपने गंतव्य पथ पर बढ़ चलीं।

वह मनुष्य जिसने पाकेटमार को पकड़ा था, नवीन से बोल उठा—मैंने अपनी आँखों देखा था—रुपये उड़ाते हुए—एक छोटा सा गट्ठर—रूमाल में बँधा। भला, आप अपना रूमाल तो दिखलाइए ? आपने कैसे उसे छोड़ दिया। आज वह बड़े घर की हवा जरूर खाता—नहीं अधिक तो छः महीने तो जरूर।

नवीन ने हँसते हुए कहा—मैं तो जेब में कुछ रखता ही नहीं। रूमाल रखने की आदत ही नहीं है मुझे।

इन उत्तरों को सुनकर वह एक तरह से झल्ला उठा—और वह बड़बड़ाता हुआ अपने रास्ते की ओर चल पड़ा।

नवीन अब कहाँ जाय ? वह सोच रहा था—कालिज जाने से लाभ क्या ? आज तो उसे रुपए जमा करने थे, पर रुपए उसके पास और हैं कहाँ ? वह कुछ चिंतित हो उठा।

"हाँ तो अब तुम क्या करोगे, नवीन !"—उसका साथी बोल उठा, और उत्तर की प्रत्याशा में उसके मुँह की ओर देखने लगा।

"मैं क्या करूँगा ?"—नवीन ने कहा, "देखता हूँ, मेरा कालिज जाना अब व्यर्थ है। मैं लौट चलता हूँ अपने घर की तरफ; बंदोवस्त तो कुछ करना ही होगा।"

"यह तुम्हारी कमजोरी थी, नवीन ! तुम्हें उस समय हो क्या

गया था ? क्यों उसे छोड़ दिया ? इतने-इतने रुपए ! भला यह भी कोई भावुकता है ? तुम तो, देखते हैं, अधिक भावुक होते जा रहे हो।"

उसने देखा—नवीन का मुँह सहसा उदास हो चला। वह हँसमुख प्रकृति का व्यक्ति था। उदासीनता बहुत कम उसके पास फटकने पाती थी और जब कभी वह अधिक उदास दीख पड़ता था, उस समय या तो वह किसी गहन विषय पर अधिक सोचा करता था और या वह अपनी अवस्था पर। इस समय उसके मस्तिष्क में दो बातें बहुत जोर से घूम रही थीं—एक तो यह कि लोग ऐसा कुकर्म क्यों करते हैं ? उन्हें इस तरह के गर्हित कार्य्यों से, जिनसे उन्हें अपमानित, तिरस्कृत होना पड़ता है—क्या मनस्ताप न होता होगा ? क्या वे अपनी अवस्था पर विचार न करते होंगे ? अवश्य आज उसे कोई आवश्यक कार्य आ पड़ा होगा, नहीं तो वह ऐसा कार्य करता ही क्यों ? मनुष्य का पशु बन जाना········! और यह पेट !········हां, आखिर पेट के लिए ही तो उसे यह गर्हित कार्य करना पड़ा होगा।········ और दूसरी बात यह थी कि, अब वह फिर रुपए का प्रबन्ध करे तो कहां से ? आज ही तो उसे अपने रहने का मकान दूसरों के हाथ गिर्वी रखना पड़ा था। कौन देगा उसे फिर वे रुपए ? इधर फीस बिना चुकाए परीक्षा में बैठ सकेगा वह क्यों कर ? इतने दिनों का परिश्रम !····उसकी आकाँक्षा—और उसका वह भविष्य········ जिसके लिए लोग सतत बेचैन रहते हैं—और दूसरों को छलकर,

धोखा देकर, खून से अपने हाथों को रंगकर ....अपना भविष्य निर्माण करते हैं !

पर सोचते-सोचते ही उसकी उदासीनता दूर होती गई। उसके मुँह पर एक हल्की-सी ज्योत्स्ना की रेखा फूट पड़ी और वह संतोष की सांस लेकर बोल उठा—छोड़ता नहीं तो क्या करता ? आज रहा होगा उसे कोई आवश्यक कार्य। अगर इन रुपयों से उसका कुछ भी हित हुआ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। किसी तरह तो मैं दूसरों के काम आ सकूँ ?

वे दोनों गप्पें करते हुए अपने पथ पर बढ़े चले जा रहे थे। इतने में नवीन ने देखा—कालेज के पास वे दोनो पहुंच गए हैं। वह जरा रुक-सा गया। उसका साथी भी जरा रुका और वह बोल उठा—तुम जिस पहलू से विचार रहे हो, नवीन ! वह चाहे तुम्हारे ख्याल से जो हो, पर मैं तो इसे अच्छा नहीं समझता। यह तो उन बदमाशों को प्रश्रय देना है। और तुम जैसे लोगों का प्रश्रय पाकर ही इन बदमाशों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

"यह प्रश्रय नहीं है ब्रजेंद्र ! हो भी, पर इसके लिए मुझे खेद नहीं है। तुम नहीं समझते हो, ब्रज ! गर्हित कार्य की आकांक्षा किसी को भी नहीं हो सकती, पर लोग गर्हित कार्य करते हैं और शायद उन्हें ऐसा करने को वाध्य होना पड़ता है। अवश्य इसमें परिस्थिति का हाथ है। सभी आदमी इतने बलवान नहीं होते कि वे अपनी परिस्थितियों का मुकाबला कर सकें। बड़े

साहस का काम है यह । और सभी से साहस का काम नहीं हुआ करता। वैसी हालत में, जब मनुष्य दुनिया में अपने लिए कहीं ठौर-ठिकाना नहीं देखता—कोई उसे सहायता करने को तैयार नहीं और न अपनी शक्ति से ही अपनी परिस्थितियों को सुधारने में वह अपने को समर्थ पा सकता है—उसी समय—हां, ठीक उसी समय, उसे ऐसा गर्हित कार्य करना पड़ता है। आखिर, वह वैसा न करे तो क्या करे ?"

व्रजेंद्र ने वहुत कुछ सोचा इसके उत्तर में, पर उससे कुछ कहा न गया। उसे आज क्लास एटेंड करने में काफी देर हो रही थी। वह जरा कुछ बढ़ते हुए बोल उठा—अभी तो मुझे इजाजत दो और इस विषय को किसी दूसरे दिन के लिए रख छोड़ो। तुम, देखते हैं, जैसा तार्किक होते जा रहे हो, और नित्यप्रति जिस भावुकता से काम ले रहे हो कि तुम्हारे लिए संसार चलाना; आगे चल कर दुष्कर हो जायगा।

वह इतना कह कर रुक गया। मानो वह कहने को कुछ और ही सोच रहा था, पर उसने उस समय यह कहना कुछ प्रासंगिक न समझा। वह कहने जा रहा था—दरिद्र होकर भी इसकी धन से यह उपेक्षा है! और यदि यह कहीं धनी ही होता तो न जाने रुपयों का यह और क्या करता!

व्रजेंद्र आगे की ओर बढ़ चला। कुछ दूर बढ़ते ही वह बोल उठा—"आखिर, अब क्या करोगे रुपए का जुगाड़.........?"

"हाँ,रुपए का जुगाड़ तो करना ही होगा।"—नवीन ने अन्य-

मनस्क होकर कहा—"देखूँ, यदि हो सका तो अच्छा ही। नहीं तो इसबार परीक्षा में नहीं बैठूंगा। इसके सिवा और कर ही क्या सकता हूँ ?"

व्रजेंद्र अपनी राह पर बढ़ चला। पर, उसके मस्तिष्क में अभी तक नवीन की बात ही चक्कर काट रही थी। वह नवीन को समझने का प्रयत्न तो अवश्य कर रहा था, पर आज वह (नवीन) एक पहेली ही बन कर रहा।

इधर नवीन कुछ देर तक खड़े-खड़े उसकी ओर ताकता रहा। जब वह आँखों से ओझल हो गया, तब वह भी पीछे की ओर मुड़ चला। वह अब कहाँ जाय ? क्या करे ? यही उसकी चिंता का विषय रह गया था। वह घर की ओर ही चल पड़ा।

—दो—

नवीन अपने पथ पर बढ़ चला। अभी उसका घर डेढ़ मील से और कुछ अधिक था।

वह ज्यों ही कुछ दूर आया था कि, एक भिखारिन उसकी ओर बढ़ चली। नवीन ने देखा—शायद वह उससे ही कुछ मांगने को बढ़ी चली आ रही है। पर उसकी जेब तो खाली पड़ी थी, आज वह उसे देगा और क्या ? उसका हृदय विषाद से मानो छटपटा-सा उठा। आज वह रिक्तहस्त है। अवश्य उसके पास एक पैसा भी होता तो वह देने में आगा-पीछा न करता। वह दुखियों को देना जानता था। वह सोच रहा था, यदि भिखारिन कहीं दूसरी ओर मुड़ जाय तो अच्छा। भगवन्! भगवन्! रक्षा करो!

पर, वह भिखारिन उसके पास आ ही गई। फटे-चिटे कपड़े मैले, दुर्गंध-पूर्ण! गढ़े में धँसी आँखें उसकी गरीबी और दीनता प्रकट कर रही थीं। चेहरा विषण्ण—मुर्झाया-सा। देह पर काई बैठी हुई—मानो वर्षों उसे नहाने का अवसर हाथ नहीं लगा है। सूखी-सी, अधमरी-सी, निर्जीव-सी, वेदना से आहत! दैन्य की मारी! हाय, भगवन्! दीन दयाल! दयानिधान!

वह उसके सामने आ खड़ी हुई और दीनता के स्वर में बोल उठी—छटपटाती-सी बोल उठी—बिटिया मर रही है, बाबू! उसे छोड़ आई हूँ। दर्द है जोर का! घड़ी-आध घड़ी में बच्चा जनमने को है। आज पांच दिन हुए—दर्द है—बेचैन है! दम घुट रहा है; पर, बच्चा नहीं निकलता! उपाय कर दो, बाबू!

और वह उसके पैरों से लिपट गई।

दर्शकों ने एक बार नवीन की ओर और दूसरी बार भिखारिन की ओर देखा—चल पड़े वे। पर, किसी ने आह तक न भरी, और आह भरना तो दूर रहा, उसकी ओर देखना भी गवारा न किया।

हां, नवीन आज निःसंबल था। उसकी जेब कट चुकी थी। आज वह खुद विषण्ण था। पाकेटमार ने लूट जो लिया था!

उसने भिखारिन को अपने पद-तल से उठाते हुए कहा—"छोड़ दो! छोड़ दो मुझे! और किसी को देखो—मेरे पास कुछ नहीं है—विश्वास करो—रहता तो मैं जरूर देता! मैं भी तुम जैसा हूँ—देखो—और किसी को।"

"पाँच दिन से देखती आ रही हूँ, राजा! किसी ने आँख उठा

कर न देखा—देगा कौन? कौन देता है इस दुखिया को? बिटिया मर जायगी, बाबू! यही एक सहारा थी! यही मेरे पाप की आखिरी कमाई बची थी, बाबू!"

नवीन का हृदय डोल गया। वह भावुकता के लिए बदनाम था पहले से ही अपने साथियों के बीच। पर, आज वह निःसहाय था। रहता आज अगर उसके पास तो वह भिखारिन को खुश कर देता—निहाल कर देता। वह सोचने लगा—पाप की कमाई............! उसकी बेटी............पाप की कमाई! कितना पतन है! हाय री मानवते!

और वह बोल उठा—"तुम्हारे जमाई कहाँ हैं? वह क्यों नहीं कुछ प्रबंध करता है?"

"जमाई?"—वह बोल उठी—"हम गरीबिनों के जमाई कहाँ, बाबू!" वह बोल तो गई, पर उसका चेहरा लज्जा से मानो सिकुड़ सा गया।

वह सरलता से बोल उठा—"फिर तुम जो कहती हो—बच्चा होने वाला है?"

भिखारिन लजा कर काठ हो गई। वह क्या बोले?—क्या कहे वह नवीन को? आखिर उसे कहना पड़ा। नवीन सरल प्रकृति का था—वह नहीं समझ सका कि, भिखारिन क्या कह रही है। उसने कहा—"गरीबों की आबरू............इसकी कीमत ही क्या ठहरी! इस बिगड़े जमाने में बड़े लोग यह भी नहीं समझते कि गरीबों की भी इज्जत होती है। उनकी आँखें

हम भिखारिनों पर भी…………।"

नवीन बीच ही में बोल उठा—"और सुना नहीं चाहता। पर…… मैं तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। इसे सच समझो। है नहीं कुछ मेरे पास। पर ……एक बात कहूं—करोगी ?"

भिखारिन आशा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए बोल उठी—"क्या कहते हैं, बाबू !"

"उसे क्यों नहीं किसी अस्पताल में ले जाती हो ? वहाँ तो आसानी से बच्चा पैदा हो जायगा !"

"हसपताल !"—वह खिन्न होकर बोल उठी—"हसपताल में गई थी बाबू ! पर, वहां भी तो टके का ही खेल है ! हम गरीबनों की तकदीर तो देखो—हीरा उठाते कोयला निकल पड़ता है।"

भिखारिन फूट-फूट कर रोने लगी । नवीन से कुछ करते न बना। वह चिंता में पड़ा था। न जाने, उसके मस्तिष्क की क्या गत हो रही थी। वह सोच रहा था—यदि आज मेरे पास रुपए रहते तो अवश्य मैं इसकी तकलीफों को हलका करता । मैंने बुरा किया—रुपए छोड़कर। क्यों मैंने जान-बूझकर रुपए छोड़ दिए ? क्यों मैं उतने आदमियों के बीच झूठ बोल गया ? क्यों मैं आज फीस चुकाने से चूक गया ? माँ क्या कहेगी ? उस पर कैसी बीतेगी ? आह ! पचासी रुपए पाँच आने ! कितनी बड़ी रकम है ?…………

हठात् वह बोल उठा—"अगर तुम्हें रुपए का प्रबन्ध कर दूं तो क्या तुम अपनी बेटी को अस्पताल ले जाओगी ?"

वह कुछ देर तक रुकी रही, फिर बोल उठी—"अच्छा, ले जाऊँगी।"

अब नवीन के लिए एक नई समस्या आ खड़ी हुई। वह अभी रुपए कहां पायगा? घर में तो ऐसा कुछ धरा नहीं है जो जाकर वह उठा लावे। और आज उसे तो पचासी रुपए पांच आने, अपने मकान को, जो उसके पास आखिरी सहारा था, गिरवीं पर रख कर लेने पड़े थे। इसके सिवा उसके पास था ही क्या? तब फिर वह क्या करेगा?

वह कुछ देर के बाद अन्यमनस्क होकर बोल उठा—"फिर तुमसे भेंट होगी कहाँ? मगर मैं आऊँगा जरूर रुपए लेकर। तुम अपना ठिकाना बता सकती हो?"

"हाँ, बता सकती हूँ, बाबू!"—भिखारिन बोल उठी,—"पर क्या आप वहाँ जा सकेंगे? बड़ी गंदी जगह है। उस गली में भिखारियों को छोड़कर कोई भला आदमी कभी आता-जाता नहीं।"

"यों तो तुम्हें विश्वास न हो मेरे आने का। पर तुम्हें कहे रखता हूँ—मैं आऊँगा जरूर! मैं झूठ नहीं बोलता। तब इतना जरूर है कि, मुझे आने में देर हो—पर, आऊँगा शर्तिया! चलो—तुम अपना ठौर-ठिकाना बता दो।"

भिखारिन को पहले शायद विश्वास न था, पर इस बार उसे विश्वास हुआ कि, यह जो कुछ कह रहा है, सच कह रहा है। इसे वहाँ ले चलना ठीक न होगा। आख़िर भले आदमी ठहरे। ऐसी गलीज जगह में, जहाँ मुफलिस, अभागे, भिखारी, गिरहकट

और न जाने कैसे-कैसे चोर, उचक्के, गुंडे रहते हैं—ले चलना, और एक भले आदमी को—ठीक नहीं होगा। दूसरे भिखारी समझेंगे—इसीसे मेरी बिटिया की साँठ-गाँठ थी। कितनी बदनामी होगी? लोग हँसेंगे—कीचड़ उछालेंगे। क्यों इनकी आकबत बिगाड़ूँ? आखिर, सोचकर, वह बोल उठी—"मैं यहीं इसी गाछ के नीचे बैठी रहूँगी, बाबू, आप जबतक न आवेंगे, बैठी रहूँगी!"

"पर, यहां रहना क्या तुम्हारे लिए ठीक होगा? मैं कब आऊँ कब न। फिर यहां बैठने से लाभ ही क्या? कम-से-कम घर जाने पर तुम अपनी बेटी की हिफाजत तो कर सकोगी। चलो, तुम मेरे साथ। मैं तुम्हारी जगह अपनी आँखों देख लूँगा—और मैं वहीं तुम्हें रुपए भी दे जाऊँगा। और यदि हो सका तो किसी दाई को भी प्रबंध कर लेता आऊँगा।"

भिखारिन और न जाने क्या कुछ कहने जा रही थी, पर बीच ही में उसे बोलने का अवसर न दे वह बोल उठा—"मैं तुम्हारी एक न सुनूंगा। चलो तुम अपने ठिकाने पर। मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।"

भिखारिन की आँखें छलछला आईं और देखते-ही-देखते उसके आँसू बह चले।

वह अपने पथ पर चल पड़ी। नवीन भी उसके साथ हो लिया।

कई पेचीदी गलियों को पार कर वे दोनों ऐसी गली में आ गए जहाँ गंदगी बड़ी बुरी तरह फैल रही थी। अब तो नवीन से आगे बढ़ने का साहस ही नहीं होता। फिर भी वह अपने साहस

को बटोर कर भिखारिन के साथ बढ़ता ही चला। दुर्गंधियों से उसका मस्तिष्क भिन्ना उठा था, पर वहाँ दूसरा उपाय ही क्या था ? भिखारिन इसीलिए तो उसे ले चलने को सहमत न थी। नवीन ने अपनी धोती की कोर संभाली और उसी से वह अपनी नाक को दबाए रहा। कुछ ही देर में भिखारिन एक जगह पर आकर खड़ी हो गई।

नवीन ने वहाँ का दृश्य देखा—देखा अपनी आँखें खोल कर। उफ़् ! ऐसी जगह में भी आदमी रहते हैं ? शायद सुअरों का खुहारं भी इससे बुरा न होता होगा ! हाय ! मनुष्य होकर ये सब कितने पशु बन गए हैं !

नवीन ने देखा—कोई पचासों की संख्या में, कोढ़ी, लूल्हे, लंगड़े, अपाहिज, रोगी, अधभूखे, अधमरे ढेरों जैसे लुढ़के पड़े हैं। कोई कराह रहा है, कोई आहें भर रहा है, कोई भगवान का नाम दर्द भरी आवाजों में ले रहा है, कोई भूख-भूख का शोर मचा रहा है, कोई पानी के लिए तरस रहा है—कहीं मिट्टी के टूटे बर्त्तन पड़े हैं, कहीं गंदी-टूटी रिकाबियां हैं, कहीं बरसों न मले गए आलमोनियम या टीन के पात्र बिखरे पड़े हैं, कहीं गुदड़ी—न जाने कैसी गंदी गुदड़ी—धूप में पड़ी है—एक छोटा-सा टूटा-फूटा-सा, ईंटे बिखरी हुईं, मसाले झड़े हुए, सील से तर—मकान है, मकान क्या, किससे उपमा दी जाय उसकी ? मकान कहना—मकान की हँसी उड़ाना है—हाँ तो मकान ही कहूँ ! ऐसा मकान था वह। न कोठरी न दरवाजे। न दीवारें ही पूरी उठी हुईं—और उसी

के सामने चार-पाँच झुरमुठ—उन्हीं भिखारियों-से प्राणहीन वृक्ष हैं। और उनके नीचे, उसी अधछाया में कोई कराह रहा है, कोई आकाश की ओर देख रहा है, कोई बैठा अपने घावों पर से मक्खियों को हटा रहा है! मक्खियों का भी तो ठिकाना नहीं; और वे अधिक संख्या में हों तो क्यों न? घाव, पीव, मवाद, गंदगी और उनकी डालों में टंगे जूठे-अधजूठे, गंदे, कालिख से भरे मिट्टी के बर्त्तन जो लटक रहे हैं। उफ़्! कैसा वीभत्स दृश्य था वहां का! कितना दैन्य! हां, दीनता मानो नाच रही थी, भैरव अट्टहास कर रहा था, मृत्यु झाँक रही थी, पिशाच की मानो वह नाट्य-शाला थी!

नवीन ने इसके पहले कभी भी ऐसा दृश्य न देखा होगा। आज वह कहां पहुँच गया है? कालेज का एम० ए० का विद्यार्थी! क्या देख रहा है वह? क्या कहीं अपनी पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे दृश्य का वर्णन पढ़ा होगा?

भाव-प्रवण नवीन की आंखों से आँसू बह चले। विधाता का विधान इतना कठोर है—इतना निर्मम! उफ़्! इन दुखियों का कौन सहारा है? क्यों वे जी रहे हैं? मृत्यु भी आज इनका बोझ हल्का नहीं कर सकती? मृत्यु तो बड़ी आसान है—वह आती है और उठाकर ले जाती है। तो वह आज कहां है? क्या वह भी ऐसी जगह आने में डरती है? आह! यदि मृत्यु आती—हाँ, आती तो कम-से-कम इनके कष्टों का शमन तो होता। हाय री मृत्यु!

उसने भिखारिन से पूछा—तुम्हारी बिटिया कहाँ है ?

उसने एक पेड़ की ओर इशारा किया। गंदे फटे-चिटे कपड़े से घिरा हुआ—अंदर से कोई चीख उठा—भिखारिन ने कहा—"वही चीख रही है बाबू !"—उसकी आंखों में बेबसी नाच उठी।

नवीन ने एक बार उस ओर देखने का साहस किया। देखा—फटे-चिटे घिरे हुए कपड़े की आड़ में—एक अल्प-वयस्का—शायद १०-११ की होगी—बालिका लेटी पड़ी है। उसकी आधी धड़ कपड़े की आड़ में है और उसका मुंह प्रत्यक्ष दीख रहा है। उफ़् ! अवश्य वह बुरा नहीं है—पर कितनी कमसीन ! और आज··· ·· सौर में ! पतन ! ··· · ···उफ़् ! पतन ! आखिर गरीबों की इज्जत ठहरी !

भिखारिन अपनी बेटी की चीख सुन कर दौड़ पड़ी। नवीन ने देखा—शायद वह कुछ क्षण की मिहमान बन रही है। अब उसने पल-भर के लिए भी ठहरना उचित न समझा। वहां मुश्किल से वह पांच मिनट ठहरा हो, पर इन्हीं कुछ मिनटों में उसे आज जैसा अनुभव हुआ, शायद ही इसके पहले उसे अनुभव हुआ हो। वह बिना कुछ भिखारिन की सुने, तीर की तरह वहां से चल पड़ा और कुछ ही समय के बाद वह उन टेढ़ी-मेढ़ी गलियों को पार कर सदर सड़क पर आ पहुँचा। सौभाग्य से एक रिक्सा वाला वहीं खड़ा-खड़ा चढ़ने वाले की प्रतीक्षा कर रहा था। नवीन वहां आ पहुँचा और उससे कहा—"ले चलो मुझे चितरंजन एवेन्यू—न०·······। जल्द पहुंचा दो—इनाम मिलेगा।"

रिक्सा वाला उसे चढ़ा कर जान लेकर भागा। इनाम का प्रलोभन जो था। पर, नवीन के पास आज इनाम की कौन कहे साधारण भाड़ा चुकाने को भी दाम नहीं थे।

—तीन—

नवीन रिक्से पर बैठ तो गया, पर उसने यह नहीं सोचा कि, आज वह क्या करने जा रहा है। नवीन के लिए यह पहला और नया अवसर था कि, आज वह दूसरों के सामने हाथ पसारने जा रहा है। उसने कभी मांगना सीखा ही नहीं था; नहीं तो अवश्य कुछ ऐसे उसके मित्र थे, जिनसे वह अपना काम चला सकता था, और यदि उसे मांगना ही रहता तो आज वह अपने मकान को गिरवीं पर रख कर रुपए कर्ज न लेता। पर, आज उसका दर्प, उसका वह अभिमान—न जाने कहां विलुप्त हो गया था। आज उसने अपने मस्तिष्क को यह सोचने का भी अवसर न दिया कि, मांगना बड़ी बुरी वस्तु है। उसका अहंकार—बरसों का पला अहंकार जिस पर उसे अभिमान था, एक झटका पाकर छिन्न-भिन्न हो गया। यदि वह अपने मस्तिष्क को जरा भी सोचने का अवसर देता तो वह अपने जानते ऐसे गर्हित कार्य को करने के लिए कदम न

बढ़ाता। पर, आज वह इतना कठोर—इतना निर्मम बन रहा था कि, वह अभिमान को अपनी ओर बढ़ने ही न देता था। यद्यपि उस अभिमान का आभास अपनी जगह से उसकी ओर झांक रहा था अवश्य। उसने वह झांकी देखी—और हँस दिया। मानो आज वह स्वयं उसका उपहास कर रहा था जिस पर उसका गुमान था। उसने वह झाँकी देखी, फिर अपने को संभाला—और अधिक बल देकर—मस्तिष्क को मानो बेचैन बना कर अपने कर्त्तव्य की साधना में प्रवृत्त हुआ। उफ्! कर्त्तव्य कितना कठोर होता है!

पलकों में ही मिनटों का पथ शेष हुआ। रिक्सा वाला बोल उठा—"यही मकान है न बाबू!"

रिक्सा खड़ा हो गया। रिक्सा वाला जरा अलग हट कर दम लेने लगा। वह काफी हांफ रहा था। वह हांफते हुए ही बोल उठा—"इनाम लूंगा भैया भारी इनाम।"

नवीन ने चौंक कर देखा—हां, उसका परिचित मकान ही तो है। उसने जेब की ओर हाथ बढ़ाया। पर, उफ्! उसे स्मरण हुआ—जेब तो कब की खाली हो गई है। उसके मस्तक पर सिकुड़न की रेखा फूट पड़ी। उसने मुड़कर दूसरी ओर देखा—हाँ है तो। झाँक रही है—शायद वह इधर को ही आने को है।

उस पर मानो सौ घड़ा पानी पड़ गया हो—वह अनुभव कर रहा था। इच्छा हुई—मुँह न दिखाऊँगा—वही अच्छा। वह क्या समझेगी? मांगना पड़ेगा? वह स्थिर खड़ा था—उससे न तो

आगे बढ़ते बनता था और न पीछे हटते। पर, मस्तिष्क में मानो आँधी बह रही थी। आज वह समझ रहा था—मृत्यु इससे अधिक अपमान-जनक नहीं हो सकती।

उसकी आँखें हठात् फिर उसकी ओर दौड़ पड़ीं। वह बढ़ी चली आ रही थी। इतने में रिक्सावाला बोल उठा—"चलूंगा भैया—दे दीजिए।"

अब उसके लिए वहां ठहरना असह्य था। उसने उससे कहा—"पांच मिनट ठहरो। मैं फिर इसी रिक्से पर वापस भी हूँगा। तुम्हें आज काफ़ी इनाम दूंगा।"

रिक्सा वाला इनाम के लोभ में आशा भरी आँखों से उसकी ओर देखता रहा।

नवीन तेजी से झपट पड़ा मकान की ओर। दरवाजे से कुछ दूर पर ही मणि से भेंट हुई। वह कुछ बोलने ही जा रहा था कि, मणि स्वयं ही बोल उठी—"बड़ा भाग्य! कैसे आए! चलिए ऊपर!"

मणि आगे-आगे चली और नवीन उसके पीछे-पीछे।

नवीन आज बहुत दिनों पर उसके यहां आया था, नहीं तो वह बराबर उससे मिलता और मणि भी उससे जी खोल कर मिलती। पर, इतने दिनों के बाद अचानक नवीन को अपने सामने देख मणि को जहाँ एक ओर प्रसन्नता थी, वहीं दूसरी ओर कुछ उपालंभ भी। वह मन-ही-मन सोच रही थी—आज नवीन को कुछ व्यंगोक्तियाँ सुनाऊँ तो अच्छा। यद्यपि मणि सरल-हृदया थी—व्यंग का नाम तक न जानती और न उसकी यह

प्रवृत्ति ही थी कि, चाहे बात से ही सही, किसी को क्यों दुखाया जाय। पर, आज न जाने कहां की उसे रसिकता सूझ पड़ी। वह सीढ़ियों पर चढ़ती हुई बोल उठी—"कहिए, आजकल तो न जाने कौन-से काव्य की सृष्टि करने पर तुले थे, आखिर उससे कैसे आपका आज जी उलटा। आपको शायद उसमें इतना आनंद आता है कि, दूसरों की आप पर्वा ही क्यों करने चले? क्यों ठीक है न, नवीन बाबू!"

मणि ने उपालंभ के रूप में जो कुछ कहा था—ठीक ही कहा था। नवीन शायद इसी प्रकृति का युवक था। काव्य-रचना और साहित्यालोचन ही उसका ऐच्छिक विषय था। और यही कारण था कि, वह इस सृष्टि-रचना में अपने को इतना डुबो देता था कि, उसे दूसरों की सुध तो दूर रहे—अपने खाने-पीने की सुध तक न रहती। नवीन ने उसकी बातें सुनीं—पर, उसके पास उत्तर ही क्या था? वह अपने मुँह पर ईषत् हास्य की रेखा खींचते हुए, उत्तर के रूप में बोल उठा—"तुम्हारा कहना असत्य नहीं है, मणि! देखता हूं, इन दिनों मैं कुछ ऐसा ही होता जा रहा हूँ। पर, अब शीघ्र यह कंथा उतार कर तुम्हारे सिर पर डालना चाहता हूँ। क्या इसे ग्रहण न करोगी?"

"कंथा?"—वह हँसती हुई बोल उठी—"कंथा संभालने के योग्य मैं अभी नहीं हुई हूँ। जब आवश्यकता होगी, मांग लूंगी। पर, यह तो कहिए—आप रास्ता तो न भूल पड़े? कहीं धोका तो नहीं हुआ, नवीन बाबू!"

नवीन इस वार जरा झल्ला उठा। उसकी दृष्टि बाहर की ओर दौड़ पड़ी। उसने सड़क पर रिस्का वाले को ज्यों-का-त्यों पाया। पर, आज तो उसकी कठिन परीक्षा थी। वह अपने मतलब की बात उठावे तो कैसे? वह सोच रहा था—अवश्य इतने दिनों से मणि से न मिल कर मैंने बड़ा बुरा किया। तो क्या मिलते रहना ही ठीक होता? वह अपनी कमजोरी समझ रहा था। क्यों नहीं वह उससे इतने दिनों तक मिलने आया था—जानता था। उसे अपनी कमजोरी पर क्षोभ हुआ, कुछ ग्लानि भी। अवश्य इन दोनों के मिलन में एक स्वार्थ निहित था—और वह यह कि, कुछ काल के लिए जब वे दोनों आपस में मिलते, अवश्य आनंद उपलब्ध होता। मणि के लिए शायद इससे अच्छा आनंद-उपलब्धि का और कोई दूसरा उपाय न था। कारण था—वह पुरुष वर्ग से डरती थी। उसकी माँ का कड़ा आदेश भी था—जिस तिस से मिलना उचित नहीं। पर, नवीन के पक्ष में यह बात नहीं थी। नवीन में उसने आत्मीयता का भाव पाया था और शायद इससे भी बढ़कर उसमें मनुष्यत्व ही अधिक उसे दीख पड़ा था। और माँ—मणि की माँ—भी नवीन पर अपना अपत्य स्नेह रखती थी। नवीन कुर्सी पर बैठ चुका था, मणि टेबुल के सहारे, उसके सामने खड़ी थी। मणि ने एक वार उसकी ओर देखा। देखा—नवीन में वह उत्फुल्लता नहीं है जो पहले रहा करती थी। वह सोचने लगी—शायद मेरी व्यंगोक्तियां बुरी तरह जा पड़ीं। वह अपनी

करनी पर क्षुब्ध हुई, पर अब वह कोई दूसरा प्रसंग आवे तो कैसे ? कैसे वह उसे प्रसन्न कर सके—यही उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था। दोनों नीरव थे—निस्पंद !

पर, कुछ ही क्षण के बाद, मौन भंग करते हुए नवीन बोल उठा—रास्ता भूल कर नहीं आया हूँ, मणि ! आया हूँ तुम्हें कष्ट देने। इच्छा न थी कि तुम्हें कष्ट दूँ, पर अपनी इच्छा कहाँ सदैव सफल हुआ करती है।

मणि का मुख-मंडल—विषण्ण मुख-मंडल प्रसन्नता से चमक उठा। उसने समझा—नवीन को मेरी बातों से खेद नहीं हुआ है। वह बड़ी उत्सुकता से बोल उठी—"सौभाग्य है मेरा। कम से कम कष्ट के नाते ही सही, आपके दर्शन तो हुए। अच्छा, कहिए मैं कौन-सी आपकी सेवा करूं ?"

अब नवीन की विचार-धारा दूसरी दिशा को बह चली। रुपए मांगने पड़ेंगे ! जो कभी न किया—वही आज करने जा रहा हूँ। समझेगी—मैं कितना स्वार्थी हूँ ! हाँ, स्वार्थी हूँ मैं ! नहीं तो मैं क्यों आता ? और शायद इसका भी तो मुझ से कुछ-न-कुछ अवश्य स्वार्थ है ? यदि संसार में स्वार्थ न रहता तो कौन किसको पूछता ? परार्थ तो स्वर्गीय वस्तु है ! फिर उस परार्थ में भी तो स्वार्थ ही निहित है। तब कोई अपने को कब तक इससे विलग कर सकता है ? तो मांगना ही पड़ेगा ? पर, यह क्या समझेगी ? उस दिन मेरी दीनता पर तरस खाकर रुपए दे रही थी और मैं उसे रोक रहा था। आज मैं ही हूं—स्वयं इससे

माँगने आया हूँ। उस दिन यह समझती होगी कि, शायद रुपए देने की वात उठा कर उसने अच्छा नहीं किया—शायद मेरी कोमल तंतुओं को उसने चोट पहुँचाई थी। और जब मैंने उससे कहा था कि, यदि तुम्हारी यह हरकत रही तो मैं कभी तुम से मिलने न आऊँगा। उस दिन मेरा अभिमान फूट पड़ा था और मैंने रोष में कह डाला था—तुम मुझे इतना दीन न समझो। कदाचित् वह मेरी बातों से तिलमिला भी उठी थी। और आज मैं स्वयं ऐसा करने को तुल पड़ा हूँ। पर, आज वह अवश्य प्रसन्न होगी—उस दिन का कलंक जो मिटा रहा हूँ। पर, वह मुझे कितना कमजोर समझेगी ? विचार की दृढ़ता न पाकर मैं कहीं का न रहूँगा। दृढ़ता ही तो मनुष्य का भूषण है। वह भावावेश में बौखला उठा—उसका मस्तिष्क इतना कमजोर पड़ गया था कि, वह निश्चय नहीं कर सकता था कि, उसे क्या करना चाहिए। वह कुछ देर तक संक्षुब्ध, चिंतित और अन्यमनस्क रहा। इतने में घड़ी से टन टन की आवाज आई। उसकी चेतना सजग हुई और सामने उसने देखा—कर्त्तव्यादेश को। वह बोल उठा—"आज मुझे रुपए की आवश्यकता आ पड़ी है मणि ! और इसी लिए कष्ट देने आया हूं। अब मैं एक क्षण के लिए भी नहीं ठहर सकता। आवश्यकता पड़ने पर मैं फिर से आ सकता हूँ, पर इस समय तो................।"

मणि चौंक उठी, पर उसने अपने भाव को छिपाने की चेष्टा की। रुपए ? रुपए के लिए उस दिन कितना मर्म्माहत किया था

इसने। आज स्वयं मांगने आया है। अवश्य आज रुपए की नितान्त आवश्यकता होगी।

और वह बे-तकल्लुफी के साथ बोल उठी—"कितना चाहिए।"

"अधिक नहीं पचास से काम चल जायगा।"

वह उठ कर भीतर की ओर गई—और नवीन बाहर की ओर शून्य दृष्टि से देखने लगा।

मणि आई और दस रुपएवाले पांच नोट उसके सामने रख दिए।

नवीन ने नोट संभाले और चलने पर उद्यत हुआ। मणि के दिल में हुआ—पूछ देखूँ ऐसी कौन सी जरूरत है। पर, उसने पूछना इसलिए आवश्यक नहीं समझा कि, इससे शायद इसके दिल पर फिर से चोट पड़े। वह सहृदयता से बोल उठी—"और यदि आवश्यकता रहे तो कहिए मैं निकाल दूँ।"

वह बाहर की ओर पैर बढ़ाते हुए बोल उठा—"रहने दो मणि आवश्यकता समझने पर मैं फिर से ले जाऊँगा।"—और वह बाहर की ओर चल पड़ा।

मणि भी पीछे-पीछे आई। रिक्सा खड़ा था—नवीन के आते ही रिक्सावाला तैयार हुआ। नवीन रिक्से पर जा बैठा। रिक्सेवाले ने घुंघरू बजाई—और वह धीरे धीरे चल पड़ा।

नवीन ने जाते-जाते मणि से कहा—"क्या मैं इसके लिए धन्यवाद दूँ, मणि ! बड़ा कष्ट दिया तुम्हें !"

"कष्ट की कौन-सी बात है—और कष्ट ही देना हो तो फिर से

देते रहिएगा। हाँ, धन्यवाद तो कम-से-कम अपने साथ ही लेते जाइए।"

नवीन ने न जाने उसकी बातें सुनीं वा नहीं। रिक्सा तेजी से दौड़ पड़ा था।

———

—चार—

नवीन सीधे लेडी डाक्टर के पास पहुंचा और उसे अपने साथ एक तेज जैसी गाड़ी पर बिठा कर बाजार की ओर बढ़ा। रास्ते में उसके परामर्श से सौर के आवश्यक सामान खरीदे और कुछ कपड़े भी। गाड़ी भिखारियों के महल्ले में आ लगी।

लेडी डाक्टर को बड़ा आश्चर्य हो रहा था और आश्चर्य का कारण यह था कि वह आज भिखारिन की परिचर्य्या करने को पहुंची है। उसे बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि इस युवक ने ऐसा किया क्यों? कौन सा स्वार्थ है यहाँ इसका? पहले तो वहाँ की गंदगी को देख लेडी डाक्टर ने उतरना ही उचित नहीं समझा; पर नवीन के कहने-सुनने और अनुरोध पूर्वक निवेदन करने पर वह उतरी। नवीन कई जोड़े साड़ियाँ साथ लाया था। उन्हें भिखारिन को देकर कहा—"पहले रोगी को कपड़े पहना दो और

इनमें से एक तुम पहन लो।" उसने वैसा ही किया। उसे बरसों नए वस्त्र का पहनना नसीब न हुआ था। आज अपने सामने कपड़ों का ढेर देख कर मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई। उसे अब यह भी विश्वास हुआ कि अब उसकी स्नेह की बिटिया आराम पायगी। लेडी डाक्टर को अपने असबाव के साथ सौरगृह में—सौरगृह ही कहना चाहिए—जा पहुँची और नवीन गाड़ी पर ही आ बैठा।

लेडी डाक्टर ने वहाँ की परिस्थिति का निरीक्षण किया और निरीक्षण किया रोगिणी को। रोगिणी आसन्न मृत्यु के निकट पहुंच चुकी थी; उसे विश्वास न था कि रोगिणी आराम हो सकेगी और वच्चा सकुशल प्रसव हो सकेगा। फिर भी उसने विचारा, एक वह है जो न कुछ होते हुए भी, केवल भिखारिन पर तरस खाकर सेवा के लिए धन अर्पण को तैयार है और दूसरी यह है जो अपनी पूरी फीस चुका कर भी सेवा करने को तैयार नहीं। उसे अपने आप पर जरा घृणा भी हुई, अपने को उसने कोसा भी। वह एक वार बाहर आई और वह नवीन के पास पहुंच कर बोली—"जच्चा के बचने की आशा कम है—आप इसके लिए व्यर्थ कष्ट और परेशानी उठा रहे हैं।"

नवीन जरा चिंतित हुआ। सोचा—क्या इतनी मेहनत बेकार जायगी? पर वह घबराने वाला व्यक्ति न था। उसे विश्वास था—शक्ति भर देख-रेख करने से संभव है बच जाय। उसने एक वार साहस से काम लिया और उससे कहा—"आप एक वार फिर

से देखें और अपनी पूरी शक्ति लगाकर देखें—मुझे तो विश्वास है, आपका कष्ट उठाना व्यर्थ न जायगा। आखिर, इन दुखियों को आप-जैसे व्यक्तियों का सहारा ही तो है।" लेडी डाक्टर ने एक वार साँस भरी और आकाश की ओर देखा। मानो वह कुछ सोच रही थी। कुछ क्षण के बाद वह बोल उठी—"अच्छा, परमात्मा मालिक है, मैं अपनी शक्ति भर कुछ उठा न रखूंगी।"

लेडी डाक्टर भीतर की ओर चली गई।

जच्चा के लिए आज पाँचवां दिन है। काफी कष्ट भुगत चुकी है; पर आश्चर्य है, इतना कष्ट भुगत कर भी वह मरी नहीं—मरणासन्न है—पर अभी भी वह सकुशल बच जा सकती है। लेडी डाक्टर ने अपने यंत्र निकाले और उसके प्रयोग होने लगे लगे। बच्चा पेट में उलट पड़ा था, और यही कारण था कि, उसे निकलने में कठिनाई हो रही थी। पर, यहां खुले मैदान में बच्चा प्रसव कराना क्या निरापद होगा ?—लेडी डाक्टर ने विचारा। उसने विचारा—अच्छा हो, कहीं निरापद स्थान मिल जाय, तब अस्त्र-चिकित्सा की जाय। वह फिर एक वार बाहर निकली, और नवीन से अपना अभिप्राय कह सुनाया। पर वहाँ निरापद स्थान था कहाँ ? आखिर विचार दृढ़ हुआ—क्यों न इसे लेकर अस्पताल पहुंचा जाय! आखिर यही तय हुआ। जच्चा को उठा कर गाड़ी में लिटा दिया गया और वे दोनों भी आकर बैठे। यद्यपि बैठने में असुविधा हो रही थी, फिर भी लाचारी थी, और वहां इतना समय भी नहीं था कि, दूसरी गाड़ी मंगवाई जाय।

भिखारिन पांवदान पर पीछे जा बैठी और गाड़ी कुछ ही देर में सदर रास्ते पर आ पहुंची। कुछ ही दूर पर एक गाड़ी खड़ी थी। नवीन ने उसे भी ठीक कर लिया और लेडी डाक्टर और आप उस पर जा बैठे। भिखारिन जच्चा के पास जा बैठी। दोनों गाड़ियाँ मेडिकल कालिज के अस्पताल की ओर चल पड़ीं।

नवीन ने बड़ी सतर्कता से काम लिया था और लेडी डाक्टर भी बड़ी सहृदया थी। दोनों के सदुद्योग से 'आउटडोर हास्पिटल' में रोगी भर्त्ती की गई। उसे सौर-गृह में लिवा जाकर परिचर्या के लिए कई नर्सें आ पहुँचीं। उनलोगों ने रोगिणी को संभाला। कुछ ही देर में हास्पिटल की लेडी डाक्टर भी अपनी सहकारिणी डाक्टरों के साथ आ पहुँची। बाहर वाली लेडी डाक्टर मिस राय भी उनकी सहायता में दाखिल हुई।

परमेश्वर को धन्यवाद है—पंद्रह-बीस मिनट भी बीतने न पाए थे कि, मिस राय सौर-गृह से बाहर निकली और नवीन के पास आकर बोली—"जच्चा ने लड़का जना है—जीवित है—पर, जच्चा की हालत जरा नाजुक है—फिर भी घबराने की बात नहीं। परिचर्य्या हो रही है—कमजोर ज्यादा पड़ गई थी और काफी कष्ट भुगतने पड़े थे। यही कारण है कि, वह इतनी खतरनाक हालत में पहुँच गई है।"

नवीन को जहां बच्चा प्रसव होने की बात सुनकर प्रसन्नता हो रही थी, वहाँ जच्चा की हालत सुन कर दुःख भी। पर, उसके हाथ में था ही क्या? उसने मिस राय से कहा—"बड़ी कृपा

होगी, यदि आपलोगों की सेवा उसके लिए लाभप्रद हो। आप परिचारिकाओं और डाक्टरों से कह दें—आराम होने पर मैं उन लोगों की शक्ति-भर सेवा करने से बाज न आऊँगा। मैं आपका बहुत बहुत कृतज्ञ हूँ। आप यदि नहीं रहतीं तो·······।"

"नहीं, महाशय! यह कोई बात नहीं"—लेडी डाक्टर ने सहानुभूति के स्वर में कहा,—"आपने आज निःस्वार्थ भाव से इसकी जो मदद की है, उसकी लाज तो परमेश्वर रखेंगे ही। और हमलोग तो अपनी फीस के लिए··········।"

लेडी डाक्टर फिर से भीतर की ओर चली गई।

भिखारिन सौर-गृह के बाहर ही थी—उसने भी सुना कि बच्चा सकुशल निकल गया। वह खुशी के मारे नवीन के पास दौड़ पड़ी और उसके चरणों से लिपट कर बोली—"भगवान भला करे आपका! हम भिखारिनों से आपकी कौन-सी सेवा हो सकती है? आप ही मालिक—भगवान हैं मेरे लिए।"

भिखारिन खुशी के आवेश में रो पड़ी। उसे रह-रह कर अतीत की स्मृति हो आती थी। नवीन ने देखा—भिखारिन नगण्य है सही, पर इसकी आत्मा बड़ी उन्नत है। उसने सांत्वना के स्वर में कहा—"मैंने जो कुछ किया कर्त्तव्य के नाते किया। उसे जीवन था, फिर कौन छीन सकता है।"

आध घंटे के बाद मिस राय बाहर आई और बोली—"जच्चा 'डेञ्जर' से बाहर है, अब उसे नींद हो आई है। घबराने की बात नहीं। चलिए, अब हमलोग घर की ओर चलें।"

और नवीन लेडी डाक्टर को साथ लिए हास्पिटल कंपाउंड से बाहर आया। भिखारिन वहीं रह गई। नवीन ने उसे खाने को कुछ पैसे दे दिए। और उसे सांत्वना देकर एवं यह कह कर कि, एक बार फिर से कल देख जाऊंगा—वह चल पड़ा।

सड़क पर गाड़ियां लगी थीं। नवीन ने एक को तै किया और लेडी डाक्टर के साथ आ बैठा।

गाड़ी कुछ ही समय में लेडी डाक्टर के बंगले के पास आ लगी। नवीन ने उसकी फीस चुकाई और मिस राय नोट गिनती हुई बोलीं—"जहाँ आपने उस के लिए इतना कष्ट उठाया है, वहाँ मेरा भी यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि मैं अपनी फ़ीस में कुछ रिआयत करूं।" उसने दो नोट लौटाते हुए कहा—"मुझे बस बीस ही चाहिए—बीस आप रखलें।"

नवीन उसे ग्रहण करने को आगा पीछा कर रहा था, पर मिस राय ने एक न सुनी। वह नोट उसकी जेब में डाल अपने बंगले की ओर चल पड़ी। नवीन कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। मिस राय अपने बंगले के बरांडे पर पहुंच कर बोली—"फिर कभी दर्शन दीजिएगा। आज आपका सौजन्य पा कर मैं बड़ी प्रसन्न हूँ। आप जैसे कुछ और आदमी यदि हमारी मातृभूमि में होते तो आज इसका रंग-रूप कुछ और ही हुआ होता।"

नवीन क्या उत्तर दे! वह मूक था। आज उसे प्रसन्नता थी कि, उसका परिश्रम सफल हुआ। वह लेडी डाक्टर के प्रति

नमस्कार जता कर गाड़ी पर आ बैठा।

कलकत्ता बिजली की रोशनी से प्रकाशमान हो रहा था। आज उसे दिन भर खटना पड़ा था इसलिए उसे काफी भूख भी लग गई थी। पर उसने प्रसन्नता के मारे घर जाकर ही खाना उचित समझा। गाड़ी अपने गंतव्य पथ पर चल पड़ी।

———

—पाँच—

नवीन गाड़ीसे उतर कर अपने दरवाजे पर पहुँचा। दरवाजा बंद था, इसलिए उसे खटखटाना पड़ा। पर, खटखटाने के समय उसकी छाती धड़क उठी। वह सोचने लगा—फीस जमा करने की वात पूछे जाने पर मैं अपनी माँ को क्या उत्तर दूँगा। यदि मैं सच-सच कह दूँ तो माँ को कितना कष्ट होगा? आज ही तो माँ ने रुपए निकाल कर देते समय कहा था—"तुम्हारे पिता ने यह मकान खरीदने के समय कितने मनसूबे बांधे थे! उन्हें इसे खरीदने की कितनी साध थी! पर, आज वह मकान गिरवीं पर चढ़ गया। अब देखना, जिससे यह लाज रह जाय—वैसा ख्याल रखना।" और मैंने उन रुपयों को हाथ पर लेते हुए, आश्वासन के स्वर में उनसे कहा था—"शीघ्र भगवान हमलोगों का दुःख दूर करेंगे माँ! अब तो मुझे और कोई इम्तहान देना नहीं है—यही शेष है! भगवान की कृपा से मैं इसमें अवश्य सफल हूँगा। फिर कहीं-न-कहीं नौकरी मिल ही जायगी!" इस पर माँ की आँखों से

आँसू बह चले थे! बरसों से जिन आँसुओं को उन्होंने बटोर रखा था—वे ही आँसू आज उनसे अलग हो रहे थे! न जाने कौन-सी अतीत की स्मृतियाँ थीं जिनका स्मरण कर वह रो पड़ी थीं! उस समय मैंने दिल पर पत्थर रख कर रुपए ग्रहण किए थे। पर, आज वे रुपए कहाँ हैं? मैंने अवश्य भावुकता में पड़ कर उन्हें गँवा डाला! व्रजेन्द्र ठीक कहता था—मैं इन दिनों अधिक-अधिक भावुक हो चला हूँ। मैं भी देखता हूँ—इतनी भावुकता शायद उचित नहीं। पर, अब?—अब तो मां के सामने हाजिर होना ही होगा। तो क्या माँ से कह दूँ—रुपए दाखिल कर दिए? झूठ?—झूठ बोलूंगा आज मैं अपनी माँ से—स्नेह-मयी माँ से? नहीं—यह नहीं हो सकता! जो कुछ हुआ है, मैं सच सच ही कहूँगा। क्या हुआ—माँ को रंज होगा—बिगड़ेगी वह। पर मैं सब कुछ सुन लूँगा। क्या हुआ—आगे न पढ़ूँगा—और कल से ही मैं किसी नौकरी की धुन में रहूँगा। क्या पचीस रुपए भी न मिलेंगे? देख लूँगा इसी से अपनी दुनियाँ। यदि अच्छी सी नौकरी मिल गई तो फिर बात ही क्या? मकान छूटते कितनी देर लगेगी? पचासी रुपए पांच आने! हाँ, इतना ही तो लिया था और कुछ सूद भी लगेगा। देखा जायगा। पर, अभी तो काफी भूख लगी है और काफी परेशान भी हुआ हूँ। उसने किवाड़ खटखटाई। आवाज भीतर पहुँची और क्षणभर में पैरों की आहट सुन पड़ी। वह बाहर खड़ा था, पर उसमें वह उत्फुल्लता न थी जो पहले रहा करती।

माँ ने आकर दरवाजा खोल दिया। नवीन ने घर में प्रवेश किया। माँ ने उसे देखते ही पूछा—"आज तो तुमने बड़ी देर लगाई, बेटा! कहीं चले गए थे क्या?"

"नहीं माँ, यों ही कुछ जरूरी काम था, इसीलिए आज देर हुई। क्या अधिक देर हुई है माँ!"

"नहीं तो! पर, मैं बड़ी देर से इन्तजार कर रही थी।"

नवीन ने कपड़े बदले, पैर-हाथ धोए। वह काफी भूखा था। माँ से कहा—"परोस दे माँ!"

माँ ने परोस दिया, नवीन आसन बिछा खाने को बैठ गया। माँ भी उसके सामने ही आ बैठी।

नवीन डरते-डरते भोजन कर रहा था। उसे भय था—कहीं माँ रुपये जमा कराने के सम्बन्ध में न पूछ बैठे। पर, उसका डर कुछ देर में ही जाता रहा। माँ ने केवल इतना ही कहा—"अब पढ़ने में जोर लगा दो बेटा! अच्छे नंबरों से पास करो!"

नवीन ने हाँमी भरते हुए कहा—"हाँ, ऐसा ही करूँगा, माँ!"

आज माँ को प्रसन्नता हो रही थी कि, अब कुछ ही दिनों में नवीन पास कर जायगा। और आए दिन उसकी अच्छी-सी नौकरी लगेगी। फिर बड़े चाव से इसकी शादी कराऊँगी—नई बहू आयगी—आदि-आदि! पर,वह क्या जानती थी कि आज उसने परीक्षा की फी के रुपए ही गँवा डाले हैं। हाँ, यदि उसे यह बात कहीं मालूम होती!

नवीन ने शिव-शिव करके भोजन किया। मुँह-हाथ धोकर

वह बिछावन पर आ लेटा, और माँ उसी थाली में भोजन करने को बैठ गई। नवीन काफी थका था, बिछावन पर लेटते ही नींद आ पहुँची और वह शांति की गोद में विश्राम करने लगा।

सबेरा हुआ। नित्यकर्म से छुट्टी पाई और वह पढ़ने को बैठ गया। कुछ देर में माँ नास्ता और चाय लेकर दे गई। नवीन ने उसे ग्रहण किया। पर आज उसे पढ़ने में दिल ही नहीं लगता था। फिर भी वह अपनी कुर्सी से उठा नहीं। पर, पुस्तक पर मन लगाए तो कैसे? मन पर बल डाला, पर कामयाव न हुआ। रह-रह कर उसे माँ की रात की बात स्मरण हो आती थी। माँ के कितने बढ़े हुए अरमान थे! और उन अरमानों का केन्द्रस्थल नवीन का परीक्षा में सफल होना! पर, नवीन ने अपना अधिकार खो डाला था। आज उसे यदि कहीं रुपए मिल गए होते तो वह अवश्य 'डिफाल्ट फाइन' के साथ युनिवर्सिटी में जाकर रुपए दाखिल कर आता। पर, उसके भाग्य में ऐसा कहाँ था कि वह इच्छा करते ही रुपए पा जाय! उसे स्मरण हो आया—क्यों न मणि से और इतने रुपए उधार लिए जायँ! मणि ने कल तो कहा था—'आवश्यकता पड़ने पर और ले जाना!' तो क्या और उससे लेकर अपना काम चलाऊँ? कल तो बड़ी प्रसन्नता से उसने रुपए दिए थे। पर, नहीं—ऐसा नहीं हो सकता। कल मैंने अवश्य उससे रुपए लिए थे और आज भी उससे लेने को तैयार हो रहा हूँ। पर, दोनों में बड़ी विभिन्नता है। कल परार्थ के साथ स्वार्थ था और आज केवल अपना ही स्वार्थ है। फिर क्यों अपने

स्वार्थ के लिए उसे कष्ट दूँ ? क्यों अपने अभिमान को यों कुछ मूल्य पर बेचूँ। अवश्य मेरा दर्प कल चूर्ण हुआ है, जानता हूँ। पर, प्रसन्नता है, दर्प चूर्ण कर के भी मैं अपने को कुछ सेवा के योग्य सिद्ध कर सका हूँ। मैं वैसी हालत में अपमान को भी सहन कर सकता था, पर आज वह काम मुझसे न होगा। परीक्षा न दूँगा न सही, पर कोई यह तो नहीं कहेगा कि, मैं अपने स्वार्थ के लिए किसी का सिर खा रहा हूँ। और कृतज्ञता का बोझ—एहसान का बोझ मुझ से उठाया न जायगा। एहसान का बोझ कितना कठोर, कितना गुरुतर और कितना दयनीय होता है! शिव-शिव! एहसान......!

वह भावावेश में आ पहुँचा। उसकी आँखों से आँसू बह निकले। आज वह अपने को संयत करने में समर्थ नहीं हो रहा था। रह-रह कर स्मरण हो रहा था—लुटेरों को प्रश्रय देना उचित न हुआ। क्यों मैंने ऐसा गर्हित कार्य किया ? व्रजेंद्र ठीक कहता था—मैं पछताऊँगा। भावुक होना उचित नहीं। और अभी मैं बैठे-बैठे उसकी बातें अपने सामने नाचते देख रहा हूँ।

सोचते सोचते वह इतना चंचल हो उठा था कि उससे बैठा न रहा गया। वह कुर्सी से उठ कर खड़ा हुआ और उसी कमरे में चक्कर काटने लगा। इससे उसका मन कुछ हलका हुआ अवश्य; पर वह कुछ भी निश्चय न कर सका कि उसके लिए क्या करना चाहिए।

वह चिंता में इतना व्यस्त था कि, समय कितना निकल गया,

इसका उसे जरा भी ज्ञान न रहा। इसी समय माँ भीतर से उस कमरे में आई और बोली—"क्या नहाओगे नहीं, नवीन! क्या आज कालिज न जाओगे ?"

नवीन मानो सोते से जाग उठा। उसकी चेतना सजग हुई। उसके उदास मुख-मंडल पर एक हलकी सी ज्योत्स्ना फूट उठी। और वह बोल उठा--"हाँ माँ! कालिज न जाऊँगा तो क्या करूँगा ? अभी अभी नहाने चला। तुम भीतर चलो मैं अभी अभी आया।"

माँ भीतर चली गई। वह उठा और ताखे पर से तेल की सीसी उठाकर तेल सिर पर डालने लगा। इस समय उसे स्मरण हुआ—और उसने ठीक किया—क्यों न कालिज ही जाऊँ ? देखूँ, वहाँ का क्या रंग ढंग है ? वह फुर्त्ती से तेल मलते मलते ही भीतर चला गया। उसने स्नान किया, कपड़े पहने और बालों में कंघी फेरी। फिर वह भोजन करने बैठ गया।

उस दिन भोजन करने में नवीन का जी न लगा। फिर भी जैसे-तैसे बना, भोजन किया फिर अपने कमरे में आकर कुर्त्ता पहना और अपनी पाठ्य पुस्तक हाथ में लेकर कालिज की ओर चल पड़ा।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर विचार उठा—क्यों न एकवार मणि से मिलता चलूँ ? संभव है, वह अभी घर पर ही हो। कम से कम उसे धन्यवाद तो देना ही चाहिये। कल यदि उसने रुपए न दिये होते तो भिखारिन का मैं कुछ भी उपकार न कर सका होता। आखिर, अपने निश्चय के अनुसार वह मणि के घर की ओर ही चल पड़ा।

मणि उस समय अपने कमरे में बड़े आईने के सामने बैठ कर अपने बालों पर कंघी फेर रही थी। नवीन जैसे बेतकल्लुफी के साथ उसके घर आता था, वैसे ही आया। मणि उसे देखते ही उठ खड़ी हुई। नवीन घर में प्रवेश करते ही मुस्किराते हुए बोल उठा—"आज तुम्हें धन्यवाद देने आया हूँ, मणि! कल मैं जिस काम से परेशान था, वह सफल हुआ, और उस सफलता का सारा श्रेय तुम्हें है। तुमने यदि मुझे रुपए न दिए होते तो मैं उस काम में कभी सफल न हुआ होता। यह लो तुम शेष रुपए। और उसने अपनी जेब से शेष बचे हुए बीस रुपए निकाल कर उसके सामने टेबुल पर रख दिए।

मणि को आश्चर्य्य और प्रसन्नता साथ-ही-साथ हुई। आश्चर्य इसलिए था कि, वह रुपए वापस क्यों करता है? क्या इन रुपयों का व्यवहार वह स्वयं नहीं कर सकता था? और प्रसन्नता यह सुन कर हुई कि उसके रुपए से उसका कार्य सफल हुआ है। उसके मन में जिज्ञासा का भाव उदय हुआ। वह पूछना चाहती थी—कौन सा कार्य था वह, जिसे वह करने में सफल हुआ है। अतएव वह बोल उठी—"देखती हूँ, आप को हर बात में धन्यवाद देने की बान पड़ गई है। खैर, धन्यवाद ही देते हैं तो मैं इसे अंगीकार क्यों न करूँ? पर, क्या मैं जान सकती हूँ कि वह कार्य कौनसा था?"

"कार्य? कार्य जानना चाहती हो मणि? अच्छा, सुनो"— और उसने कल की बातें आदि से अंत तक सुना दीं कि, किस तरह

भिखारिन उससे पहले पहल मिली, किस तरह उसने भिखारिनों के महल्ले में जाकर वहाँ का दृश्य देखा—किस तरह उसके मन में उसकी सेवा करने की प्रवृत्ति जगी—किस तरह वह मणि से रुपए पाने की आशा में उसके घर आया, और किस तरह वह लेडीडाक्टर के साथ अस्पताल में गया और किस तरह वहां जाकर उसने बच्चा जना।

मणि ने सब कुछ सुना। उसके हृदय में नवीन के प्रति जैसा कुछ ख्याल था—आज उसे इतना ऊँचा उठा देख कर उसके प्रति और भी श्रद्धा का भाव उदित हुआ। वह नवीन से प्रेम करती थी और प्रेम करती थी इसलिए कि, वह जिस तरह का सच्चरित्र और विद्वान है, शायद उसने वैसा बहुत कम आदमियों में पाया हो। मणि को यह विश्वास न था कि, नवीन इससे भी ऊंचा उठा हुआ है। वह यह नहीं जानती थी कि, नवीन में दूसरों के प्रति—विशेषतया दीनों के प्रति—आंतरिक सहानुभूति का भाव यहां तक हो सकता है। आज उसने नवीन को अपने सामने जिस रूप में देखा—वह रूप इसके पहले उसकी कल्पना में भी नहीं आ सका था। उसका हृदय यह जानकर उत्फुल्ल हो उठा और विशेषतः उत्फुल्ल हो उठा यह जान कर कि, नवीन से जो उसका प्रेम हुआ है—वह ठीक ही हुआ हैं। मणि भावावेश में इतनी उत्फुल्ल हो उठी थी कि उससे रहा न गया। वह बोल उठी—"मैं नहीं जानती थी कि, आप इतने उन्नत विचार के हैं; नवीन बाबू! जहां भिखारियों—दीनों के प्रति लोगों को स्वभावतः घृणा है, वहां आपने अपनी सेवा

से एक की ही नहीं, दो दो जीवों की रक्षा की।"

"और उस रक्षा का सारा श्रेय तो तुम्हें ही है, मणि!" नवीन उसकी बातों को काटते हुए बोल उठा।

"पर आपने उस समय यदि मुझ से यह कहा होता तो मैं क्या आप के साथ नहीं चल सकती थी? आपने मुझ से कहा नहीं क्यों नवीन बाबू?"

"नहीं कहा, और कहना शायद मैंने उपयुक्त नहीं समझा; इसलिए कि, तुम्हें व्यर्थ कष्ट होगा, जब कि मैं खुद कष्ट उठाने को तैयार ही था।"

मणि ने नवीन की बातें सुनीं, पर उसे परितोष न हुआ। मणि में चाहे इसके पहले सेवा-भाव की प्रवृत्ति न भी रही हो, पर ऐसे समय, जब कि नवीन दीनों की सेवा में आ जुटा था, मणि में भी स्फूर्त्ति आ सकती थी। पर, नवीन ने उसे अवसर ही न दिया। शायद उसने यह सनझ कर न दिया हो कि, मणि संभ्रांत घराने की कन्या है, इसे क्यों घसीटा जाय। मणि सोचते-सोचते न जाने कितना आगे बढ़ गई थी और यही कारण था कि, उसकी उत्सुकता धीरे-धीरे न जाने कहाँ विलीन हो गई और उसके ललाट-प्रदेश पर सिकुड़न की रेखा दीख पड़ी। वह विषण्ण हो बोल उठी—

"आपने मुझे इतना छोटा समझ लिया, नवीन बाबू, कि आपके कष्टों में मैं सम्मिलित नहीं हो सकती? यदि आपने यही विचारा हो तो, यह आपका अन्याय है—और ऐसा

अन्याय कर वास्तव में मेरे साथ आपने जुर्म किया है।"

नवीन ने मणि की बातें सुनीं, पर वह विचलित न हुआ। वह समझता था—मणि का हृदय कोमल और भाव-प्रवण है, वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बात को स्थूल रूप देना जानती है। नवीन ने जान-बूझ कर ही उससे नहीं कहा था पर, इस समय उसने देखा—उससे न कह जाना वास्तव में उसके साथ अन्याय करना था। नवीन कुछ संक्षुब्ध भी हुआ; पर उसने सोचा, मणि को संतोष तो देना चाहिए, इसलिए वह बोल उठा—

"मुझे चाहे जो कहो, मणि ! पर मैंने किसी दूसरी नीयत से तुमसे नहीं कहा था। सच पूछो तो यह उपकार मुझ से नहीं, तुम्हारे दान से हुआ है; और यदि तुम से मैं दान-ग्रहण नहीं करता तो कदापि संभव नहीं था कि, मुझ से कुछ हो सकता था।"

मणि ने देखा—नवीन का हृदय क्षुद्र नहीं—विशाल है, संकुचित नहीं असीम है—अवश्य उसे खेद हो रहा था कि, यदि नवीन ने कल ही यह कहा होता तो अवश्य मैं चलती; पर, उसने शायद इसलिए नहीं कहा कि, कार्य्य में कदाचित् शिथिलता आती। चाहे जो हो, नवीन की और कोई दूसरी नीयत नहीं हो सकती। यह भाव-प्रवण व्यक्ति है। जहाँ उसका हृदय इतना विशाल है कि, उस घृणित जीवन में पहले व्यक्ति के उपकार में वह हाथ बँटा सका, वहाँ इससे कब संभव है, कि मेरे साथ वह क्षुद्र हृदयता का परिचय देता। उसने विचारधारा को दूसरी ओर मोड़ना चाहा और इसलिए वह बोल उठी—"अच्छा, यह

तो कहिए, आप इसी सेवा-कार्य में संलग्न रहिएगा या अपनी ओर भी कुछ देखिएगा ? मेरा ख्याल है, परीक्षोत्तीर्ण होने पर ही कहीं आप इस ओर लगें तो अच्छा हो। अंतिम परीक्षा है, इसकी ओर आप उपेक्षा मत दिखलाइए। कालेज जाते हैं वा नहीं ?"

"कालिज जाना तो मेरा नित्य का कार्य ठहरा, उस ओर उपेक्षा करने से काम कैसे चलेगा ? पर, मैं इसे भी उपेक्षा कर दे सकता हूँ। और सेवा के लिए कहती हो, मणि ! मुझ में इतनी सामर्थ्य कहाँ कि इन दीनों की मैं सेवा कर सकूँ। कल का दृश्य देखकर तो यही होता है कि, मैं अपने को लगा दूँ इन दुखियों के परित्राण में। पर, मैं विवश हूँ अपनी असमर्थता पर। आज यदि मैं शक्ति-सम्पन्न होता तो मैं खटा देता अपने आप को सारी शक्तियों को लेकर। उफ़ ! कितना घृणित जीवन है इन लोगों का। शायद पशु भी इतना घृणित जीवन न बिताता होगा।"

नवीन से आगे बोला न गया। वह भावावेश में आ गया था। उसकी आंखें आँसुओं से तर हो रही थीं। मणि उसके सामने बैठी थी। उसने नवीन की ओर आँखें उठा कर देखा—देखा, उसके अंतस्तल में पहुँच कर। उसका हृदय व्यथित हो चला। उसे समझ नहीं पड़ता था कि, किस तरह प्रसंग उठाया जाय। फिर भी अपने को संयत कर वह बोल उठी—"कालिज भी छोड़ सकते हैं—यह आपने अपने अनुरूप ही कहा। मैं विशेष जोर नहीं डालती। मेरा तो केवल यही कहना था कि, कुछ ही

दिनों में आप इससे मुक्त हो जाएँगे। इतने दिनों का परिश्रम कुछ ही समय के लिए क्यों बर्बाद किया जाय? और जो आप उस घृणित जीवन के लिए अपने को उत्सर्ग करना चाहते हैं,—वह आपकी महानुभावता है। आप पहले शक्ति-संचय कर लें और बाद में अपनी शक्ति का व्यवहार करें।"

"हाँ, शक्ति-संचय की बात ठीक ही कह रही हो, मणि! शक्ति को छोड़ कर कोई कुछ नहीं कर सकता। पर, मैं देखता हूँ कि, शक्तिशाली होना मेरे भाग्य में बदा ही नहीं है। कारण है, मैं परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकूँगा। अड़चन ही ऐसी हो आती है और मैं इन अड़चनों से ऊपर उठने की अपने में सामर्थ्य नहीं पाता हूँ।"

मणि ने देखा—नवीन बोलते-बोलते और उदास होता जा रहा है। उसने समझा—नवीन अपने पथ पर लड़खड़ा रहा है। उसके पांव थरथरा रहे हैं। बोध होता है, इसके जीवन में कहीं व्याघात आ खड़ा हुआ है। पर वह कौन-सा व्याघात है यह जानने के लिये वह चंचल हो उठी। वह नवीन को प्रेम-भाव से देखती आ रही थी। वह यह नहीं चाहती थी कि, नवीन का जीवन संकटापन्न हो। वह चाहती थी, नवीन—जिस पर उसका मैत्री का अभिमान है,—अपने पथ पर अग्रसर होता चले। पर, वह कालिज छोड़ सकता है—परीक्षा से वहिर्मुख हो सकता है—क्यों? क्यों आज वह ऐसा करने को तैयार है? पढ़ने से यह विरक्ति क्यों? पढ़ना तो उसे सदा से रुचता रहा है और

पढ़ना ही तो इसके लिए आनन्द का एकमात्र साधन था ? तब फिर ऐसा क्यों सोच रहा है ? संभव है, कल जिस नारकीय जीवन को देख आया है, उसी से इसके हृदय में विरक्ति उत्पन्न हुई हो ! पर, यह तो व्याघात डालने वाला हो नहीं सकता। यह तो विघ्न नहीं कहा जायगा। सेवा करना इच्छाधीन है। फिर सेवा से विघ्न का सम्बन्ध क्या ? अवश्य कोई दूसरा घाव होगा।

"क्या मैं जान सकती हूँ, वह कौन सी अड़चन है, नवीन बाबू !"—एकाएक मौन भंग करते हुए मणि ने कहा और उत्तर की प्रतीक्षा में वह उसकी ओर देखने लगी।

नवीन असमंजस में पड़ गया। वह उत्तर दे तो क्या ? यदि यह सच सच कह दे कि कल परीक्षा की फी के रुपए वह पाकेटमार को छोड़ आया है, तो इसका मतलब यह होगा कि वह मणि से रुपया लेकर फी दाखिल कर दे। पर, मणि से रुपए लेकर ? यह संभव नहीं था नवीन के लिए। वह इस विषय में काफी सोच चुका है। हां, तो उसे अपनी अड़चन की बात कहनी होगी ?

वह फिर सोचने लगा। इच्छा हुई, वह कह दे उन रुपयों के ग़बन की बात। इससे दोनों कार्य्य सधेंगे—सच्ची-सच्ची वह सुना भी सकेगा और उससे द्रव्य की प्राप्ति कर अपनी राह भी परिष्कृत करेगा। वह अपना पथ परिष्कृत कर सकता है और मणि इसमें सहर्ष सहयोग प्रदान कर सकती है; पर, अपने लिये रुपए मांगना ? यह संभव नहीं कि वह अपने लिए मुँह खोले। यह

उसकी टेक थी। इसीलिए तो उसने अपने घर की एक एक करके छोटी मोटी चीजें गँवा डाली हैं। और इसीलिए, कल अपना वह मकान भी गिरवीं पर चढ़ा दिया है। तब फिर उपाय? क्यों अड़चन की बात कही गई? उसे अपने आप पर रंज हो आया। पर उत्तर देना था। मणि उत्तर की प्रतीक्षा में सामने बैठी देख रही है जो!

वह बोल उठा—"अभी मुझे इजाजत दो, मणि! कालिज जाऊँगा। क्यों मैं आज का दिन बर्बाद करूँ? अभी भी क्लास का समय है। लेक्चर एटेंड तो कर ही लूँगा। पर, मैं अपनी अड़चन की बात अभी न कहूँगा। यदि मैं संध्या को यहां आ सका तो अवश्य तुमसे कहूँगा—तुमसे न कहूँगा तो किससे कहूँगा, मणि!"

मणि ने देखा—आज इन्हें रोक रखना उचित नहीं। कम से कम रास्ते पर तो आ गए हैं। इसलिए वह बोल उठी—"अच्छा तो वैसा ही कीजिए। पर, संध्या को आप अवश्य आइएगा। क्यों ठीक रहा न?"

"आने का प्रयत्न करूंगा"—कहकर नवीन उठ खड़ा हुआ। मणि भी उठ खड़ी हुई। नवीन आगे की ओर बढ़ चला। मणि टेबुल पर रखे नोट को लेकर बोल उठी—"ठहरिए, नवीन बाबू! इसे आप अपने पास रख लीजिए। फिर काम आएँगे।"

नवीन कुछ आगे बढ़ गया था, बोला—"नहीं, मणि! रहने दो उसे अपने पास। मैं अभी रख कर क्या करूंगा? आव-

श्यकता पड़ने पर ले जाऊँगा। यह तुम्हारे रुपए नहीं, मेरे ही रहे—अभी यही समझकर जमा कर लो।"

मणि उसकी ओर देखती ही रह गई। नवीन वहाँ से कालिज की ओर चल पड़ा।

—छः—

नवीन तीर की तरह वहाँ से कालिज की ओर छूट पड़ा। उसके मस्तिष्क में रह-रह कर मणि की बात स्मरण हो रही थी। मणि उसे कितना चाहती है, मणि का उस पर कितना अकाट्य प्रेम है—नवीन इसी पर विचार करता जा रहा था। पर सहसा उसे स्मरण हो आया—कालिज जाने से लाभ क्या ? जब मैं फीस दाखिल नहीं कर सकता तो वहाँ जाने से लाभ ही क्या ? रुपए के लिए मैं और कोई दूसरा प्रबन्ध भी तो नहीं कर सका। मणि दे सकती थी, दे सकती है—पर, उसे ग्रहण करना—नहीं, रहने दो, उस बात को। अब उसकी चिंताधारा दूसरी ओर मुड़ी। तब तक वह उस घटनास्थल पर पहुँच गया था, जहाँ रुपए निकाले गए थे। आज न तो वहाँ कल जैसी भीड़ थी, न हंगामा था और न वह दृश्य ही; पर, उस स्थल ने उसकी स्मृति-पटल पर दूसरा ही चित्र अंकित कर दिया। वह पाकेटमार ! हाँ पाकेटमार ! कितना सुन्दर हृष्ट-पुष्ट जवान ! क्यों वह गर्हित कार्य करने पर

उतारू हुआ ? क्यों वह अपनी रोटी अपने परिश्रम से हासिल नहीं करता ? क्यों वह ऐसा नारकीय जीवन बिता रहा है ? ऐसे ही अपदार्थ जीवों से माता धरित्री कुंठित हो रही है। माँ का कल्याण ऐसों से नहीं हो सकता। पाकेटमार ! दूसरों को दिन-दहाड़े लूटना कितना गर्हित कार्य है ! नर-पिशाच !

वह सोचते-सोचते कालिज के बहुत पास पहुँच चुका था। इसी समय किसी ने पीछे से आवाज दी—"बाबू, जरा ठहरिए तो !"

नवीन ने पीछे की ओर मुँह कर देखा—कई आदमी जा रहे हैं। पर कोई भी परिचित नहीं, फिर किसने आवाज दी ? वह सोच ही रहा था कि, एक आदमी उसके सामने आकर बोल उठा—"जरा इधर तो आइए !"

नवीन ने सिर उठा कर देखा—वह वही पाकेटमार था !

नवीन घबराहट में पड़ा। कल इसने जेब काटी और आज वह क्या कहा चाहता है ? क्यों वह मेरे पीछे पड़ा हुआ है ? वह बोल उठा—"क्या कहा चाहते हो ?"

"हाँ, कहूँगा, जरा इधर तो आइए ! बहुत-से आदमी आ-जा रहे हैं। यही, उस गाछ के नीचे; ज्यादा दूर नहीं।"—उसने निकटस्थ वृक्ष की ओर संकेत किया।

वे दोनों गाछ की आड़ में जा पहुंचे।

पाकेटमार ने कहा—"कल तो मुझे आपने बचा लिया, नहीं तो साला जरूर मुझे छः महीने के लिए ससुराल भेज देता। छः महीने ही क्यों, इस बार तो साला एक बरस भी खटा सकता

था। मैं तो ऐसे कई छः मास देख आया हूँ, दादा ! साले मौज उड़ावें, हम लोगों की कमाई से गुलछर्रे उड़ाएँ और हमीं को जेल में भी सड़ने दें।"

नवीन उसकी ओर टकटकी बाँधे देख रहा था और वह अपनी धुन में बोलता जा रहा था।

"मेरा बेटा, दस दिन होता है, जेल से खट कर आया है। इस बार सालों ने उसे जेल में खूब जोता, उसकी हड्डी पसली वहीं चूर हो गई। बुखार लगा, उस पर काम का बोझ! आप ही कहिए, कब तक वह जी सकता था। जब वह मरने को हुआ, तब छोड़ा गया। किसी तरह वह घर आया, पर, आप ही कहिए, मैं उस हालत में उसे क्या कर सकता था? पर, बेटा है दादा ! कैसे मैं मरने दूँ? ममता बड़ी बला होती है!"

नवीन ने देखा—पाकेटमार बोलते-बोलते उदास हो गया है। जरूर इसके अन्तस्तल में एक छिपी वेदना है। वह बोल उठा—"क्यों ऐसा गर्हित कार्य करते हो जिससे तुम्हें जेल जाना पड़ता है? और लड़के को भी क्यों ऐसा पशु बनने दिया? क्या दूसरा रोजगार नहीं कर सकते?"

"वही तो मैं कहा चाहता हूँ, दादा! आप ही विचारिए। जब आदमी सब तरह से निरुपाय हो जाता है, उसके मनसूबे कोई काम नहीं करते और परिस्थिति भी सर्वथा विरुद्ध आ पड़ती है; उस समय वह यह नहीं जानना चाहता कि, कौन काम करने योग्य है और कौन नहीं। मैं भी किसी समय वैसा ही था। खूब

काम करता था—खूब रुपये कमाता था। पर आज मैं बदमाश हूँ, दूसरों के खून से जीता हूँ। खैर, मैं अपना वह किस्सा नहीं सुनाना चाहता। मैं तो कह रहा था— ममता बड़ी बला होती है। लड़का—बेटा मेरा—मरने के लायक हो चुका था। इधर तीन दिनों से बराबर मैं जेब तरसने के घात में लगा रहा, पर सारा दिन बेकार चला जाता, किसी दिन कामयाबी न होती। कल मुझे वह अवसर हाथ लगा। और आपको धन्यवाद मैं कैसे न दूँ, दादा! आपने तो मुझे बाल-बाल बचा लिया, नहीं तो उधर मैं एक साल खिचड़ी खाता और इधर मेरा बेटा टन् बोल जाता। भगवान भला करे आपका।"

नवीन सोच रहा था—यह बदमाश ही नहीं बुद्धिमान भी है। अवश्य परिस्थितियों के फेर में पड़कर ही ऐसा गर्हित कार्य करना पड़ा होगा। फिर भी उसके प्रश्न का उत्तर पूर्णतः नहीं मिला। वह सोच रहा था—वह स्वयं बदमाश है, दूसरों के खून से जीता है, पर वह चाहता तो अपने लड़के को योग्य बना सकता था। उसे इसने क्यों उस रास्ते पर जाने दिया? उसे यह जानने का कौतूहल हो उठा और फिर से उसने वह प्रश्न किया—"खैर तुम चाहे जो करो, पर तुमने अपने लड़के को क्यों नहीं पढ़ा लिखा कर मनुष्य बनाया?"

पाकेटमार हँस पड़ा। वह बड़ी देर तक हँसता ही रहा। फिर वह हँसतें-हँसते ही बोल उठा—"आप बड़े सूधे हैं भैया! इस काम को आप जैसा गर्हित समझते हैं, मैं वैसा नहीं समझता।

यदि मैं इसे गर्हित ही समझता तो क्यों खुद वह काम करता और क्यों अपने लड़के को इस रास्ते पर लाता ? और आप पढ़ने लिखने की बात चलाते हैं ? मैं खुद युनिवर्सिटी का ग्रैजुएट हूँ। फिर भी यह काम करता हूँ। पढ़ाने का मतलब तो आज कल यही रह गया है कि, वह दूसरों की नौकरी करे। और इसके सिवा युनिवर्सिटी हमें क्या सिखलाती है ? आप ही विचारें—हमें इसके सिवा और क्या शिक्षा दी जाती है ? शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए—मनुष्य बनाना। पर, आप ही विचार कर देखें, युनिवर्सिटी कहाँ तक मनुष्य बनाती है। मैं दूसरे देश की बात नहीं कहता। हमारे देश में सभी लुटेरे हैं—जितने बड़े हैं सभी लुटेरे हैं। इन साले मालदारों को देखो— उनका पेट बगैर गरीबों के खून के भरता ही नहीं है। और शासनकर्त्ता ? यही तो कहना चाहता हूँ—जहाँ का राजा स्वार्थ-परायण है, वह दूसरों की बढ़ती को कैसे देख सकता है ? उसके रग-रग में बदमाशी है। उसका न्याय दूसरों को दमन करना भर है। उसका दण्ड अपराधियों का सुधार करना न होकर उन्हें और बढ़ावा देना है। दण्ड का उद्देश्य होना चाहिए सुधार। पर, सुधार कहां तक होता है, आप ही विचारें। वह कारण का इलाज नहीं करता—नहीं करना जानता। फिर आप ही बतावें, देश में अनाचार नहीं फैले तो क्या हो ? मुझे ऐसा शासन पसन्द नहीं। मैं अन्यायियों के खून से अपना हाथ रंगना चाहता हूँ। मैं पूंजीपतियों की विनाश-लीला देखना चाहता हूँ। मैं लुटेरा हूँ— बदमाश, गिरहकट हूँ— डाकू

हूँ—और जो कहिए सो हूँ—पर क्यों हूँ? इसका समाधान मैंने कर दिया। मैं रोज ताक में रहता हूँ और यह देखिए छुरा मेरे साथ रहता है। मैं अवसर पाकर इससे काम लेना जानता हूँ—काम लेता हूँ; पर, कल मुझ से भूल हो गई है—मैंने कल धोखा खाया है। नहीं तो आप को कष्ट नहीं देता। मैं जानता था—आप विद्यार्थी हैं, और विद्यार्थियों पर हाथ साफ करना मेरी नीति के विरुद्ध है; क्योंकि, मैं विद्यार्थी रह चुका हूँ। पर, मेरा लड़का मरणासन्न था। तीन दिनों से मेरा अनटन रहा। लड़का पथ्य के लिए छटपटा रहा था। किसी साले ने मांगने पर भी मुझे खानेभर न दिया; फिर मैं निरुपाय था। इच्छा थी, आज जो भी मिलेगा, उससे ही काम चलाऊँगा। प्राणघात होने से तो बचूँगा। और इसीलिए आप के साथ अन्याय किया।"

नवीन ने कान खोल कर उसकी सारी बातें सुनीं। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि, इतना पढ़ा-लिखा व्यक्ति ऐसे काम में प्रवृत्त हो सकता है। उसने उसकी विचार-धारा की तह में प्रवेश करके देखा—उसे उस पर दया के बदले श्रद्धा हो आई। कुछ देर पहले उस पर जैसी घृणा थी, वैसी न रही। उसने सहानुभूति के स्वर में कहा—"हाँ, तो अब आपका लड़का कैसा है?"

"लड़का मेरा! आपको धन्यवाद है, आपके रुपये नहीं मिले होते तो लड़का मेरा कहीं का न रहता। बीमारी बुरी तरह बढ़ गई थी। कल मैंने दवादारू में आप के रुपये खर्च किए। एक मामूली-जैसे वैद्य को लगाया—और आपको धन्यवाद है, उसी

से अच्छा भी हुआ। आज अच्छा है, पर अभी भी उसके आराम होने में देर है, किन्तु अब खतरा नहीं रहा। सालों ने नस नस में बीमारी भर छोड़ी थी! साले .... !"

नवीन को बड़ी प्रसन्नता हो रही थी कि, उसके रुपये से इसके लड़के का उपकार तो हुआ। इससे बढ़कर नवीन के लिए प्रसन्नता की और कौन सी बात हो सकती थी? उसने प्रकट रूप से कहा—"पर, आप क्या कहा चाहते थे— सो तो कहा नहीं; मुझे कालिज जाना है।"

"मुझे आप न कहो, दादा, मैं अपने काम से गिर गया हूँ, मेरे लिए 'तुम' ही यथेष्ट है। खैर कालिज जाना है तो अब मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा। आओ और अपने रुपए लेते जाओ। समझ रखना—नर-पिशाचों के भी हृदय होते हैं। वे भी दूसरों पर दया-ममता करना जानते हैं। तुम्हारे रुपए से अवश्य मेरा उपकार हुआ है; पर यह उपकार तुम्हारा अहित साधकर ही हुआ है। तुम्हें रुपए फीस के लिए दाखिल करने थे और कदाचित् ये रुपए तुमने बड़े मुश्किल-मसक्कत से जोड़े थे।"

उसने फटे कुर्ते को हटाकर अपनी कमर से नोट निकाल कर नवीन के हाथ पर रखते हुए कहा—"गिन लो, अस्सी हैं, भैया! पाँच रुपए पाँच आने मैंने खर्च किए हैं। और मुझे उतने की ही जरूरत थी। इससे अधिक रखकर मैं क्या करता? जरूरत पड़ने पर तो कोई मालदार असामी हाथ लगेगा ही।"

नवीन आश्चर्य-चकित हो उसकी ओर देखने लगा। अद्भुत

व्यक्ति है यह—उसकी अन्तरात्मा बोल रही थी। पर, इसने जाना कैसे कि ये रुपए मेरी फीस के थे ? वह बोल उठा—"आप की बड़ी कृपा है, पर यह तो कहिए, आपने जाना कैसे कि ये रुपए फीस के थे ?"

वह हँस पड़ा, बोला—"बड़े भोले जीव हो, भाई! तुम्हें इसका पता नहीं कि, इन्हीं नोटों के साथ तुम्हारे खर्च का निर्ख भी था। देख लो, अब भी निकाल कर।"

नवीन को सहसा ख्याल हो आया कि उसने नोट के साथ एक चिट पर खर्च करने का व्योरा भी लिख छोड़ा था!

पाकेटमार फिर से बोल उठा—"अगर वह निर्ख नहीं रहता तो मैं रुपए लौटाने का कष्ट नहीं करता। उसी से तो पता लगा कि तुम कालिज के विद्यार्थी हो और ये रुपए तुम्हें फीस के रूप में जमा करने हैं। यों तो चेहरे से मैं तुम्हें विद्यार्थी ही समझता था और यह भी समझता था कि कम-से-कम एक-दो रुपए तो तुम्हारी जेब में होंगे—और उतने से भी मैं अपना काम चला सकता था। पर, घर जाकर देखा—अहा! एक....दो....आठ नोट थे और शेष रुपए और आने! बड़ी खुशी हुई, समझा अब मौज से लड़के की दवा कराऊँगा। वैद्य क्या, बड़े चिकित्सक को लाऊँगा। पर सहसा, एक चिट मेरे पैर के निकट गिर पड़ा, उसे उठा कर देखा। आह! मैंने बड़ा बुरा किया। निरीह प्राणी को सताना मेरा काम नहीं। फिर भी आवश्यकता थी और मैं मजबूर था। मैं उसी समय लपके-लपके एक वैद्य के यहां गया और उसे

अपने घर बुला लाया। दो रुपए उसे फीस के दिए। ढाई रुपए दवा में खर्च किए, शेष में से खाना खाया। अभी शायद दो-तीन आने बचे होंगे। पर उन्हें मैं नहीं दूँगा—अभी खाना तक नहीं खाया है। कल मैं तीसरे पहर से रुपए लेकर तुम्हारी तलाश में रहा; पर तुम से दिन भर भेंट न हुई। रात को लौटने के समय तुम्हें देखा था, पर एक स्त्री तुम्हारे साथ बैठी थी। इसलिए मैंने तुम्हें नहीं टोका। आज दस बजे से ही इसी रास्ते पर चक्कर काट रहा हूँ, तुम्हें तुम्हारी चीज सौंपे बिना मुझे कल नहीं पड़ी। रात को—सच कहता हूँ—अच्छी तरह नींद नहीं आई। आती कैसे ? तुम्हारी चिन्ता जो थी। अभी तुम्हें पाकर मेरा मन हलका हुआ—खैर, भार तो उतर गया। पर, यह तो कहो आज फी जमा हो सकता है वा नहीं ? शायद तुम्हें 'डिफाल्ट' भी देना पड़े। देखोगे, क्या 'डिफाल्ट' लगेगा। क्या तुम उतना भर बन्दोबस्त नहीं कर सकते ?"

वह उत्तर की प्रतीक्षा में उसकी ओर देखता रहा।

नवीन ने देखा—वह बुद्धिमान ही नहीं—विवेकशील भी है। और इसका हृदय तो देखो—उसकी अन्तरात्मा बोल रही थी—"रुपए वापस करने के लिए कितना व्यग्र हो उठा है। इतनी आत्मीयता! कौन कहता, यह नर-राक्षस है!" और वह प्रकट रूप से बोल उठा—"खैर, आपकी विवेकशीलता पर मैं मूक हूँ और आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे चिंता से रहित किया। नहीं तो मैं फिर से किसी भी हालत में फीस दाखिल नहीं कर

सकता। पर, आप इस समय इजाजत दें। देखूँ, आज दाखिल कर सका तो अच्छा।

और वह चलने को उद्यत हुआ।

वह पाकेटमार बोल उठा—"मुझे शर्मिन्दा मत करो, भैया! खैर, जाओ इस समय। फिर कभी तुम से मिलूँगा।"

"हाँ, अवश्य-अवश्य!"—आतुरतावश नवीन बोल उठा,—"और आप की बातें मुझे बड़ी प्रिय जँचीं—सुनने की उत्कण्ठा है, मैं आप की आपबीती सुनना चाहता हूँ। बड़े अद्भुत व्यक्ति हैं आप।"

"सुनना चाहते हो तुम! अच्छा सुनाऊँगा तुम्हें एक दिन। पर, किसी साले ने इसके पहले सुनने को न चाहा। आज मेरा सौभाग्य है—कम-से-कम तुम एक गुणग्राहक तो मिले! और गुण-ग्राहकता भी एक बड़ी चीज है, भैया! पर एक बात कहूँ? अपना नाम बताओगे? अगर तुम्हें आपत्ति..............."

"आपत्ति की कौन सी बात है? मुझे लोग नवीन कहकर पुकारते हैं। और आपका....?"

"ललित!"

"अच्छा तो ललित दादा! मैं चला।"

नवीन आज ललित नामधारी पाकेटमार से मिलकर एक दूसरी दुनियाँ में जा पहुँचा। आज उसे बेहद खुशी हो रही थी। रुपए पाने से नहीं—उससे मिलकर। वह कालिज की ओर चल पड़ा।

नवीन सीधे प्रिन्सिपल राय से जा मिला। कालिज के अच्छे

विद्यार्थी के ख्याल से प्रिन्सिपल राय नवीन को चाहते और स्नेह की दृष्टि से देखा करते थे। वह यह भी जानते थे कि नवीन गरीब है। यही कारण था कि, नवीन की प्रतीक्षा में वह अभी तक थे।

प्रिन्सिपल राय उसे देखते ही बोल उठे—"क्या तुम्हें रुपए का प्रबन्ध हो गया है ? कल क्यों नहीं आए ? तुम्हें आना चाहता था। मैं यहाँ भी तुम्हारे लिए फीस का संग्रह कर ले सकता था। कहो, रुपए लेकर आए हो ?"

नवीन ने अपनी रूमाल से नोट निकाल कर उनके सामने टेबुल पर रख दिए।

प्रिन्सिपल राय ने कहा—"जाकर क्लर्क को दे दो और वहीं फार्म भी होगा—भर देना।"

नवीन उन्हें अभिवादन कर आफिस की ओर चल पड़ा।

—सात—

नवीन उस दिन खूब सवेरे ही कालिज से लौट आया। आज का दिन उसके लिए बड़ा आनन्द-जनक था। घर आकर कपड़े बदले; मुँह-हाथ धोया। माँ नित्य नियमानुसार जलपान और चाय लेकर उसके कमरे में आई। नवीन अपनी कुर्सी पर आ बैठा और माँ वहीं आसन बिछाकर एक ओर बैठी। नवीन ने जलपान का पात्र हाथ में उठाते हुए कहा—"माँ, एक बात कहता हूँ, बुरा तो न मानोगी ?"

"बुरा मानने की कौन सी बात है ?"—माँ ने हँसते हुए कहा।

माँ के लिए आज कदाचित् पहला ही अवसर था कि, वह अपने बेटे के मुँह से बुरा माननेवाली बात सुनने को तैयार बैठी है। उसके जीवन में—जब से उसने नवीन को पाल-पोस कर इतना बड़ा किया—इतना पढ़ाया लिखाया—कभी ऐसा अवसर न आया था कि नवीन की शिकायत वह सुन सके। पर नवीन के मुँह से आज बुरा मानने की बात सुनकर वह कुछ अचम्भित हुई—जरा चंचल भी हो उठी। वह सुनने की प्रतीक्षा में नवीन की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगी।

नवीन बोल उठा—"मैंने एक बात छिपाकर बड़ा अपराध किया था, जिसके लिए मुझे खेद है। छिपाने का भी कारण था। वह यह कि, यदि मैं साफ-साफ वह कह देता तो तुम बड़ी मर्माहत होती। इसीलिए मैंने नहीं कहा। पर, परमेश्वर को धन्यवाद है, आज मैं अपने को इस योग्य पा रहा हूँ कि, तुम से मैं वह बात कह दूँ।"

माँ का कौतूहल बढ़ चला। वह सुनने की उत्कंठा में बोल उठी—"आखिर गलती किससे नहीं होती, बेटा ! अगर तुमसे ऐसी गलती हो ही गई थी तो, मैं दुखी होकर भी तुम्हें रंज न कर सकती। माँ को छोड़ अपने बेटे के कष्टों का और कौन शमन कर सकता है ? मुझे अभिमान है, बेटा ! तुम जैसा पुत्र पाकर।"

माँ की आँखों में स्नेह के आँसू छलछला आए। उसका हृदय आनन्द से भर आया, उसके रोम-रोम में पुलक भर गई।

नवीन ने कल वाली पहली घटना कह सुनाई और उसका उपसंहार—आज वाली बात भी।

माँ ने सारी बातें सुन लीं--उसे बड़ा विस्मय हुआ, साथ ही आनंद भी। वह बोल उठी—"भगवान जानता है, बेटा ! मैंने किसी का अनिष्ट नहीं किया है। एक जमाना था, अपने सब कुछ थे—जमींदारी थी, नौकर-चाकर थे। तुम्हारे पिता धर्मप्राण व्यक्ति थे। अच्छी तनख्वाह थी, पर आज सभी सपना है। समझती हूँ, यह भगवान का अभिशाप है। किया होगा उस जनम में कोई खोटा काम ! मगर उसके लिए चिन्ता नहीं है। तुम्हारे

पिता की थाती तुम हो, मैं तुम्हीं पर सारे अरमान लाद कर जी रही हूँ। मुझे विश्वास है, जब तक मैं किसी का अनिष्ट नहीं करूंगी, तब तक कोई क्यों मेरा अनिष्ट करेगा। परमेश्वर बड़ा विचारक है; वह दूध का दूध और पानी का पानी करता है। पर, बड़े अचरज की बात है, बेटा! उसने कैसे रुपए लौटा दिए!"

"यही तो आश्चर्य की बात है, माँ! लुटेरा होकर भी वह अब तक कैसे मनुष्य बना हुआ है! उसने कहा था—'मैं वे रुपए नहीं लौटाता, यदि तुम्हारी चिट पर यह लिखा नहीं होता कि, ये रुपए फीस के लिए हैं।' पर, उसकी सहृदयता तो देखो मां! पूरे अस्सी जो फीस में मुझे देने थे उसने लौटा दिये। शेष भी लौटा देता मगर उसका लड़का सख्त बीमार था जिसके लिये उसे उपचार करना जरूरी था।"

"तो क्या वह पढ़ा-लिखा भी है?"—माँ ने कहा।

"हां मां! कुछ साधारण लिखा पढ़ा नहीं—वह ग्रेजुएट है—बी० ए० पास होगा।"

मां का कौतूहल बढ़ चला। वह बोल उठी—"बी० ए० पास होकर भी यह घृणित कार्य करता है? कैसी उसकी बुद्धि है, कैसा उसका विचार है। वह चाहता तो अच्छी सी नौकरी कर अपनी गुजर कर सकता था।"

वह कुछ देर तक चुप रही—न जाने क्या सोच रही थी वह। कुछ देर के बाद वह आप-ही-आप बोल उठी—"मनुष्य का पहचानना तो बड़ा मुश्किल है, बेटा! कोई कैसे कह सकता है कि

फलाँ व्यक्ति फलाँ तरह का है। खैर, भगवान को धन्यवाद है—पाँच रुपए के ही सिर गए—काम तो निकल गया।"

उसने निश्चिंतता की साँस ली। इतने में नवीन का भोजन-पान भी शेष हो चुका था। माँ भी वहाँ से उठ कर आवश्यक कामों के लिए भीतर चली गई थी। नवीन ने बंशी उठाई और कपड़े पहन कर मणि से मिलने को निकल पड़ा।

अभी संध्या होने में कदाचित् एक-डेढ़ घंटे की देर थी। मणि आज सजधज कर बैठी थी। मालूम पड़ता था—कहीं जाने की तैयारी में थी। नवीन ने इसी समय उसके कमरे में प्रवेश किया।

मणि ने नवीन को बड़ा उत्फुल्ल देखा। आज उसमें न तो वह व्यग्रता थी और न वह चंचलता। नवीन बाँसुरी लेकर पहुँचा था। इससे भी उसकी प्रसन्नता प्रत्यक्ष दीख पड़ती थी। नवीन को बाँसुरी बड़ी प्रिय थी और इसमें उसने अच्छी दक्षता भी प्राप्त कर ली थी।

नवीन कोच पर अच्छी तरह जम कर बैठ चुका था और मणि भी उसके निकट ही दूसरे कोच पर बैठी थी।

मणि ने उसकी बाँसुरी अपने हाथ में लेते हुए कहा—"क्या ही अच्छा होता यदि मैं भी बाँसुरी बजाना जानती! देखती हूँ मैं इसे सीख न सकूँगी।"

नवीन ने रसिकता के स्वर में कहा—"सारी बातें तुम्हीं कैसे सीख लोगी, मणि! कुछ हमलोगों के लिए भी तो छोड़ दो।"

"क्यों, यदि मैं सीख जाऊँगी तो इससे तुम्हारा दर्प चूर्ण

होगा ? यदि यह बात है तो मैं सीखना नहीं चाहती और न सीखूँगी ही ।"

नवीन खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने समझा, मणि रोष में आ गई है। वह चिढ़ाने के ख़्याल से बोल उठा—"हाँ, मेरा दर्प चूर्ण होगा, मणि! इसीलिए तो मैं तुम्हें सिखाना नहीं चाहता। यदि तुम सीखना चाहोगी तो तुम मुझसे बहुत आगे बढ़ जाओगी। तुम्हारी बुद्धि बड़ी तीव्र है। फिर तुम मुझे क्यों पूछने लगी ?"

पर, इस बार मणि चिढ़ी नहीं और न चिढ़ने का कुछ लक्षण ही दीख पड़ा। बात यह थी कि, उसकी बातों से अनायास ही मणि के प्रशंसा-सूचक शब्द निकल पड़े थे। पर, मणि ने अपने भाव को छिपा लिया और अपने आंतरिक आनंद को भी वह छिपाए ही रही। नवीन ने उसकी ओर बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा। वह देखना चाहता था, मणि चिढ़ी है वा नहीं। कदाचित् मणि का चिढ़ना उसे बड़ा भला लगता होगा। पर, वह अपना निशाना चूक गया था।

मणि ईषत् मुस्किराती हुई बोल उठी—"जब यह बात है तो मैं जरूर सीखूँगी और एक दिन भरी सभा में तुम्हें परास्त करूँगी। देखूँगी, तुम्हारा दर्प कितना बढ़ा हुआ है।"

इस बार नवीन को हार खानी पड़ी। वह जानता था, मणि से यह असंभव नहीं। मणि जैसी बुद्धिमती विदुषी जिस काम में हाथ डालेगी, उसमें निश्चय ही सफलता प्राप्त कर लेगी।

अब नवीन की एक प्राचीन स्मृति सजग हो आई। वह उस समय की बात है, जब युनिवर्सिटी की ओर से प्रतियोगिता-पुरस्कार की घोषणा की गई थी। उसमें अपने अपने कालिज से अन्य विद्यार्थियों के साथ इन दोनों ने उसमें भाग लिया था। उस समय नवीन ही अपने कालिज में, सर्वप्रथम समझा जाता था। बी० ए० भी उसने 'डिसटिंकशन' के साथ पास किया था। कालिज के सभी छोटे से बड़े तक जानते थे कि नवीन को ही यह अलभ्य पुरस्कार हाथ लगेगा। पर जब अखबारों में प्रकाशित हुआ कि, बी० एन० कालिज की मणि देवी नाम्नी छात्रा सर्व प्रथम हुई है तो इसके प्रसंशकों को बड़ा खेद हुआ, पर संतोष इतना ही था कि, नवीन ने दूसरा स्थान प्राप्त किया था। उस समय इसके निंदकों ने जी खोलकर इसकी चुकटियां उड़ाई थीं। और वही अवसर था जब कि एक सार्वजनिक सभा में इन दोनों पुरस्कार-विजेताओं को पुरस्कृत किया गया था; और सौभाग्य से उसी दिन सर्व प्रथम इन दोनों में प्रेम-सूत्र का निर्माण हुआ। नवीन की आज वही स्मृति सजग हो आई थी। पर आज हार खाकर भी, उसी स्मृति के बल पर उसके चेहरे पर पुलक छा गई। वह हँसते हुए बोल उठा—"दर्प चूर्ण करना तुम्हारे ही भाग्य में बदा है, मणि! नहीं तो अभी तक मुझे कहीं भी हार नहीं खानी पड़ी है। मुझे याद है और मैं भूला नहीं हूँ जब कि, एक दिन तुमने मेरा सारा अहंकार चूर्ण-विचूर्ण किया था। और, आज फिर यदि तुम उसे चूर्ण करने के लिये

बद्ध-परिकर हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इस बार दोनों ठहाका मार कर हँस पड़े। हँसी से कमरा गूंज उठा।

इसके बाद मणि बोल उठी—"अच्छा, आज अपनी बंशी संभालो, नवीन! बहुत दिनों से तुम्हारी बंशी नहीं सुनी।"

नवीन की बाछें मानो खिल गयी। कुछ देर के लिये उसके मुंह पर हर्ष की आभा चमक उठी। और उसने मस्त होकर बांसुरी पर एक मादक तान छेड़ी।

मणि जब कभी उसकी बंशी सुनती, वह तन्मय हो जाती। न जाने कैसी मादक वंशी थी वह। वह विकल हो जाती—बेसुध हो जाती। हां, ऐसा वह बंशी बजानेवाला था और ऐसी थी उसकी वंशी।

पर इसी समय नवीन को स्मरण हो आया—आज संध्या को अस्पताल जाने की बात थी। यह विचार उठते ही बांसुरी आप-से-आप चुप हो गई। मणि का भी ध्यान भंग हुआ। वह बोल उठी—"क्यों? क्यों नवीन! बीच ही में क्यों?"

मणि ने नवीन को जरा चंचल देखा, अब उससे एक क्षण भी ठहरना कठिन हो चला था।

"आज मुझे उसे देखने को अस्पताल जाना था, मणि! व्यर्थ बांसुरी के फेर में, देखो, काफी झुटपुटा हो आया।"

नवीन बाहर की ओर खिड़की की राह खड़ा होकर देखने लगा। "तो क्या अब नहीं जा सकते? चलो न, मैं भी जरा देख

आऊँ। चलोगे ?"—मणि जैसे उठने-उठने को हो गई।

"चलो।"

और दोनों उठकर तैयार हो गए।

मणि ने सोफर को बुलाया और उससे मोटर निकालने के लिये कहा। तब तक वह भीतर की ओर चल पड़ी। नवीन उसकी प्रतीक्षा में खिड़की के पास ही खड़ा रहा।

पांच मिनट भी होने न पाए थे कि, मणि आ पहुंची और नवीन को साथ लेकर सीढ़ियों के रास्ते नीचे जा पहुंची। मोटर लगी थी। मणि स्वयं सोफर की सीट पर जा बैठी और नवीन उस के बगल में बैठा। मणि ने हॉर्न देकर मोटर सार्ट कर दी।

रास्ते में मणि बोली—"कल आने के समय कैसा देख आए थे ?"

"अच्छी अवस्था में थी। उस समय तो उसे नींद हो आई थी।"

"तो जान पड़ता है, अब अच्छी हो गई होगी।"

"हो सकता है।"

'हो सकता है'— नवीन का साधारण उत्तर था। कारण था, वह सोच रहा था कल की घटना को। यदि उससे भिखारिन की भेंट न हुई होती और न वह उसकी देखभाल के लिए तैयार होता तो आज वह कहां रहती ? कहां रहता उसका वह नवजात पुत्र ? साथ ही उसके मस्तिष्क में एक वार वे दर्द भरी तस्वीरें उतर आईं जिन्हें वह भिखारियों के महल्ले में देख आया था। उन चीजों ने एक वार नवीन को अस्थिर कर डाला। वह चंचल हो उठा और

उसकी चंचलता मणि से छिपी न रह सकी। वह बोल उठी—

"अभी तुम क्या सोच रहे हो, नवीन ! क्यों तुम इतने अन्य-मनस्क होते जा रहे हो ?"

नवीन ने सच सच कह दिया—"संयोग देखो मणि ! कल यदि भिखारिन मुझसे न मिलती, न मैं उसकी अवस्था देख आता और न तुम से रुपए मिलते तो आज उसकी कौन सी हालत होती ? और क्षोभ तो होता है वहां का दृश्य स्मरण कर जहां प्रत्यक्ष नरक का दृश्य उपस्थित है !"

"नरक और स्वर्ग कहीं अन्यत्र नहीं हैं, नवीन ! वे तो यहीं हैं। स्वर्ग-नरक तो केवल काल्पनिक विषय है और वह इसलिये कि मनुष्य बुरे कार्यों से डरे जिससे उसे नरक न जाना पड़े और वह उन कामों का वरण करे जिनसे उसे स्वर्ग का सुख प्राप्त हो।"

"ठीक है, मणि ! मानता हूँ। पर कोई अन्याय करता है तो क्यों करता है—इस पर भी एक वार विचार करके देखो। संसार में सुख कौन नहीं चाहता पर, कितने को वह नसीब होता है। मनुष्य अपने जानते उसकी खोज में बराबर लगा रहता है, पर जितना ही वह खोजता है, उतना ही सुख उससे विदा होता जाता है। और कदाचित् इसी सुख की प्राप्ति में भटक कर मनुष्य गर्हित कार्यों तक को करने को भी उतारू हो जाता है। गर्हित कार्य परिस्थिति विशेष के कारण करना पड़ता है। ऐसी हालत में यदि उसकी परिस्थिति उसके अनुकूल बना दी जाय और वैसी हालत में भी वह यदि उन अपदार्थ कार्यों से वहिर्मुख न हो सके तो समझना

चाहिए कि, वह मनुष्यता से बहुत बाहर चला गया है। पर, मेरा ख़्याल है, ऐसा कोई ही कर सकता है। मनुष्य को बुराई की ओर जाने की 'इन्सटिंक्ट' है, पर वह "इन्सटिंक्ट" दबाई जा सकती है।"

इस विषय पर और भी आलोचना चल सकती थी, पर इतने में मोटर मेडिकल कालिज के हौस्पिटल कंपाउंड में पहुँच चुकी थी। दोनों उतर पड़े। वह विषय आप ही आप दब गया।

वे दोनों उस कमरे के निकट जा पहुँचे। बाहर में ही भिखारिन से भेंट हुई। आज नवीन ने उसमें कल से बहुत अंतर पाया। कल रास्ते की भिखारिन—अपदार्थ—कुत्सित—अछूत, आज एक समझदार घर की स्त्री सी दीख पड़ी।

भिखारिन ने नवीन को देखते ही प्रणाम किया, साथ ही उसकी संगिनी मणि को भी। और वह बोल उठी—"रधिया—बेटी मेरी—भली चंगी है, बाबू! क्या भीतर चलकर उसे देखिएगा?"

"हाँ, उसका बच्चा?"

"बच्चा भी अच्छा है—कितना सुंदर!"—भिखारिन आनंदातिरेक में बोल उठी—"बाबू, मैं आप का गुण कहां तक गाऊँ, आप न होते तो................।"

बीच ही में नवीन बात काट कर बोल उठा—"चलो, भीतर हम लोग वहीं चलकर देखेंगे।"

भिखारिन भीतर गई और वे दोनों पीछे पीछे। उस समय नर्स बच्चे के शरीर में पाउडर मल रही थी और रधिया उसकी ओर ललचाई आँखों से देख रही थी।

रधिया ने दो आगंतुकों को देखा—उसने शर्मा कर नीचे की ओर आँखें कर लीं।

नवीन ने देखा—रधिया कितनी कम उम्र की है, और इसी उम्र में उसे पाशविक वासनाओं का शिकार होना पड़ा। नवीन को उस पर दया हो आई।

इसके बाद नर्स से रधिया के सम्बन्ध में नवीन के साथ बात-चीत हुई और पता लगा कि, रधिया का डर जाता रहा है। बच्चा हृष्ट-पुष्ट नहीं, पर बुरा नहीं है। अभी यहीं रहे तो अच्छा।

"क्या इसे आप ले जाना चाहते हैं ?"—नर्स ने पूछा।

" नहीं तो ? " —चौंक कर नवीन बोल उठा। उसे कदाचित् क्षोभ भी हुआ यह जानकर कि, कहीं वह यह न समझे, कि रधिया से इसकी कोई बुरी संगत है।

"तब ठीक है , बाबू !" —वह कुछ देर तक रुक कर बोली— "हम लोगों को इसकी माँ से सारी बातें मालूम हो गई हैं। आप ने कल जिस मनुष्यत्व का परिचय दिया है; बहुत कम आदमी हैं जिनका ध्यान इधर आ सकता है।"

मणि की मुखाकृति पर दर्प की एक आभा नाच सी उठी, न जाने क्या सोच कर। पर, नवीन ने निश्चिंतता की एक सांस ली। शायद यह समझ कर कि, भिखारिन से उसने सारी बातें मालूम कर ली हैं।

नर्स अपना काम करके चल पड़ी, उसने बच्चा जच्चा के पास ही लिटा दिया।

वे दोनों कुछ देर तक वहीं बैठे रहे। नवीन को आज अपनी सफलता पर बड़ी प्रसन्नता हो रही थी।

आज भिखारिन को अपने सामने मणि को देख कर बड़ी उत्सुकता हो रही थी। कई वार उसके ओठ हिल कर रह गए पर उससे बोला न गया। वह मणि को देख कर ख्याल कर रही थी कि, यह हमारे बाबू की बहू है। पर, उसे तो मणि को भी धन्यवाद देना था, क्योंकि उसके ख्याल से तो वह नवीन की बहू थी न! वह अपने को दबाए न रख सकी, वह बोल उठी—"बाबू जैसे आप दयालु हैं, वैसी ही आप की बहू भी मालूम पड़ती हैं। नहीं तो हम गरीबों को देखने ये क्यों आतीं?"

मणि का मुख-मंडल आरक्तिभ हो उठा। रोष और लज्जा से उसके कान की जड़ें झनझना उठीं। नवीन को भी जरा बुरा लगा, पर वह विचलित न हुआ। आखिर, भिखारिन का क्या दोष? ऐसा कहना शायद अप्रासंगिक नहीं कहा जायगा। तब बहू न कह कर वह बहन भी तो कह सकती थी? बहन उसने क्यों नहीं कहा? नहीं, समाज का दोष जो ठहरा!

नवीन ने सिर हिलाते हुए कहा—"जो तुम समझ रही हो—वह नहीं है।"

भिखारिन के मुँह पर एक हलकी सी मुस्किराहट दौड़ गई। वह बोली उठी—"मैं समझ गई—मैं समझ गई। खैर, बुरा न मानियेगा।"

मणि इतने में उठ कर बाहर की ओर चल पड़ी। नवीन भी उठ गया। दोनों बाहर आए, साथ ही भिखारिन भी आई।

दोनों मोटर पर आ बैठे, भिखारिन ने समझा, शायद देवी जी नाराज हो गईं। इसलिए वह मणि से बोल उठी—"माफ करना, बहन! मेरा अनुमान गलत निकला। हम गरीब कहां तक मनुष्य की परख रख सकते हैं?"

मणि ने शायद उसकी बातें सुनीं वा नहीं—कौन जाने? उस का मस्तिष्क न जाने किस दुनियां की सैर कर रहा था। मोटर अपने गंतव्य पथ पर चल पड़ी।

—आठ—

नवीन इन दिनों अपने पढ़ने-लिखने की ओर अधिक झुक गया। उसकी परीक्षा के लिए अब कुछ ही महीने शेष बचे थे। उसे अपना ख्याल था—कितनी गरीबी से उसकी माँ घर का काम चला रही है और उसे यह भी सदैव स्मरण रहता कि वह अपने मकान को गिरवीं पर रख कर अपनी परीक्षा फी चुकाने में समर्थ हो सका था। वह यद्यपि अपनी अवस्था के ख्याल से पढ़ने की ओर अधिक खिंच गया अवश्य, फिर भी वह रधिया और उसकी भिखारिन माँ को भुला न सका।

एक दिन व्रजेन्द्र, रसिक और मुरारी नवीन से मिलने को उसके घर आए। संध्या का अड्डा उस दिन वे लोग वहीं जमाना चाहते थे। संध्या को नवीन या तो स्वयं उनमें से किसी के घर जाता या उसके यहां ही अड्डा जमता और नवीन उसमें अच्छी दिलचस्पी लेता। यह कार्यक्रम बहुत दिनों से चला आ रहा था। पर, इधर कुछ दिनों से इसमें व्यतिरेक उठ खड़ा हुआ। कारण

था—नवीन अपनी फी के लिए अधिक चिंतित हो उठा था। पर, अब तो उसकी चिंता दूर हो गई थी और वह स्वयं चाहता था कि कम से कम मित्रों का सहवास, कुछ देर के लिए ही सही, उसे प्राप्त हो। आज नवीन को वही अवसर प्राप्त हुआ था।

तीनों उसके अंतरंग मित्र थे और वे तीनों नवीन को अपने हृदय से चाहते थे। कारण था—नवीन अपने कालिज में ऐसे लड़कों में से था जिसकी सज्जनता हद दर्जे तक बढ़ी थी और साथ ही, वह अपनी श्रेणी का सर्व प्रथम विद्यार्थी था। तीनों को पढ़ने-लिखने में उससे सहायता मिलती। केवल इतना ही नहीं, नवीन की विद्वत्ता के वे सब कायल थे। यही कारण था कि, उन पर इस की धाक थी।

व्रजेन्द्र को विगत घटनाओं की बातें मालूम हो चुकी थीं। उसका कौतूहल बढ़ चला था। आज वे सब अपने अड्डे पर इन्हीं प्रसंगों पर आकर तर्क करने को जुटे थे।

नवीन की एक छोटी-सी कोठरी थी, वहीं पर वह अपनी स्टडी भी करता और वहीं सोता भी। इसके सिवा वही उसका ड्राइंग रूम था—वहीं अपने अतिथियों की आदर-संवर्द्धना भी करता। आज वे तीनों यहीं आकर जुटे थे। किसी ने टूटी कुर्सी की शरण ली और किसी ने चौकी की।

मुरारी कुर्सी पर बैठते हुए बोल उठा—"देखता हूँ नवीन! इन दिनों तुम्हें भावुकता का रोग अधिक बढ़ गया है। हाँ, यह तो कहो—उस भिखारिन का क्या हुआ?"

"हाँ भाई, बात तो सच्ची है, पर, तुम तो महात्मा निकले, भाई! हमलोगों को, चाहे दूसरा कुछ भी कहे, तुम पर बड़ा गर्व है।"

रसिक ने बड़ी गंभीरता से ये बातें कहीं और उत्तर की प्रतीक्षा में तीनों उसकी ओर देखने लगे।

नवीन कुछ देर के लिए उदास हो गया, न जाने क्यों? वह समझ रहा था, शायद वे तीनों आज उसे दिक करने को आएहुए हैं। पर, अपने को उसने संभाला और वह झेंपते हुए बोल उठा—"तुम बड़े वैसे हो रसिक! 'महात्मा' कहकर चिढ़ाना! यह ठीक नहीं भाई!"

रसिक बीच ही में बात काटकर बोल उठा—"इसे तुम चिढ़ाना कहते हो, नवीन! क्या सच कहना चिढ़ाना है? तुम चाहे जो समझो, तुम पर हमलोगों को गर्व है।"

रसिक ने कुछ चिढ़ाने के गरज से ऐसा नहीं कहा था।

नवीन का मन कुछ साफ हुआ वह बोल उठा—"उस दिन मेरा मानसिक उद्वेग ही कुछ ऐसा हो गया था। मैं खुद सोच रहा हूँ—पर, मैं स्वयं निश्चित नहीं कर सकता। आखिर, मुझ से यह कैसे बन पड़ा?"

मुरारी ने कहा—"ऐसा कभी-कभी हो जाता है। नवीन, यह कुछ नया नहीं, पर ऐसा होता है बहुत कम। फिर भी, तुमने सचमुच बड़े साहस का काम किया। जहाँ, हमलोग घृणा से बहुत दूर भागते हैं, वहाँ पर तुम्हारा मुस्तैदी से सेवा के लिए तैयार हो जाना हँसी-खेल की बात नहीं है। क्या कहते हो—ब्रजेंद्र?"

व्रजेंद्र अबतक चुप बैठा था। इस वार मुरारी ने उसकी ओर देखा—व्रजेंद्र उसी ओर देख रहा था। वह संयोग से आकर बोल उठा—"हाँ, हँसी-खेल की बात नहीं है, भाई! उस दिन का हाल मुझे मालूम है, जब कि वह पाकेटमार पकड़ा गया था। उस समय मैं अपने आपे में न था। मुझे उस बदमाश पर बड़ा रोष हो रहा था। पर इसने साफ कह दिया—'रुपए मेरे गये नहीं, इसे व्यर्थ दिक करना भलमंसी नहीं।' वह तो तीर की तरह छूट निकला। हमलोग भी चल पड़े। मुझे विश्वास था कि बच्चू के रुपए जरूर हाथ से निकल गए हैं। मैंने इसे बड़ा भला-बुरा सुनाया, पर यह तो पत्थर हो रहा था। मेरी बातें वहाँ जमतीं तो कैसे? इस पर देखो, वह भिखारिन भी इसी के पल्ले पड़ी। मेरी समझ में नहीं आता—कैसे यह सेवा के लिए तैयार हुआ? और किस तरह इसने उसे अस्पताल पहुँचवाया?"

रसिक बड़ी भावुकता से बोल उठा—"जबतक हृदय में ऐसी कोई प्रेरणा उठ खड़ी नहीं होती तबतक कोई कुछ भी नहीं कर सकता। और यह प्रेरणा ईश्वरीय होती है।"

"प्रेरणा किसे नहीं होती, रसिक!"—मुरारी ने कहा—"पर, आज कितने हैं जो उस प्रेरणा को कार्य रूप में परिणत करते हैं?"

"यही तो नवीन में विशेषता है,"—व्रजेंद्र ने कहा—"हमलोगों के हृदय में कुछ देर के लिए ऐसी बातें अवश्य उत्पन्न हो जाती हैं, पर हमलोग उन्हें पहचान नहीं पाते; और कदाचित् ऐसा करने की हमलोगों में प्रवृत्ति ही नहीं जगती।"

"जगे तो कैसे ? कभी हमलोग उस विषय की ओर सोचते भी हैं ? आँखों के सामने नित्य-प्रति ऐसी घटनाएँ आए दिन घट जाती हैं और उतने समय के लिए कदाचित् उन घटनाओं की छाया भी हृदय पर अवश्य खिंच आती है, पर जैसे ही और कार्यों की ओर मन लग जाता है वैसे ही वह छाया आप से आप दूर होती जाती है — वह टिकती कहाँ ?"—मुरारी अपनी धुन में बोल गया।

नवीन अभीतक सभी की बातें सुन रहा था, पर, इस वार उस से मौन साधे न रहा गया, वह बोल उठा—"तुमलोग, देखते हैं, आज बे-बात की वात में अधिक खिंचे जा रहे हो। प्रवृत्ति सभी में जगती है, और सभी सब कुछ कर सकता है। उस समय शायद तुम लोग भी, उस भिखारिन की दीनता देखकर, वैसा कर सकते थे। परिस्थिति मनुष्य को बाध्य करती है। पर. इतना अवश्य है कि, तुम जिस विषय की ओर अधिक-अधिक सोचा करोगे और उठते-बैठते उसकी चिंता तुम्हें बराबर बनी रहेगी, वैसी दशा में तुम्हारे लिए पथ भी परिष्कृत अवश्य हो जायगा। किसी काम के लिए प्रवृत्ति का जगना जितना आवश्यक है, उतना ही उसके लिए बलवती आकांक्षा का। प्रवृत्तिं और इच्छा दो भिन्न वस्तुएँ हैं, पर एक के बिना दूसरी पंगु है। जब दोनों को एक साथ कर दो, तब तुम देखोगे कि वह काम हुआ-सा ही है। उस दिन मैंने भिखारिन को देखा—वह मेरे पैरों पर लोट रही थी। उस का मुर्झाया मुँह, छटपटाती-सी आँखें, उसके आकुल-व्याकुल

प्राण और ठीक पागलों-सी उसकी भावभंगी मेरे दिल में घर कर गई। मेरी अंतरात्मा सिहर उठी। कुछ देर के बाद उसकी आवाज आई—'इसकी आवश्यकताएँ पूरी कर!' प्रवृत्ति जगी, मैंने इसे अपने विचारों से पुष्ट किया। इच्छा सजग हो उठी, फिर मैंने अपनी शक्ति की ओर देखा—मैं रिक्तहस्त था; पर अन्तर की प्रेरणा इतनी जबर्दस्त थी कि मैंने अपने सिद्धान्त का खून कर डाला, मणि से सहायता ली और उसके बाद जो कुछ हुआ, जानते ही हो।"

नवीन बोल कर चुप हो गया। पर, उसे अच्छा न लगा। उसने अपने आप को उदाहरण के रूप में पेश किया था; और कदाचित् इसीलिए झेंप रहा था कि, वे लोग ऐसा न समझें कि महात्मा सिद्ध करने को उसने ऐसा कुछ कह डाला। उसने इसे अपनी कमजोरी समझी और झेंपते हुए उसने अपना सिर नीचे की ओर झुका लिया।

मुरारी कुछ ईर्ष्यालु प्रकृति का व्यक्ति था। उसे नवीन के कथन में गर्वोक्ति का ही आभास मिला। शायद नवीन इसीलिए अपने आप झेंप रहा था। मुरारी का हृदय इसे सहन न कर सका। मन-ही-मन बोल उठा—'इस छोकरे का घमंड तो देखो—कितना ऐंठ कर बातें करता है, मालूम पड़ता है, इसने उसकी सेवा क्या की—सेखी का एक रास्ता ही खुल गया।' वह अपने को रोक न सका—आखिर बोल ही उठा—"उस समय तुम्हारी प्रवृत्ति के साथ इच्छा जिस तरह सजग हुई, वैसी किसी और की भी जग सकती थी।

यह कुछ नया नहीं—ऐसा तो प्रायः आए दिन होता ही रहता है।"

नवीन ने उसकी सारी बातें सुनीं। वह ताड़ गया कि मुरारी को शायद उसकी बातें अच्छी न जँचीं। इसलिए वह सरलता से मुस्किराते हुए बोल उठा—"यह मैंने कब कहा कि और दूसरा ऐसा नहीं कर सकता था। तुम भी अजीब आदमी हो मुरारी! मेरे कहने का मतलब तुमने कुछ और समझ लिया। मैंने तो किसी दूसरे मतलब से ऐसा कहा नहीं।"

रसिक को भी मुरारी की बातें पसंद नहीं हुईं। वह मन ही मन सोचने लगा—नवीन पर यह वार मुरारी का अन्याय है। और वह जोर देते हुए बोल उठा—"उस समय भले ही दूसरों की प्रवृत्ति इस ओर झुक सकती थी, पर इतना जरूर है कि, नवीन ने जैसा कुछ उस समय कर पाया, वह मुरारी से कभी सम्भव न होता।"

इस वार मुरारी तिलमिला उठा। नवीन की मुस्किराहट से वह आप ही विद्ध हो चुका था। उसका रोष भड़क उठा और अपने गले पर जोर देते हुए बोल उठा—"तुम नवीन को चाहे जितना ऊँचा समझ सकते हो; पर, मैं किसी जा अंधभक्त नहीं और न ऐसी भक्ति मुझे पसंद ही है। अवश्य उसने केवल हमलोगों का अहंकार चूर्ण करने को ही ऐसा किया है। अवश्य इसमें उसका स्वार्थ है। सच तो यह है कि, यदि वह उसकी छोकरी को जाकर न देखता तो कदाचित् वह अपनी सेवा समर्पित करने को तैयार भी नहीं हो सकता।"

यह नवीन पर गहरी चोट थी। पर, वह तिलमिलाया नहीं। नवीन हंस रहा था, पर उसके मूर्खतापूर्ण तर्क पर उसको कुछ कम खेद न था। वह मुरारी को पहले से ही समझता था, और उसका सिद्धांत था कि, मनोरंजन के नाते ही सही, किसी को क्यों दुखाया जाय। पर, इस वार नवीन को मुरारी की वात हृदय में तीर की तरह आ लगी, फिर भी वह अपने को संभाले ही रहा।

"किसी भी कारण से हो,"—रसिक ने उसके उत्तर में कहा, "नवीन ने यह स्तुत्य प्रयत्न किया है। मैं अंधभक्त नहीं, पर दूसरों के गुणों को मैं छिपाना नहीं चाहता--अवश्य उसकी प्रशंसा करना मेरा कर्त्तव्य है। और तुम जो अहंकार चूर्ण करने की बात कहते हो, यह तुम्हारी हृदय-हीनता के सिवा और कुछ नहीं। कोई दूसरे की सेवा इसलिये नहीं करता कि, उसका नाम हो। यदि थोड़ी देर के लिए तुम्हारी बात मान भी लूँ कि अपने नाम के लिये ही इसने ऐसा किया है—तो भी यह प्रशंसा का पात्र ही होगा। भलाई किसी भी हालत में की जाय—बुरी नहीं कही जा सकती। तुम जिस दृष्टि-कोण से विचार कर रहे हो, मेरा वह दृष्टिकोण नहीं। तुम समझते हो, इसमें स्वार्थ है; पर मैं कहता हूँ, इसमें स्वार्थ की मात्रा बहुत ही कम और परार्थ की कहीं अधिक है और ऐसी दशा में नवीन को हमलोगों से प्रोत्साहन मिलना चाहिए।"

व्रजेन्द्र ने परिस्थिति को संभालते हुए कहा—"इसमें झगड़े की तो कोई बात न थी। पर, मुरारी का अन्याय है। नवीन को वह जितना छोटा समझ रहा है—उतना यह है नहीं। रसिक का

कहना बहुत ठीक है कि, भलाई किसी भी हालत में की जाय, बुरी नहीं कही जा सकती।"

मुरारी का रोष दबा नहीं—बढ़ता ही गया। वह बोल उठा—"भलाई-बुराई की बातें मैं भी समझता हूँ, कुछ तुम लोग ही नहीं। इस सबक को किसी और के लिए छोड़ रखते तो उसका उपकार ही होता। पर, मुझे तुम लोग जैसा बेवकूफ समझ रहे हो—वैसा मैं नहीं हूँ। और यदि तुम लोगों की यही धारणा हो तो मैं कहूंगा कि तुम लोग भी परले सिरे के गधे हो।"

मुरारी का रोष अंग-प्रत्यंग से फूट निकला।

इस बार सभी ठहाका मार हँस पड़े। हँसी से छोटा सा कमरा गूँज उठा। मुरारी चोट खाए सांप की तरह फुफकार मार रहा था, पर उसमें इतनी शक्ति न थी कि, वह हँसी का प्रतिवाद कर सकता।

नवीन की माँ भीतर से सारी बातें सुन रही थी। उसने देखा कि; आज इन लोगों का अड्डा जमा नहीं।

कमरा काफी अंधियाला हो चुका था और इसी अंधियाले में वे सब बैठे हँस रहे थे। माँ ने लैंप जलाई और उसे लेकर कोठरी में रखने को आ पहुंची। सभी ने मुरारी की ओर देखा और फिर से हँस पड़े।

इस बार नवीन की माँ ने मुरारी का पक्ष लिया और बोली—"तुम लोग क्यों ज्यादती कर रहे हो इस तरह मुरारी पर; यह तो अच्छा नहीं कि, तुम लोग मिलकर एक को चिढ़ाया करो।"

"हमलोग तो गधे हैं, माँ,"—ब्रजेन्द्र ने कहा,—"फिर गधों की

हंसी से तो आदमी चिढ़ता नहीं। क्या तुमने गधे से आदमी को चिढ़ते देखा है? माँ! बूढ़ी तो हुई, इसका अनुभव तो तुम्हें जरूर होगा।"

इस बार माँ को भी हँसी आए बिना न रही। पर मुरारी से, चुप रहना अब असह्य हो उठा। वह बोल उठा—"हाँ, हाँ आदमी गधे से चिढ़ते हैं—खूब चिढ़ते हैं।"

रोष के मारे मुरारी उठ खड़ा हुआ। माँ ने उसे बैठ जाने को और तन कर लड़ने को उससे कहा, पर, वह अब बैठने वाला जीव न था। वह वहां से बाहर की ओर चल पड़ा।

उसके बाहर निकलते ही फिर से सभी हँस पड़े। इस बार नवीन बोल उठा—"ब्रजेन्द्र! तुम्हारी हँसी अच्छी नहीं, मुरारी को तुमने व्यर्थ दिक किया। ....मुरारी! मुरारी! ठहरो भाई, जरा चाय तो पीते जाओ।"

मुरारी लौटा नहीं, वह दूर से ही बोल उठा—"पिलाओ उन दोनों को मैं ठहरने का नहीं।"

मुरारी चल पड़ा। उसे सारा रोष नवीन पर ही हो रहा था। मानो नवीन के द्वारा ही आज वह अपमानित हुआ हो।

कुछ देर तक तीनों बैठे रहे, फिर साथ ही सभी बाहर चल पड़े।

—नौ—

नवीन कुछ दूर तक उन दोनों मित्रों के साथ बाहर जाकर लौट आया। वह कुछ देर तक अकेले घर में बैठ कर आज की घटना पर फिर से विचार करने लगा। आज बात-ही-बात में मुरारी बहुत आगे बढ़ गया था—नवीन इसी पर विचार करने लगा। वह विचार में इतना डूब गया कि उसे, अपने आप का भी ध्यान न रहा। उसका मस्तिष्क न जाने कहाँ घूम रहा था। वह बिछावन पर लेट गया और लेटे-लेटे ही न जाने फिर किस चिन्ता में डूब-सा गया।

वह सोचने लगा—मुरारी दिल का कितना खोटा है। वह मुझ पर किस तरह ताना कस गया। क्या मैं उसकी सेवा में इसलिए तत्पर हुआ कि उसका अहंकार चूर्ण हो? यदि उसका अहंकार ही चूर्ण होता है तो क्या वह ऐसा स्वयं नहीं कर सकता था? क्या मैंने उसकी सेवा इसलिए की कि, उसकी छोकरी पर मैं मुग्ध हो उठा हूँ? भिखारिणी, जन्म की कंगालिनी, हतभागिनी

रधिया पर क्या मैं मुग्ध हूँ ? वह तो आप ही बर्बाद की गई है, किसी बदमाश ने उसके सतीत्व को नष्ट कर डाला है। वह तो आप ही मरणासन्न हो रही थी, उस पर मैं मुग्ध हुआ हूँ ?—क्या सचमुच मुग्ध हुआ हूँ ? यदि नहीं तो उसने ऐसा कहने का साहस कैसे किया ? इतना दुस्साहस उसका ? मुझे वह क्या समझ रहा है ? मैं जो हूँ—सो हूँ—उससे रत्ती भर भी आगे पीछे नहीं। हाँ, मैं जो हूँ—वही हूँ, उससे खिसक नहीं सकता—एक इंच भी खिसक नहीं सकता ! उसने मुझे क्या समझ लिया ? उफ़! वह भी एक आदमी है—और न जाने ऐसे कितने मिलेंगे। तो क्या मैं उसकी सेवा करना छोड़ दूँ ? फिर उससे मिलना जुलना ?

वह बड़ी देर तक इन बातों पर आप ही आप विचार करता रहा, पर उसने कुछ भी निश्चय न कर पाया। वह बिछावन से उठ खड़ा हुआ। खिड़की के पास आकर वह खड़ा हुआ। पसीने से उसकी सारी देह सराबोर हो रही थी। उसने ललाट से पसीना पोछा—फिर अपने लंबे-लंबे बालों पर उंगलियाँ फेरने लगा। खिड़की पर उसे कुछ ठंढी हवा लगी। उसने अपने को कुछ शांत कर पाया। वह अपनी दशा पर विचार करने लगा और कुछ ही देर में वह आप ही आप हँस पड़ा।

वह सोचने लगा—नहीं, यह मेरी कमजोरी है कि, मैंने आज उसका अपमान सहन कर लिया। अपमान सहन करना कदाचित् मानवता से बाहर की बात कही जा सकती है। क्यों मैंने ऐसा किया ? मित्रता का नाता ? मित्रता का नाता के मानी यह नहीं

कि, कोई अपमानित—तिरस्कृत करता रहे और मैं बैठे-बैठे उसे सहन करता रहूँ। नहीं—मैंने भारी भूल की है।

मैं उसका दंड दे सकता था और शायद दंड देना ही अधिक उपयुक्त होता। वह भी समझता कि, अपमान करने का फल कितना कठोर होता है और आगे के लिए कम-से-कम किसी को अपमानित करने का साहस तो नहीं कर सकता। तो क्या उसका बदला लूँ?

हाँ, बदला—प्रतिहिंसा! और क्या? प्रतिहिंसा ही तो!

विचार उठते ही उसकी भवें चढ़ गईं, उसके चेहरे पर खून उतर आया, कान झनझना उठे मुट्ठियाँ बँध गईं।

पर, नहीं, थोड़ी देर के बाद उसके चेहरे पर परिवर्त्तन के लक्षण दीख पड़े। उसका रोष जाता रहा, उसके ओठों पर हास्य की एक पतली-सी रेखा खिंच आई, और वह सोचने लगा—बदला लूँगा; पर उस पर आघात करके नहीं, अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रह कर ही। मैंने जिस काम को उठा लिया है, वह किसी से सहानभूति पाने की आशा से नहीं; और न किसी से भय खाकर मुझे उसे छोड़ ही देना चाहिये। यदि मैं ऐसा करूँ तो यह मेरी कमजोरी होगी—मेरी अकर्मण्यता होगी—भीरुता होगी। ऐसी आँच तो आए दिन न जाने कितनी लगेंगी? उन्हें सहन करूँगा, और आजीवन सहन करूँगा—पर उसकी मैं अवहेलना नहीं कर सकता। यदि मैं ऐसा करूँ तो मैं अपने को अपने से मानो बहुत दूर कर रहा हूँ। मानो मैं अपने को दूसरे साँचे में

ढाल रहा हूँ—मानो मैं मैं ही नहीं रह पाऊँगा। नहीं, मैं जो हूँ, वही रहूँगा—उससे एक रत्ती न आगे न पीछे।

उसने विचार-तरंग में आकर निश्चय कर लिया कि, मैं इसी-दम रधिया को देख आऊँगा। उफ्! मैंने गलती की है। उसकी माँ क्या समझती होगी—कितने दिनों से मैं उसे देख नहीं आया। नहीं—अब नहीं.................।

वह तीर की तरह बाहर की ओर चल पड़ा। उस समय गलियों में अंधेरा छा रहा था, पर, दूर में बिजली की बत्तियाँ चमक रही थीं। वह अंधेरी गलियों को पार कर मेन रोड पर आ पहुँचा और सीधे मेडिकल कालिज की ओर चल पड़ा।

कालिज के हाते में पहुंचते ही उसने घड़ी की आवाज सुनी—आठ बज रहे थे। उफ्, आठ बज गए? रात अधिक हो गई, पर नहीं—उससे मिले विना मैं लौटूँगा नहीं। और वह उसके कमरे की ओर चल पड़ा।

पर, आह! यह क्या? कमरे में आकर देखा, यहाँ तो वह नहीं है। कहाँ गई? क्या वह अपने स्थान को लौट गई है? तो क्या रधिया भी अपने नवजात शिशु को लेकर चली गई?

वह कमरे से बाहर निकल आया। पर, संयोग से एक परि-चित नर्स से उसे भेंट हो गई। उसने नवीन को पहचाना और वह बोल उठी—"आप किसे खोज रहे हैं?"

"क्या रधिया यहाँ से चली गई?"

रधिया कह कर जिज्ञासा करना शायद नवीन को बुरा लगा।

वह बात को बदलते हुए बोल उठा—"क्या भिखारिन को यहाँ से छुट्टी मिल गई ? कुछ कह सकती हैं आप ?"

"हाँ, वह तो परसों ही यहाँ से चली गई। रधिया अच्छी हो गई थी—उसका बच्चा भी अच्छा था। पर, यहाँ वे सब और कुछ दिन रहतीं तो अच्छा होता। हम लोगों ने उन्हें रखना चाहा, मगर वे नहीं रह पाईं। उसकी माँ बड़ी जिद्दिन थी। बोलती थी, 'मुझे यह मकान काट खाने दौड़ता है। अब मैं यहाँ दम भर भी नहीं रह सकती।' हाँ, वह आपको याद करती थी।"—नर्स इतना कह कर दूसरी ओर चली गयी।

नवीन सोचने लगा—मैंने कितना बुरा किया, इधर नहीं आकर। वह मुझे याद करती थी। किस लिए मुझे याद करती थी ? पर, आश्चर्य तो यह है कि, वह कौन-से स्वर्गीय संसार में जाने को तड़प उठी ? वही घिनौना मकान, वही गंदी गलियाँ, वही कंगालों का अड्डा ! वहाँ जाने को वह छटपटा उठी ! उफ् ! क्या नरक के कीड़े नरक में ही रहना पसंद करते हैं ? क्या सच है ? क्या उसे ऐसा सुन्दर मकान न रुचा ? कितना पतन है !.......पर, उसका दोष क्या ? वह तो मनुष्य से पशु बन गई है। वह अपने को समझ ही नहीं पाती कि, वह भी मनुष्य है और मनुष्य के समान उसे भी रहने का अधिकार है। किस तरह ऐसे लोगों का उद्धार हो सकता है ? जो अपना उद्धार आप नहीं चाहता उसका कौन उद्धार कर सकता है ?

वह वहाँ से चल पड़ा। फिर भी उसका मस्तिष्क उन्हीं बातों

के हल करने में लगा था।

हाँ, उन सबों का उद्धार करना ही होगा। उन्हें बताना होगा कि,तुम लोग मनुष्य हो और तुम लोगों को भी मनुष्य बनने का वैसा ही अधिकार है। तुम लोग भी मनुष्य बन सकते हो। उफ्! मनुष्य से पशु बन जाना कितना आसान है! और उसी पर मुझे दंभ है—अहंकार है। आह! अहंकार!

पर, नहीं, उन्हें मनुष्य बनाने का प्रयत्न तो करना ही पड़ेगा। क्या हुआ, आज वे पशु हैं—और जब तक वे राह से भटकते रहेंगे तब तक वे मनुष्य बन नहीं सकते।

उसका हृदय शोक, चिन्ता, घृणा और आश्चर्य से खिन्न हो उठा। वह घर की ओर बढ़ता चला आया था। पर घर की ओर न चल कर चल पड़ा उसी गली की ओर, और कुछ ही देर के बाद वह कंगलों की टोली—नरक-कुंड—में आ पहुँचा।

उसने आकर देखा—भेड़-बकरियों जैसे भिखमंगे पड़े हुए हैं, कहीं एक दूसरे से लड़ रहा है, कहीं गंदी-गंदी गालियों की वर्षा हो रही है—कहीं कोई ताड़ी और शराब के नशे में अनाप सनाप बक रहा है। नवीन आते ही डर-सा गया। वह मन ही मन बोल उठा—'रात को इन सबों के बीच आकर मैंने कुछ अच्छा नहीं किया।' पर, वह तो आ ही चुका था। उसने अपने नग्न नेत्रों से वहाँ के दृश्य देखे—ओह! कितना दयनीय! कितना निर्मम! कितना करुण!

वह एक पेड़ से कुछ दूर पर आकर खड़ा हो गया।

वह जहाँ खड़ा था, उससे कुछ दूर पर काठ के खम्भे पर एक किरासन तेल की टिमटिमाती बत्ती जल रही थी। शायद वह कार्पोरेशन की ओर से थी और उन कङ्गालों की नग्न दरिद्रता पर अपनी आह छोड़ रही थी।

कुछ देर के बाद उसके बहुत पास ही रधिया आकर खड़ी हो गई और बोल उठी—"आप शायद हमलोगों को ढूँढ़ते ढूँढ़ते आ रहे हैं, बाबू!" नवीन जैसे उसे देखकर चौंक उठा। रधिया की आकृति से उसे बोध हुआ--मानो वह किसी प्रतिष्ठित वंश की कन्या हो। उसके ओठ मुस्किरा कर रह गए, पर वह जो कुछ कहना चाहता था, कह न सका। आखिर उसने कहा—"तुमलोग अस्पताल से क्यों चली आई? क्या तुम्हें वहाँ किसी तरह का कष्ट था?"

रधिया सिर झुका कर बोली—"कष्ट की तो कोई बात न थी; पर, माँ कहती थी कि, यह जगह काट खाने को दौड़ती है। हमें ऐसे सुन्दर घर से क्या काम? और वह हमलोगों को साथ लिए यहाँ चली आई।"

"क्या तुमलोगों को यहाँ अधिक आराम है?"

नवीन ने एक बार उसकी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। वह जिस तरह सिर नीचे किए खड़ी थी, उसी तरह खड़ी रही और बोल उठी—"आराम को हमलोग क्या जानें बाबू! माँ तो इसलिए यहाँ चली आई कि उसको अपने साथियों के बगैर अच्छा नहीं लगता था।"

"पर तुम्हारी माँ ने मुझे खबर क्यों नहीं दी?"

"शायद आपने उसे पत्ता तो दिया था नहीं—फिर वह खबर देती कैसे ? पर, आपको खबर देने से क्या लाभ—उल्टा नुकसानी होती—आप तो वहां से यहां आने देना नहीं चाहते ?"

रधिया ने एक बार अपनी गर्दन उठाई।

"मैं चाहता कि नहीं, यह तो अलग बात हैं। पर, तुमलोगों को कम-से-कम मुझ से सलाह लेकर आना चाहिए था।"

वह बोल तो गया, पर उसे तो अपने आप पर ही सख्त रंज हो रहा था। वह इन दिनों आया क्यों नहीं ? भूल तो उसी की है। वह अपने आप पर लज्जित हो उठा—और खास कर लज्जा तो उसे इसलिए हो रही थी कि, उसने तो कुछ पता दिया था नहीं। फिर वह (भिखारिन) उसे खबर देती तो कैसे ?

कुछ देर तक दोनों चुपचाप खड़े रहे। इसके बाद नवीन बोल उठा—"सच कहो, राधा ! क्या तुम्हें इन लोगों का जीवन अच्छा जान पड़ता है ?"

" मैं कैसे कहूँ बाबू !"—रधिया लजाती हुई अपने सूधेपन से बोली।

"जैसा तुम समझती हो—कह सकती हो।"

रधिया नवीन की आत्मीयता का सहारा पाकर कुछ अधिक साहसी हो चली थी, पर स्त्रियोचित लज्जा के कारण वह कुछ बोलना न चाहती थी। नवीन उसकी ओर उत्तर की प्रतीक्षा में देख रहा था, इससे रधिया को चुप रहना खुद ही अच्छा न लगा। वह ओठों पर मुस्किराहट लाकर बोल उठी—"अच्छा न

कैसे समझूँ ? आखिर जिसके भाग में जितना लिखा है, मिलेगा ही। फिर अच्छा न लगने--लगाने का तो कोई मतलब ही नहीं रह जाता।"—वह बोलकर चुप हो गई, उसने सिर झुका लिया और क्षण ही भर के बाद दूसरी ओर गर्दन फेरकर वह फिर बोल उठी—"बच्चा रो रहा है, बाबू, आती हूँ। क्या मैया को भेज दूँ ?"

" क्या वह जगी होगी ?"

"हो सकती है।"

"पर, इस समय उसे छोड़ दो, न जगाओ। मैं इस समय जाता हूँ। समय मिलेगा तो .... ?"

"हाँ समय मिलेगा तो आवेंगे बाबू ! माँ आप को बहुत याद कर रही थी।"

वह जाते-जाते रुक-सी गई, और वहीं से बोल उठी—"आप ने मुझ पर उस दिन दया न की होती तो मैं उसी दिन इस संसार से कूच कर गई होती ! .... अच्छा, बुला दूँ मैया को बाबू !"

" नहीं-नहीं जरूरत नहीं है – जरूरत नहीं है।"

रधिया अपने बच्चे के पास पहुँची—नवीन उससे पहले ही वहाँ से चल चुका था।

———
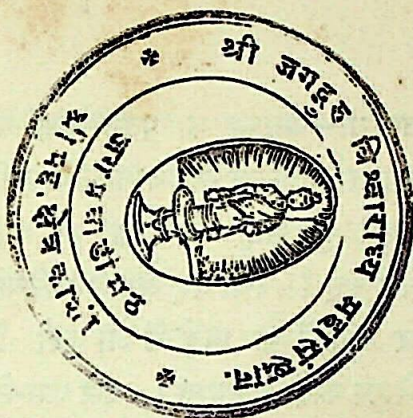
—दस—

नवीन ने वहां से वापस आकर देखा कि उसकी माँ उसकी प्रतीक्षा में बैठी है। वह आते ही हाथ-पैर धोकर खाने को बैठ गया। जैसे तैसे वह कुछ कवल मुँह में डाल कर उठ खड़ा हुआ। आज उसे भोजन रुचा नहीं। माँ ने भी देखा, आज वह अन्यमनस्क होकर भोजन कर रहा था, पर, माँ कुछ बोली नहीं। नवीन का यह कुछ नया अवसर न था। वह जब कभी ऐसा किया करता। उस दिन उसकी माँ समझती, अवश्य वह बड़ा दुखी रहा करता है। पर माँ के लिए कोई दूसरा प्रतिकार भी तो नहीं था। वह समझती थी, नवीन पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा करता है। और इसीलिए उसे वह कुछ कहना अनावश्यक ही समझा करती। आज इसलिए, माँ ने सब कुछ जानते-समझते हुए भी नवीन से कुछ कहा नहीं। नवीन बिछावन पर आकर पड़ गया। आज उसकी मनोव्यथा बहुत दूर तक बढ़ चली थी।

वह सोचता था—मनुष्य का पतन कहाँ तक संभव हो सकता है ? वह समझ नहीं रहा था कि, भिखारिन होकर भी, दाने-दाने को तरसते हुए भी, अस्पताल का आराम छोड़ कर वह क्यों भाग खड़ी हुई ? क्यों वह अपनी बिटिया और नवजात शिशु को लेकर कंगलों के अड्डे में आ जुटी ? न रहने का ठिकाना, न खाने का कोई बंदोबस्त। उसे कम-से-कम बच्चे का भी तो ख्याल होना चाहिए था। आखिर बच्चे के नाते भी तो उसे कुछ दिन तक वहां रहना चाहता था।

पर उसे कुछ यह जान कर सांत्वना हो रही थी कि वह उसकी खोज करती थी। स्मरण आते ही वह छटपटा-सा उठा। उसे हुआ जैसे वह इतने दिनों तक क्यों नहीं उसे देखने गया ? अवश्य यह उसका दोष था, और शायद इसलिए वह सारा दोष उसका न समझ कर अपना ही समझने लगा।

नवीन विचार-तरंग में बेतरह बह चला। आज उसे कूल-किनारा कुछ भी सूझ नहीं रहा था। उसे सोचते-सोचते ही न जाने कब नींद हो आई। सबेरा होने पर वह जगा सही, पर, उसे शरीर बड़ा अवसन्न जान पड़ा।

सबेरा होने पर वह नित्य कर्म से छुट्टी पाकर स्टडी करने को बैठ गया। अब परीक्षा के लिए कुछ ही दिन शेष बच रहें थे; पर वह इच्छा रखते हुए भी जितना उसे परिश्रम करना चाहिये था, उतना कर नहीं सकता था। इसी से उसकी व्यग्रता और बढ़ती ही जाती। और बढ़े क्यों नहीं ? परीक्षा पर ही तो

उसका भविष्य जीवन टिका हुआ था, जिसकी साधना में उसके घर का असबाब—यहां तक कि मकान भी गिरवीं पर चढ़ गया था। यही नहीं, एक ओर मां के अरमान—उफ् ! न जाने कितने बढ़े हुए अरमान—थे, आकांक्षा उसकी (मां की) उसी पर आ टिकी थी। पर, वह क्यों आज उसका खून करने को तैयार हो बैठा था ?

उसने अपनी अवस्था पर विचार किया। उसे अपने आप पर रोष के बदले दया हो आई। उसने अपनी अवस्था के लिए अपने को ही दोषी समझा। उससे रहा नहीं गया। उसकी दृष्टि पुस्तक के पृष्ठों पर पड़ी थी पर, वह रो रहा था। आँसू पन्नों पर मोती जैसे ढलक रहे थे। आज वास्तव में उसकी दशा बड़ी शोचनीय हो रही थी।

उसने आखिर निश्चय कर लिया कि, जब तक वह परीक्षा न दे ले, तब तक वह किसी भी प्रकार के काम को अपने हाथ में नहीं ले सकता। अवश्य उसके स्मृति-पटल पर भिखारिन का चित्र प्रतिमा की तरह स्पष्ट खिंचा पड़ा हुआ था; पर, वह निश्चय कर चुका था—आज वह प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका था—उसने उस चित्र को देखते हुए भी मानो न देखा। आज वह सब कुछ देख कर भी कुछ नहीं देख रहा था। उसकी दृष्टि संसार की ओर अवश्य जाती, वहाँ वह सब कुछ देखता; पर, वह दृश्य चट आंखों से ओझल हो जाता। अवश्य कंगलों के अड्डे पर भी जाकर उसकी कल्पना टिकी ही रहती, वहां का कदर्य जीवन

आंखों के सामने नाच उठता, पर क्षण भर में वह दृश्य भी बदल जाता, उसे चारों ओर शून्य—महा शून्य ही दीख पड़ता। यहाँ तक कि, वह अपने को देख कर भी अनदेखा ही कर देता। विचित्र उसकी अवस्था थी—विचित्र उसके मनोविकार थे। उसने सारे संसार को देखा, फिर पलक गिरते ही वह गायब ! इतना वह अपने-आप में डूब गया था।

कई दिन इसी तरह निकल गए।

इन दिनों वह मणि से न मिल सका था। उसे स्मरण हो आया—क्यों न उससे मिल आया जाय ? कम-से-कम उसके साथ घड़ी आध घड़ी के लिए मन तो बहल जायगा और उसका उलहना भी तो मिट जायगा। संध्या का समय था। वह अपने स्टडी रूम में बैठे-बैठे न जाने किस चिंता में निमग्न था। इतने में उसकी माँ जलपान और चाय ले आई और आते ही बोल उठी—"इस तरह बंद कमरे में कबतक सड़ते रहोगे बेटा ! मिहनत करते करते शरीर कितना गल गया। बाहर भी तो चक्कर काट आया करो ! कुछ हवा लगेगी स्फूर्ति भी होगी, इतना पढ़ने से कैसे काम चलेगा ! कुछ शरीर का भी तो ध्यान रखना चाहिए।"

नवीन ने अपने सामने माँ को जलपान लिए खड़ा देखा—उसकी बातें सुनीं। आज माँ का उपदेश उसे जरा भी अच्छा न जँचा। उसने सोचा, माँ का न आना ही अच्छा होता। उसका ध्यान दूसरी ओर खिंच चुका था। उसने व्याघात पाकर कहा—"परीक्षा जो सिर पर है, माँ ! फिर पढ़ने को थोड़ा ही मिलेगा ?"

माँ का हृदय आनंद से नाच उठा। वह सोचने लगी—नवीन उसका बेटा—पढ़ने में कितना तत्पर है। और उसे वह बात याद आई—इसी पढ़ाई के बल पर तो उसका बेटा अपने दर्जे में ऊँचा रहता आया है, और इसीलिए तो उसे कई बार इनाम भी मिल चुके हैं। स्कालर्शिप भी यथेष्ट मिली है और आज पढ़ने के बल पर ही तो एम० ए० की परीक्षा देने के लिए वह कमर कसे तैयार दीखता है। उसका मातृ-हृदय गर्व से भर गया। उसकी पुत्र-वत्सलता सीमा के पार कर गई। वह गर्व से बोल उठी—"जानती हूँ बेटा! यह सब कुछ नहीं है। तुम मुझे प्रसन्न करना जानते हो; पर, अपने को गँवा कर माँ को प्रसन्न करने की जो तुम्हें व्याधि उठ खड़ी हुई है, उससे क्या तुम्हारी माँ चैन पा सकती है? माँ अपने बच्चे को हँसते-चहकते देख कर जितना खुश होती है, उतना उसे किसी भी हालत में खुशी नहीं होती। मैं वही खुशी तुम में भी देखना चाहती हूँ—और कुछ नहीं देखना चाहती, बेटा! तुम्हारे पिता ने बड़े यत्न से तुम्हें मेरे हाथ सौंपा था और मैंने भी अपनी गरीबी तुम्हीं पर भुला दी थी, पर आज मुझे वह खुशी नहीं है। तुम्हें यह पता नहीं है कि, तुम कितना इन दिनों घुल गए हो?"

नवीन ने देखा—आज उसकी माँ को उसके लिए बड़ी चिंता हो आई है और उसे प्रसन्न करना उसका कर्त्तव्य है। विचार उठते ही वह बोल उठा—हँसते हुए बोल उठा—"मैं वैसा ही करूँगा माँ! वैसा ही करूँगा। लो, मैं आज से नित्य बाहर

टहलने को जाया करूँगा। बस, और कुछ ?

माँ आनन्द के मारे बोल उठी—"हाँ, मैं इतना ही चाहती हूँ, बेटा ! जान है तो जहान है। शरीर अच्छा रहने पर तुम सभी कुछ कर सकते हो। पढ़ना भी तभी काम आवेगा जब तुम शरीर से नीरोग रहोगे।"

नवीन का जलपान शेष हो चुका था। माँ भीतर की ओर चली गई। वह कपड़े बदल कर बाहर की ओर चल पड़ा।

मणि उस समय बाहर जाने को तैयार थी। उसकी हलकी नीली रंग की रेशमी साड़ी और हलके नीले रंग का ब्लाउज उसके सौंदर्य में चार चाँद लगा रहा था। आज उसका मनोरम वेश, उसकी फबन, उसकी श्री, अंग-प्रत्यंग से फूटे पड़ती थी। ऐसी अपूर्व श्री मणि में शायद इसके पहले उसने देखी थी वा नहीं—उसे ख्याल न था।

"आज अनभ्र आकाश में चाँद कहाँ से निकल पड़ा ?" —मणि नवीन को देखते ही बोल उठी।

नवीन ने भी श्लेष में ही उत्तर दिया—"अनभ्र आकाश में चाँद का उग आना आश्चर्य नहीं, मणि ! पर अनभ्र आकाश में अचानक बिजली का चमक जाना अवश्य आश्चर्यजनक ही कहा जायगा। क्यों ?"

नवीन उत्तर की प्रतीक्षा में उसकी ओर देखने लगा।

मणि ताड़ गई, वह श्लेष-वाक्य किसके लिए प्रयुक्त किया गया है। वह जरा लज्जित भी हुई। उसकी आँखें नीचे की ओर गिर पड़ीं।

नवीन भी लज्जित हुआ। क्यों उसने मणि को विरक्त किया? क्या अधिकार था उसे? पर, नवीन का संदेह कुछ ही देर में दूर हुआ। मणि विहँसती हुई बोल उठी—"जानते हो नवीन! अनभ्र आकाश में बिजली भी चमकती है और इसलिए चमकती है कि देखने वाला चकाचौंध में पड़ जाय!"

नवीन ठहाका मार कर हँस पड़ा, बोला—"समझा-समझा, मणि! पर, चकाचौंध में डालने की आज तुम्हें कैसे सूझी?.... किसे चकाचौंध में डालने को निकलना चाहती हो, आज इस विजयिनी वेश में?"

'विजयिनी' शब्द मणि को बड़ा प्रिय था। शायद इसलिए कि, विजयिनी का रूप उसे आंतरिक हृदय से बड़ा भाता था। और वह वास्तव में विजयिनी थी—जहाँ पर, नवीन को भी पराजित होना पड़ा था एक दिन। वह सरसता के स्वर में बोल उठी—"मैं समझती थी कि, आज श्रीमान् नवीनचंद्र का शुभागमन होगा और उनकी अर्चना में बिजली देवी ही उपस्थित रहेंगी।"

मणि बोल तो गई, पर वह अपनी स्वाभाविक हँसी को रोक न सकी। वह ठहाका मार कर हँस पड़ी, नवीन भी खिलखिला कर हँस पड़ा।

कुछ देर के बाद मणि बोल उठी—"चलो न नवीन! जरा बाहर से टहल आवें।"

"हाँ, ठीक तो है।"

और दोनों उठ खड़े हुए।

मणि आज पैदल चलने को तैयार हुई। यद्यपि मोटर दरवाजे पर ही लगी थी, पर उसने पैदल चलना ही उत्तम समझा। दोनों पैदल ही चल पड़े।

पर दुर्भाग्य तो देखो--वे दोनों आधी मील निकल गए, इतने में टिपटिप कर पानी बरसने लगा। नवीन ने आकाश की ओर देखा तो पता लगा कि, मेघ खूब सघन है और यह मूसलधार बरस कर ही रहेगा। उसने मणि से कहा—"आगे बढ़ना अच्छा नहीं है, मणि ! देखो, मेघ कैसा सघन हो आया है। यह पड़े बिना दम न लेगा।"

मणि ने इस बार ऊपर की ओर देखा और वह बोल उठी— "हाँ, नवीन ! मेघ बरसे बिना न रहेगा—लौट चलो।"

दोनों लौट चले; पर वे अपने को बचा न सके। घर के पास आते-आते पानी बरस पड़ा। दोनों भींगते-भींगते बच पाए; फिर भी कुछ तो भींग ही गए। कमरे में आते ही मूसलधार पानी बरसना शुरू हुआ।

जोर का पानी बरस रहा था, हवा भी काफी ठंढी बह रही थी और पानी के छींटे खिड़कियों की राह भीतर आ रहे थे। मणि ठंढी हवा को पाकर बड़ी प्रसन्न थी। उसने नवीन की ओर देखते हुए कहा—"तुम्हारे कपड़े कुछ ज्यादा भींग गए हैं, नवीन ! बदल डालो—मैं भीतर से लिए आती हूँ।"

"नहीं जरूरत तो नहीं है मणि !"—वह बोल उठा,—"कुछ देर पहले कितनी गर्मी थी, पर अब पानी बरसने से कितना आनंद

मालूम पड़ता है। कपड़े शरीर पर ही सूख जाएँगे।"

दोनों कुर्सी पर बैठ गए। फिर मणि उठते हुए बोल उठी—"लाइट जला दूँ?"—पर वह उठी नहीं। बैठे-बैठे ही उसने फिर कहा—"रहने देती हूँ, नवीन! यही अच्छा लगता है। क्यों?"

"हाँ, लाइट होने से गर्मी आ जायगी। अच्छा तो है।"

नवीन खिड़की की राह बाहर की ओर देख रहा था।

मणि नवीन के बहुत समीप बैठी थी। नवीन को बाहर की ओर देखते हुए देख कर मणि ने सोचा—कहा—"क्यों नवीन, तुम्हें इन बादलों से आनंद आता है?"

"और तुम्हें?"

"पहले तुम बताओ!"

"और यदि मैं भी यही प्रश्न करूँ?"

"तो मैं कहूँगी—नहीं।"

"नहीं!......पर, मैं तो कहूँगा—मुझे ऐसे अवसर पर बड़ी प्रसन्नता होती है। क्या तुम्हें वास्तव में नहीं होती है, मणि?"

इस बार नवीन ने उसकी ओर देखा—यद्यपि अंधेरा था, पर इतना अवश्य था कि, आकृति साफ देखी जा सकती थी। उसने देखा—मणि कुछ उदास हुई जा रही है। वह उसे प्रसन्न करने के ख्याल से बोल उठा—"आज यदि मैं अपनी बाँसुरी लेकर आता, तो कितना आनंद रहता!"

"हाँ, बड़ा आनन्द आता, नवीन!"

मणि बोल कर चुप हो गई। उसके मुँह पर छींटे पड़ रहे

थे, वह अपने शरीर को अवसन्न छोड़े हुई थी, उसके कपड़े बिखरे पड़े थे, उसकी अलकें हवा से उड़कर उसके मुख पर खेल रही थीं।

नवीन ने उसका छोटा-सा उत्तर सुना, पर उसे सन्तोष न हुआ। शायद उसने समझा—मणि अनमनी होकर ही ऐसा कह रही है। शायद अनमनी होने का कारण भी उसकी आँखों से छिपा न रह सका।

नवीन मानो आप ही आप चमक उठा। इसी समय बिजली भी कौंध उठी और उसके प्रकाश में नवीन ने मणि को अवसन्न रूप में पड़े हुए देखा। शायद उसकी दृष्टि से यह भी छिपा नहीं रह सका कि, मणि इस समय शायद अपने स्वप्निल संसार में भ्रमण कर रही है।

नवीन चमका क्यों? क्योंकि आज उसके लिए पहला ही अवसर था कि, वह मणि के साथ अंधेरे में अपने को बैठा देख रहा था। क्योंकि, उसकी भाव-भंगिमाओं से उसने अनुमान किया हो कि, मणि आज अधिक-अधिक उसकी ओर खिंची-सी जा रही है। और क्योंकि ऐसे अवसर पर निभृत स्थान में दो तरुण हृदयों का संसर्ग कदाचित् और अधिक उत्तेजक और अधिक आकर्षक हो सकता है।

पर, मणि इतने में निस्तब्धता भङ्ग करती हुई बोल उठी—"ख़ैर बाँसुरी न सही, कुछ गाना ही गाओ, नवीन!"

"रहने दो, मणि, यों ही इस आनन्द का उपभोग करने दो! ऐसा ही बड़ा भला लगता है।"

मणि ने भी नवीन का ही समर्थन किया। पर, नवीन को अन्धकारमय कमरे में रहना अच्छा न जँचा। वह बोल उठा— "स्विच दबा दूँ, मणि! लाइट............?"

नवीन स्विच दबाने को जैसे ही झुका था कि मणि बोल उठी—"क्यों उत्पात करते हो, नवीन!"—और मणि ने उसके बढ़े हुए हाथ को अपनी मुट्ठी में कर लिया। ऐसा करने के समय मणि का मुँह नवीन के बहुत पास आ गया था और उसकी अलकें नवीन के मुँह को चूम रही थीं।

उन दोनों के लिए कदाचित् अङ्ग-स्पर्श-सुख के लिए यह पहला ही अवसर था। नवीन ने अनुभव किया—उसके नस-नस में बिजली का प्रवाह दौड़ रहा है और कदाचित् उस प्रवाह की लहरें मणि ने भी अनुभव की। वह चौंक पड़ी, उसने झट से अपना हाथ खींच लिया और कुर्सी पर सीधी हो बैठी।

दोनों कुछ क्षण चुप रहे। बाहर जोर का पानी बरस रहा था। ऐसा मालूम होता था मानो, आज छोड़ कर कल पानी पड़ेगा ही नहीं। कुछ देर के बाद मणि वहाँ से उठकर खिड़की के पास आई और बाहर का दृश्य देखने लगी। पर, नवीन घर जाने को बड़ा चञ्चल हो उठा। वह सोच रहा था—आज इधर आकर अच्छा नहीं किया; शायद उसकी माँ कुछ कम बिगड़ती न होगी। वह बोल उठा—"मणि! मुझे इजाज़त दो—अब चलूँ मैं?"

मणि मानो सोते से जगी। वह वहां से हटकर स्विच दबाती हुई बोल उठी—"अभी जाना क्या ठीक होगा, नवीन बाबू?"

नवीन चौंक उठा, मानो उसने बेंत खाई हो। 'नवीन बाबू !' आज से कुछ दिन पहले मणि देवी बोलती थीं, पर इधर तो मणि उसे 'नवीन' कहती, तब आज सहसा 'नवीन बाबू' क्यों ? सच-मुच नवीन को यह रहस्य-सा जान पड़ा।

पर, उसने विनोद के स्वर में उत्तर देना अधिक उपयुक्त समझा। वह बोल उठा—"हाँ, मणि देवी ! यही ठीक होगा।"

बिजली का तीव्र प्रकाश मणि के मुँह पर पड़ रहा था। नवीन ने इस बार उसमें कलिमा की एक क्षीण रेखा देखी। शायद मणि को 'मणि देवी' कहना उसे बड़ा बुरा जँचा होगा। वह जरा झुंझला कर बोली—"यदि तुम पर मेरा कुछ भी वश होता तो मैं आत्महत्या करते न देख-सुन सकती।"

"आत्महत्या ?"—नवीन के मुँह पर एक मुस्किराहट दौड़ गई—"आत्महत्या है मणि ! इस समय बाहर जाना ?"

"तुम इसे क्या समझोगे ? तुम तो जीवन को एक खिलवाड़ की चीज समझ रहे हो। मैं तो वैसा नहीं समझती।"

नवीन ने अनुभव किया, मणि कितनी प्राणमयी है ! कितनी सहृदया है !

पर, सचमुच वह चंचल हो उठा था और उसका कारण था, माँ का अप्रसन्न होना। इन दिनों उसकी माँ खाँसी से रात के समय बड़ी परेशान रहती। और अधिक रात गये वह खा भी तो नहीं सकती थी। उसका सदा से नियम था—नवीन को अपने सामने खिलाकर उसी थाली में अपने भी खाने को बैठ जाया करती।

इसलिए बरबस उसे कहना पड़ा—"मैं न भी जा सकता था, मणि! पर देखता हूँ, न जाने से बनेगा नहीं। माँ इन दिनों कष्ट भुगत रही हैं और मेरे चलते वह आज भूखी भी रहेंगी।"

इस वार मणि पर नवीन की बात काम कर गई। उसने कहा—"अच्छा जाना ही है तो जाओ, पर मोटर ले लो।"

पर नवीन मोटर पर जाने को सहमत न हुआ। इधर मेघ भी फट गया था और बूंदाबूंदी पानी पड़ रहा था। नवीन केवल उसका छाता लेकर चल पड़ा। मणि उठी और रेलिंग के सहारे खड़ी होकर बाहर की ओर देखने लगी।

—ग्यारह—

नवीन जितना ही पढ़ने में अपने को तन्मय करता, उतना ही उसके मस्तिष्क में एक ओर मणि का आकर्षण और दूसरी ओर उन कंगलों की दीनता चक्कर काटा करती। वह पढ़ते-पढ़ते ही अन्यमनस्क हो बैठता, आँखों के सामने पृष्ठ-पृष्ठ पर मणि का चित्र ही उसे स्पष्ट दीख पड़ता और दीख पड़ता—कंगलों का वह दयनीय दृश्य! एक ओर मणि के प्रेम में वह अपने को झुकता हुआ पाता और दूसरी ओर दीनों के आर्त्तनाद की स्मृति से उसकी आँखें आँसुओं से तर हो जातीं! वह अपने को संयत करने में असमर्थ पाता। वह खिन्न हो उठता, पाठ्य-पुस्तकें एक ओ पड़ी ही रह जातीं और वह वहाँ से उठकर खिड़की की राह बाहर शून्य आकाश की ओर निहारने में तन्मय हो जाता।

इन दिनों वह अधिक-अधिक उदास रहा करता। वह सोचकर कुछ निश्चय नहीं कर पाता—क्यों वह बुरी तरह इन विषयों की ओर तेजी से दौड़ा जा रहा है?

एक दिन बिना कुछ सोचे-विचारे वह कंगलों की टोली में आ पहुँचा। उसे उस दिन भी किसी कंगले ने देख लिया था, रधिया के साथ पेड़ के नीचे एकांत में बातें करते हुए। आज भी उसने देखा—युवक किसी की प्रतीक्षा में आकर खड़ा है। उसे समझने में देर न लगी। वह अपने साथी भिखमंगों से चुटकी लेते हुए बोल उठा—"अरे यारो, उसकी पाँचों उँगलियाँ तो घी में हैं। अब क्या? भाग जग गया—हाँ, भाग जग गया भैया!"

उसने व्यंग की दृष्टि से युवक नवीन की ओर संकेत किया।

उसके साथी बोल उठे—"उसका भाग न जगेगा तो किसका जगेगा भैया! इन दिनों देखो, रधिया—वह गुमानवाली रधिया—हमलोगों से बातें ही नहीं करती; कितनी खिंची-खिंची सी रहती है। यह ऐंठ है भैया! और आख़िर हो क्यों न? उमर है न?"

सभी ठहाका मार कर हँस पड़े। उनमें से एक बोल उठा—"मैंने तो पहले ही समझ लिया था, जिस दिन बाबू साहब उसे अस्पताल ले गए थे। उसे क्या गरज थी? आखिर पाप नहीं छिप सकता भैया! साँठ-गाँठ की बात तो मैं पहले से ही जानता था, आखिर उसे वह छिपा भी न सके।"

"भई! उमर ही ऐसी होती है और जबानी में किसके पांव नहीं फिसलते? राजा हो वा रंक—सभी पर यह भूत सवार हो जाता ही है। वैसी हालत में जहीं न नजर गड़ जाय! फिर रधिया तो देखने में इतनी बुरी भी नहीं है, अगर इसकी आँखें उस पर गड़ गईं तो अचरज की बात थोड़े ही है?"

"पर, इस बच्चू को जरा सबक सिखा देना चाहिए, क्यों ?"

"हाँ-हाँ, जरूर ऐसा करना चाहिए। इनको जब यह हया नहीं कि, हम गरीबों की भी इज्जत होती है—और उसे कोई यों ही बिगड़ते नहीं देख सकता तो हमलोग क्यों उनकी चुटकियाँ लेने से बाज आवें ? कहो, ठीक है न भाई ?"

"पर, एक बात है। रधिया की माँ, वह चुड़ैल—वह छत्तिसी—एक लंबर की बदमास है—वह सिर खा जायगी—सात पुरखों के नाम गिना डालेगी ! क्यों यह बला सिर उठाते हो ? भारी पड़ी है जान क्या ?"

"वाह ! तुम भी अजीब आदमी हो—यह डरपोक की-सी बातें मरद होकर कर रहे हो ? वह आखिर औरत ही तो ठहरी। हमलोग एक नहीं—दस-दस जवान हैं। आज अगर वह आसमान को सिर पर उठावेगी तो हमलोग उसके दबैल नहीं, जो चुपचाप रह जायँ। हमलोग अपने सामने यह अनाचार नहीं देख सकते।"

इतने में एक आदमी, इन्हीं में से, जोर से बोल उठा—"बाबू ! किसे ढूँढ़ रहे हो ? क्या रधिया को बुला दूँ ?"

नवीन जरा चमक उठा। पर, कुछ ही क्षण में अपने को संयत कर बोल उठा—"नहीं, रहने दो—बुलाने की उतनी जरूरत तो नहीं है—पर, यह तो कहो, अब वह अच्छी तो है ? उसका बच्चा अब अच्छा रहता है न ?"

उन छिछोरों की हँसी जरा रुकी, शायद उन लोगों ने समझा कि वार खाली चला गया। पर, उन्हें उत्तर देना था—और यह

कुछ आसान काम न था। फिर भी उसमें से एक ने, जरा सर्द आह लेते हुए कहा—"रधिया तो जरा अच्छी है बाबू! मगर उसका लड़का......................!"

"हाँ, उसका ?"—नवीन बात काट कर बोल उठा। उसकी छाती धड़क रही थी—शायद अमंगल की छाया उस पर पड़ रही हो।

"उसका लड़का परसों ही मर गया बाबू !"

"क्या कहा ? उसका लड़का मर गया ? क्या हुआ था उसे ?"—नवीन बोल उठा।

"मरे नहीं तो क्या हो, भैया ! खुले मैदान में, कड़ाके की सर्दी में, आखिर वह नन्हा-सा बच्चा कैसे जी सकता था ? और मरने में देर भी तो नहीं लगी—यहाँ तक कि हमलोगों ने भी नहीं जान पाया—आखिर उसे हो क्या गया था ! रधिया तो खाना पीना भुला बैठी है; और उसकी माँ आज शायद भीख मांगने को गई है।"

नवीन ने सारी बातें सुनीं। उसका दम बैठा जा रहा था। उसने क्यों नहीं उसकी देखरेख की ? उसे अपने आप पर बड़ा रंज हुआ। वह बड़ी देर तक उसके बारे में न जाने क्या-क्या सोचता रहा। हठात् वह बोल उठा—"रधिया को जरा बुला दो तो ! कहाँ है वह ?"

उनमें से एक आदमी लाठी पर भार दिये उठ खड़ा हुआ और जरा दो कदम आगे बढ़ कर 'रधिया ! रधिया !!' चिल्लाने लगा।

रधिया आई, नवीन ने देखा। पर, वह आज उसे कैसे धीरज बंधावे ? रधिया उस पेड़ के नीचे बैठ कर फूट-फूट कर रोने लगी।

नवीन को भी उससे कुछ कम ठेस न लगी। पर, उसने अपने को संभाला और सांत्वना के बहुत से शब्द वह अनायास ही बोल गया।

रधिया के आँसू मानो रुक-से गए। वह बोल उठी—"आप को तो सारी बातें मालूम हुई होंगी, बाबू !"

"हाँ, अभी-अभी मुझे मालूम हुआ है।.........पर, तुमने बड़ा बुरा किया रधिया ! यहाँ आकर। तुम्हें आस्पताल में कुछ दिन और रहना चाहता था।"

"जो कहिये, बाबू ! मैं क्या कर सकती थी ? माँ को तो आप जानते ही हैं।"—वह मुँह घुमा कर उदास आँखों से क्षितिज की ओर देखने लगी।

"हाँ, जानता हूँ; पर, अब वह क्या कहती है ? कहाँ है वह ?"

"कहेगी क्या ? वह तो मुझे डाँटती है। मानो मैंने ही बच्चे को मार डाला है। वह अभी बाहर गई है—भीख माँगने !"

नवीन सोचने लगा—भीख मंगना !.........ओह पेट !......... बच्चा हाथ से चला गया—रधिया सूख कर काँटा हो गई—शायद वह भी शोक से जर्जर हो गई होगी—फिर भी भीख माँगने को बाहर निकली है ! क्या करे वह ? पेट जो न करावे ! इन अभागों को इसके सिवा मानो किसी की चिन्ता है ही नहीं। चिन्ता होती

होगी जरूर—आत्मीय स्वजन के मरने पर किसे चिन्ता नहीं होती ? किसे शोक नहीं होता ? पर, हाय री अभागिनी ! आज वह खुल कर शोक प्रकाश भी नहीं कर सकती और पेट के लिए भीख मांगने को निकल पड़ी है ! पेट ! पेट !! पेट कितना कुत्सित कर्म कराता है !

नवीन का मुख-मंडल उदास हो गया। वह बड़ी देर तक मौन साधे पड़ा रहा पर, कब तक इस तरह वह रह सकता था ? बोल उठा—"तुम तो शोक में इतनी घुली जा रही हो, रधिया ! आखिर शरीर को ही गँवा कर दम लोगी ? अब शोक करने से वह तो लौट आवेगा नहीं। हाँ, तुम बीमार अवश्य पड़ जाओगी—तुम्हारा शरीर नष्ट होगा।"

रधिया अब तक न जाने क्या सोच रही थी—पता नहीं। पर, वह चुप न रह सकी—बोल उठी—"आखिर उपाय क्या है, राजा ! उसका मुखड़ा भुलाए नहीं भूलता ! आखिर भुलाऊँ उसे किस तरह ? कितना सुन्दर ! पुत्तल जैसा ! हाय ! बच्चा मेरा !"

वह फूट-फूट कर रो पड़ी। नवीन का गला भी भर आया। कुछ देर तक दोनों की यही हालत रही। पर, रधिया ने अपने को संभाला और बोल उठी—"पाप छिपाने की माँ ने बड़ी कोशिश की थी पर, मैं राजी न हुई। मैं अपने सामने वह दिन देखना चाहती थी जब मैं अपने बच्चे को हंसते-चहकते हुए पाती। माँ ने उसे मिटाने की बड़ी तदबीर की पर, मैं तन गई। मुझे बुरा लगा। एक तो पाप कर ही चुकी थी, फिर बच्चे को मार कर पाप

उठाना मुझ से बन न सका। आपने मेरी मदद की, नहीं तो वह बच्चा भी मैं नहीं देख पाती। आपकी दया से बच्चा देखने को मिल तो गया, पर मैं उसे रख नहीं सकी। आखिर रख सकती कैसे? आप ही कहिये—ऐसी खुली जगह में, वह नन्हा-सा सुकुमार बच्चा कब तक चैन से रह सकता था? भाग फूट गए बाबू!"

रधिया फिर से रो उठी। नवीन ने उसके मुँह से जो-कुछ सुना था—इससे उसका मन बड़ा चंचल हो उठा। उसे रधिया की माँ पर रोष हो आया। नरक की यंत्रणा भुगत कर भी पाप करने से बाज नहीं आती! रधिया को उसने बर्बाद कर डाला। वह आवेश में बोल उठा—"मैं नहीं जानता था कि, तुम्हारी माँ इतनी बदमाश है!"

"बदमाश ही नहीं, बड़ी खोटी है। आपको शायद पता न होगा—वह जनम भर ऐसा ही करती आ रही है। आखिर, उसी के फेर में पड़ कर तो मुझे अपनी असमत बिगाड़नी पड़ी। बिगाड़ती नहीं तो कब तक मार खाती रहती? उसकी बेटी थी--उसका मुझ पर अधिकार था। इससे अवश्य कुछ पैसे मिलते, पर इन पैसों के लिये मुझ पर क्या कुछ बन आती उसे तो मैं जानती हूँ, बाबू! वह क्या जानेगी और दूसरा ही क्या जानेगा?"

वह शून्य आकाश की ओर देखने लगी। आज उसका विषाद चोट खाकर फूट पड़ा था। आज वह अपने रक्षक के सामने सब कुछ उगल देने को मानो छटपटा-सी उठी थी।

"और बच्चा मारने में उसी का हाथ है, बाबू!"—वह लजाती हुई बोल उठी—"हाँ, सच ही कहूँगी। और वह इतनी पतित है कि

इन दिनों मुझ पर उसकी भवें तनी रहतीं हैं, पर, मैं तो अब हर्गिज नहीं उसकी सुनूँगी—चाहे वह मुझे मार ही क्यों न दे ?"

नवीन सोच रहा था—इन पतितों का उद्धार कभी संभव नहीं। जो दो-दो चार-चार पैसे पर असमत खराब करने को तैयार हो जाता है, उसे भगवान ही बचावे ! कितना पतन है, इन सबों का !

इसी समय नवीन ने सुनीं उन बदमाशों की व्यङ्ग पूर्ण बातें। वे सब नवीन की ओर ही इशारा करते हुए आपस में बोल रहे थे—'देखो-देखो रधिया को—अरे भाई ! तभी तो, तभी तो—और इस भले मानस को तो देखो, कितना खुलकर बातें करता है। हया भी पनाह मांगती है ! मगर …………।' पर, नवीन विचलित न हुआ। वह सोचने लगा—कितना कदर्य जीवन है इन लोगों का। कितना कुत्सित विचार है ! कितना गन्दा ख्याल ! उसे उन लोगों पर रोष न हुआ—दया हो आई। उसकी इच्छा हुई—वह खुलकर कह दे उन लोगों को। पर, उसने ऐसा करना शायद इस लिए उचित नहीं समझा कि, आखिर इन जीवों पर उसकी बातों का प्रभाव ही क्या पड़ सकता है। उसे घृणा हो आई और विचार उठा—यहाँ अधिक देर ठहरना उचित नहीं। वह चलना चाहता था कि, रधिया बोल उठी—"आपने मुझ पर दया की है, बाबू ! मैं उसका बदला कैसे चुकाऊँ ? बोझ सिर पर है और आप पर मुझे विश्वास है, आप मेरी माँ से मुझे बचाइए। मैं ऊब उठी हूँ।"

नवीन को विश्वास ही नहीं हुआ कि, रधिया वहाँ से हटने को तैयार हो सकती है। इस बार उसने अपने कानों सुना। वह

कुछ विचार करने लगा। अन्त में वह बोल उठा—"क्या तुम यहाँ से जाना चाहती हो, राधा!"

"हाँ!"

"पर, तुम्हें वहाँ मन लगेगा?"

"यहीं क्या मन लगता है? जो आप कह रहे हैं? कहीं भी रहूँगी जरूर यहाँ से अच्छी रहूँगी, कोई अस्मत विगाड़ने को वहाँ .... ।"

नवीन ने देखा—रधिया में अभी तक आत्म-सम्मान बचा हुआ है। वह अपने पतन से घबरा उठी है और इसे यदि सुयोग मिले तो वह अपने को बचा सकती है।

पर, इसे ले जाऊँगा कहाँ? कौन इसको ठौर ठिकाना देगा? भिखारिन जो ठहरी! पर, उसकी चिन्ता को उसने दूर कर दिया। वह बोल उठी—"आप कहीं भी मुझे रखा दे सकते हैं। मैं चौका बर्तन कर सकती हूँ—जरूरत पड़ने पर रसोई भी बना सकती हूँ। यों तो भिखारिनों की जाति ही क्या... ....?"

नवीन इतने में बोल उठा—"जाति-पाँति का विचार हमलोग कोई आवश्यक भी नहीं समझते। हमलोग सभी मनुष्य जाति हैं। और जाति तो ऐसी चीज नहीं जिससे घृणा या प्रेम किया जा सके? अवश्य कर्म उत्तम चाहिए। यदि तुम अपने कर्म्मों को उत्तम बना सको तो कोई भला आदमी अपने यहाँ तुम्हें रख सकता है।"

"करम-धरम की बात को मैं नहीं जानती। मैं अपने को ओछे

कामों से बचा सकती हूँ; इसके सिवा जो आप कहेंगे, उसे सुनूँगी और उस पर चलने की कोशिश करूँगी।"

नवीन ने देखा—रधिया समझदार भी है। आज इसका मन विषाद से खिन्न हो उठा है—वह अपने पापों का प्रायश्चित्त चाहता है। और इससे बढ़कर दूसरा प्रायश्चित और हो ही क्या सकता है कि, वह ओछे कामों से घृणा करे।

वह उठ खड़ा हुआ था। उसे आज बात-बात में काफी देर हो गई थी। वह जाते समय बोल उठा—"अच्छा, मैं कोशिश करूँगा तुम्हें यहाँ से ले चलने की—विश्वास रखना पर, शायद दो-चार दिन की देर हो—घबराना नहीं।"

वह चल पड़ा। रधिया देर तक नवीन की ओर देखती रही, फिर न जाने क्या सोच कर उसकी ओर बढ़ती हुई बोल उठी—"जरा ठहरिए तो ··· ···।"

नवीन ने मुड़कर देखा—रधिया कुछ कहना चाहती है। वह जरा रुक गया। रधिया उसके पास जा पहुँची और धीरे-धीरे बोल उठी—"आप इन बातों को माँ पर जाहिर न कीजिएगा। शायद राह में ही माँ से भेंट हो जाय।"

"न-नहीं कहूँगा—" नवीन ने उसकी ओर देखते हुए कहा।

"और सुनिए! इन ओछे बदमाशों की बातें भूल जाइए बाबू! इनलोगों की तो डाह से छाती फटी जाती है। मुझे भी ये सब कम दिक नहीं करते—पर, मैं तो उनकी बातें सुनती ही नहीं। इतना ही भर कहना था—इन अभागों की बातें भूल जायँ!"

रधिया बोल कर चुप हो गई। उसने सिर झुका कर नवीन के प्रति अपना अभिवादन जतलाया। नवीन अपनी डेगें बढ़ाते हुए चल पड़ा। रधिया वहाँ से अपने घर की ओर लौट पड़ी।

—बारह—

नवीन घर की ओर लौट पड़ा, पर उसके मस्तिष्क में रह रह कर रधिया की करुण कथा—आप बीती—उथल-पुथल मचा रही थी। नवीन ने आज अपने कानों भिखमंगों—भुक्खड़ों की बातें सुनी, उनके व्यंगों का प्रहार सहा पर, वह विचलित नहीं हुआ। वह राधा को लेकर वास्तव में द्विविधा में पड़ा सोच रहा था—आखिर, उसे शरण दे तो कहाँ ? कौन उसे अंगीकार करेगा कम-से-कम दासी के रूप में ही ? उसका ध्यान एक वार उसकी मित्र-मंडली की ओर गया—पर वहाँ तो नफरत, दुतकार के सिवा कुछ भी नजर न आया। वह उस दिन घाव खा चुका था और आज राधा के रखने का सवाल सामने था। आह ! राधा ! राधा !!

वह राधा के प्रति जितना ही सोचने में तल्लीन होता, उतनी ही उसकी वितृष्णा बढ़ती जाती। अपनी मित्र-मंडली की बातें याद आते ही उसका दम बैठ चला। आखिर बैठता कैसे नहीं? वह उसी समाज में पला-बढ़ा था; उसने कई बार भर्त्सनाएँ सही थीं, सहकर उसे चुप रह जाना पड़ा था। वह जानता था—पत्थरों का हटाना जितना आसान है, उतना आसान उसके विचारों को अलग हटा कर फेंकना नहीं। तब क्या राधा का वह शरण न दे सकेगा—न दिला सकेगा?

वह इन प्रश्नों पर तेजी से किंतु गंभीरता पूर्वक विचार करता आगे बढ़ रहा था कि, इतने में सड़क से कुछ दूर पर अचानक ललित—पाकेटमार—को देखा। ललित तेजी के साथ कदम बढ़ाए चला जा रहा था। नवीन ने उसे दूर से ही देख पाया। उसकी इच्छा हुई कि, वह जोर से उसे पुकारे और उससे रधिया को शरण दिलाने की बात कहे। ललित को देख कर उसकी आशा बँध गई, उसे जरा ढाढ़स हो आया। वह मन-ही-मन सोचने लगा—ललित से उसका उद्धार हो सकता है? हाँ. ललित से ही यह काम बन पड़ेगा! उसे तो समाज की चिंता है नहीं; उसे तो कोई बुरा न समझेगा? वह तो खुद ही बुरा बन चुका है। उसे लोकापवाद की पर्वाह ही नहीं रह गई है? वह सब-कुछ कर सकता है—वह राधा को भी शरण दे सकता है।

वह तेजी से ललित की ओर झपटा। उधर ललित कदाचित् किसी घात में लगा था—जरा वह रुक रुक कर कदम बढ़ा रहा

था कि इतने में पीछे से नवीन भी उसके पास पहुँच गया। नवीन उसके पास पहुँच कर बोल उठा—"भले आज तुम्हें देख पाया ललित दादा!"

ललित ने मुड़ कर देखा—नवीन उसकी ओर सतृष्ण आँखों से निहार है। ललित ने बड़े तपाक से कहा—"कौन? नवीन! कहो-कहो—अच्छे हो न? इतनी रात को........ क्या तुम्हारी परीक्षा हो गई? परीक्षा के दिन तो अभी आए नहीं? तो क्या आज कल तुम स्टडी नहीं करते?"

"स्टडी करने को जी ही नहीं चाहता, और स्टडी में रखा ही क्या है? पास तो करूँगा ही। भले ही अच्छे नम्बरों से पास न करूँ!.... ....पर, यह तो कहो, आज कल क्या हो रहा है?"

नवीन अंतिम वाक्य बोल तो गया, पर उसे न जाने क्यों अपनी बात आप ही पसंद न आई। फिर भी वह उसकी ओर शायद उत्तर की प्रतीक्षा में देखने लगा।

"आज कल क्या हो रहा है?"—ललित बात को दुहराते हुए बोल उठा—"और होगा क्या? जो तब करता था, वह आज भी करता हूँ। पर, इस जगह जरा खुल कर बातें करने में मजा न आयगा, नवीन! जरा चलो—हमलोग निरापद स्थान में पहले चल पड़ें!"

और वह आगे की ओर एक गली में घुस पड़ा। नवीन भी यंत्र की तरह उसके पीछे-पीछे चलता गया।

कुछ ही दूर जाने पर एक टूटा-सा मकान दीख पड़ा—एक-दम सुनसान—अंधेरा। हाँ, कुछ दूर से टिमटिमाती लैंप की रोशनी उसके अंधकार को दूर करने का विफल प्रयास कर रही थी। मकान में ताला जड़ा था। बाहर एक बरामदा था—सील जमी थी—ऊपर से धूल उस पर मरहम पट्टी का काम कर रही थी। वे दोनों वहीं जाकर बैठ गए। पर, नवीन न जाने क्यों भयभीत हो रहा था—न जाने क्यों उसकी छाती धड़क रही थी। फिर भी वह गुप्त रूप से अपने भाव को छिपाने का प्रयत्न कर रहा था।

ललित ने अपना कुर्त्ता हटाकर कमर से एक छोटी सी पोटली निकाली और नवीन की ओर बढ़ाते हुए बोल उठा—"देख! देख नवीन! आज की कमाई है मेरी!"

वह पोटली खोल कर गिनने लगा—एक-दो-तीन ······पच्चीस रुपए नौ आने—और इसके सिवा तीन नम्बरी नोट और सात दस-दस रुपए के! कुल तीन सौ पंचानवे रुपए नौ आने!

"यह आज की कमाई है नवीन!"—वह बोलता गया—"आज की कमाई तीन सौ पंचानवे रुपए नौ आने! साले को लूट लिया—वह भी क्या कहेगा—पड़ा था किसी से पाला! मोटर पर शान से बैठा था, बाबू बन कर! तेरी बाबू की ऐसी-तैसी! मौज उड़ावें साले के नाती दूसरों का लहू चूस कर—गरीबों की हड्डियाँ कुचल कर, और चले थे यार रंडियों को साथ लेकर हवा-खोरी को! मैं तो उन छोकरियों पर भी हाथ साफ करता, पर

ससुरी को छोड़ दिया। समझा—अपनी अस्मत की कीमत से उन्होंने अपने को सजाया है—पर, अस्मत बेचना ! क्या तुम अस्मत बेचना अच्छा समझते हो, नवीन !"

नवीन न जाने मन ही मन क्या सोच रहा था। इस वार वह जरा चौंक उठा। पर, उत्तर दे तो क्या दे ? उसने तो अच्छी तरह सुना ही नहीं कि वह क्या कह गया है ? फिर भी वह अपनी बुद्धि पर जोर देकर बोल उठा—"आख़िर उन लोगों का दोष क्या है, ललित दा !"

ललित खिलखिला कर हंस पड़ा—"दोष कहते हो ! ससुरी भला किसी की बात मानेगी ? उन्हें तो न जाने क्या मजा आता है ऐसा करने में ! मैंने बहुत दफा कोशिश की, उन लोगों को काफी समझाया, और मेरा विचार था, यदि उन्हें रोटी का हिला लगा दिया जाय तो क्या वे अपने को बचा कर नहीं रख सकतीं ? पर, मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ गया। मुझे तो उनकी शकल-सूरत से चिढ़ होती है और मैं, अब तैयार कर चुका हूँ अपने को। उनकी खाल से एक-एक जेवर नोचे विना मैं अब चैन न लूँगा ! हरामजादी पाप के पेट गिरावें, बच्चों को मारें, भोली-भाली लड़कियों को फुसला कर नीच काम करवावें, आप गुलछर्रे उड़ाएँ, लोगों को फुसला कर, अपनाकर शराब का शौक जगाएँ, चोरी करवावें, डाका डलवावें, एक दूसरों को लेहू का खूंख़ार बनवाएँ, आए दिन भले मानसों को बहका कर अपना उल्लू सीधा करें—वह क्या नहीं करती हैं ? और इनाम में देती हैं क्या ?

गरीबी ! रोग, दरिद्रता ! मौत ! मौत में घुल घुल कर मरना ! इस पर भी तुम दोष कहते हो ?"

नवीन ने कान खोल कर उसकी बातें सुनीं। उसे एक ओर यह सुन कर हर्ष हो रहा था कि, यह केवल पाकेट ही नहीं मारता, दूसरों का सुधार भी चाहता है, पर क्षण ही भर में उसके चेहरे पर विषाद की रेखा दीख पड़ी—शायद यह सोच कर कि, इसका विचार स्त्री-जाति के लिये शायद अच्छा नहीं है। इसलिए वह समझने लगा कि, राधा की बात चलाना यहाँ व्यर्थ ही जायगा। वह राधा के प्रति क्यों दया दिखलावे ? राधा की माँ तो एक दिन वही थी और खुद राधा को भी तो लुक छिप कर ही सही, यही कुछ करना पड़ा है।

नवीन कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोल उठा—"तुम गलती कर रहे हो, ललित 'दा ! मैं तो तुम्हारे सामने लड़का ही ठहरा और तुम्हारे जैसा अनुभव भी तो नहीं है। फिर भी मैं यही कहूँगा कि, सारा दोष उन्हीं लोगों के मत्थे मढ़ना शायद उचित नहीं कहा जायगा। कारण है, हमलोगों को सोचना चाहिये—आखिर वे ऐसा करती हैं तो क्यों करती हैं ? और इसके सिवा मेरा निजी विचार है कि उनमें भी मनुष्यत्व होता है, वे भी भले बुरे का ज्ञान रखती हैं, और कदाचित् अपनी बुराई का उन्हें ज्ञान नहीं—ऐसा नहीं कहा जा सकता है। पर, करें तो वे क्या करें ? समाज उन्हें स्थान देता ही कहाँ है ? और अवसर भी तो उन्हें नहीं मिलता कि कम-से-कम गार्हस्थ धर्म कितना सुन्दर और आनन्दमय है,

इसका भी अनुभव करें। सिर्फ़ उन्हें वैसा अवसर दिया जाय, वे अवश्य इन नारकीय जीवन से छुट्टी तो पा लेंगी। हाँ, अवसर तो दिया जाय !"

"अवसर-उवसर की बात नहीं नवीन! मैंने भी पहले यही ख्याल किया था और इसी से मैंने उनके बीच अपने को लगा डाला; पर मुझे तो अब सख्त नफरत हो गई है उनकी जात से! और शायद तुम नहीं जानते—नरक के कीड़े नरक में ही जी सकते हैं।"

नवीन इस बार फिर से चौंका। 'नरक के कीड़े नरक में ही जी सकते हैं'—उसके कानों की पत्तियाँ इन शब्दों से झनझना उठीं। उसे स्मरण हो आया—राधा भी तो कदाचित ऐसी ही है! तो क्या वह अलग हट कर अपने को नहीं बना सकती?

वह भावावेश में बड़ी देर तक पड़ा रहा। वह अपने को ललित की बातों पर विश्वास करने को तैयार कर रहा था; पर नवीन तो भावुक व्यक्ति है—सहृदय है, दूसरों का कष्ट सुनना चाहता है, दूसरों को दुःखों से हटाने का कुछ प्रयत्न भी तो करते ही रहता है? तब फिर क्यों वह ललित की बातों को यों ही बिना कसौटी पर कसे मान ले? इसलिए वह फिर से बोल उठा—"सुधार का शायद तरीका ही दूसरा होगा। ललित 'दा! इसीलिए फल हाथ नहीं लगा। मेरा तो जी करता है कि मैं भी अपने को कुछ दिन तक इसी में लगाए रखूँ! और मुझे विश्वास है, यदि सच्चाई और लगान के साथ उन पर सहानुभूति

दिखलाई जाय, उन पर आत्मीयता का रंग चढ़ाया जाय और उन्हें उन कामों से हटा कर उनके काम-काज और भोजन का सुंदर प्रबंध किया जाय और साथ ही उनकी विचार-धारा को दूसरी दिशा में मोड़ने का अनवरत उद्योग किया जाय तो संभव है, आज न सही कल, उनका सुधार होकर ही रहेगा।"

नवीन बोल कर चुप हो गया, उधर ललित भी चुप था। शायद उसे इस वार नवीन की बातें कुछ अधिक युक्तिसंगत जान पड़ीं। वह बड़ी देर तक गंभीरता से इन बातों पर विचार करने लगा। वह इतना तन्मय होकर विचार कर रहा था कि, जान पड़ता था—उसके लिये एक महान् प्रश्न आ उपस्थित हुआ है। बड़ी देर तक दोनों चुप थे। किसी को इतना सहास न था कि, दोबारा कोई इस विषय को अपने तर्क और शक्ति के बल पर पुष्ट कर अपने विचार का समर्थन कर सके।

नवीन से अब अधिक बैठने का साहस न हुआ। वह ललित की जितनी ही प्रशंसा मन-ही-मन कर रहा था वह उतने का अवश्य अधिकारी है; उससे न कुछ कम—न अधिक। पर, न जाने क्यों, नवीन का दिल वहां से उचट गया। वह चाहता था कि राधा की बात उस पर प्रकट कर दी जाय और यथासंभव उसे रखवाने का इससे अनुरोध भी किया जाय। किंतु नवीन का ख्याल हुआ कि, स्त्री-जाति के प्रति ललित का कुछ अच्छा विचार नहीं दीख पड़ता। अतएव उसने उस सम्बन्ध में और कुछ कहना उचित नहीं समझा।

कुछ क्षण तक दोनों स्तब्ध बैठ रहे। नवीन के हृदय में न जाने कैसे-कैसे विचार उठ रहे थे पर वह अपने को बोलने में असमर्थ पा रहा था। इतने में ललित ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा -"मैं जानता हूँ, नवीन! तुम्हें मेरी बातें रुचीं नहीं। पर मैं जो कुछ कह रहा हूँ, अपनी अनुभूति कह रहा हूँ। फिर भी तुम इतने से यह न अनुमान कर बैठो कि, स्त्रियों के सम्बन्ध में मेरा कुछ ऐसा विचार है। मैं उन्हें बहुत ऊँचा समझता हूँ और मेरा ख्याल है, जब तक उन्हें न उठाया जाय, तब तक हमलोगों में और जागृति आ नहीं सकती।"

इस बार नवीन के मुख-मंडल पर दर्प की एक आभा-सी छिटक पड़ी। उसका हृदय आनंद से खिल उठा। कुछ क्षण पहले उसके हृदय में ललित के प्रति जैसी उदासीनता हो आई थी, अब, जरा-सा सहारा पाकर, उसकी उदासीनता न जाने कहाँ चली गई। वह आनंदातिरेक से बोल उठा—"तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल है, ललित 'दा! मैं कैसे उसकी कल्पना तक कर सकूँ? स्त्री-जाति के प्रति मेरी श्रद्धा रहती आई है और यही कारण है कि, मैं उसके विरुद्ध एक बात भी नहीं सुन सकता। मैं उसकी कमजोरियों को भी जानता हूँ और मेरा यह भी मत है कि, उसकी कमजोरियों का पुरुष वर्ग प्रश्रय पाकर उनका दुरुपयोग करता है—उन्हें बर्बाद करता है।"

ललित नवीन की बातों पर खिलखिला कर हँस पड़ा। नवीन उसके मुँह की ओर ताकता रहा। वह समझ नहीं पाया

कि ललित के हँसने का क्या कारण हो सकता है। वह कुछ क्षण तक स्तब्ध रह कर मन-ही-मन अपनी बातों पर फिर से विचार करता रहा।

इतने में ललित बोल उठा—"नवीन! अभी मुझे एक जरूरी काम में बाहर निकलना होगा। मैं वहीं चलता हूँ, तुम भी घर जाओ। फिर कभी तुम से मिलूँगा—बातें करूँगा। जानता हूँ, तुम्हारी परीक्षा के दिन बहुत पास हैं और यही समय है पढ़ने का। जाओ!"

ललित उठ खड़ा हुआ और वहाँ से तीर की तरह छूट पड़ा। नवीन कुछ काल तक उसकी ओर खड़ा-खड़ा ताकता रहा, फिर वह भी वहां से चलता बना।

—तेरह—

नवीन ने घर के निकट आकर देखा—उसकी माँ प्रतीक्षा में दरवाजे पर खड़ी है। उसने नवीन को देखते ही पूछा—"इतनी देर कहाँ लगाई बेटा? जानते हो, तुम जबतक लौटकर नहीं आते तबतक मैं कैसी उदास-सी रहा करती हूँ। तुम नहीं जानते बेटा! मुझे कितनी तकलीफ है—रसोई बनाना, तुम्हारे लिए···मैं क्या कभी वह दिन देख सकूंगी—देख सकती—अगर वह दिन···किस के हाथ में तुम्हें सौंप कर सुखी हूँगी। पर, नहीं—चल बेटा, मुँह हाथ धोकर कुछ खा पी ले। चल—भीतर चल!"

नवीन मन-ही-मन सोचने लगा—आखिर ऐसी देरतो आज, नहीं हुई जिसके लिए माँ को तकलीफ हो रही है। यों कबतक इन्हें तकलीफ देता रहूँ! उसका हृदय उमड़ आया—माँ की ममता—उफ्! कितनी जबर्दस्त ममता है उसकी!

नवीन में चाहे जितना दोष क्यों न हो, पर माँ को वह हृदय से मानता है—मानता ही नहीं— उसकी आज्ञा के विरुद्ध रत्ती-भर चलना उसने सीखा ही नहीं। वह कहा करता—जिस माँ ने अपने अरमानों को मुझपर टिका रखा, सारी उमंगें, सारी हसरतें मेरे नाम पर न्यौछावर कर दीं, सुख-सौभाग्य जिसका मुझपर ही आ टिका है, उस आत्मा को यदि किसी तरह संतप्त किया—दुखी किया—तो मेरा कहीं भी ठिकाना नहीं। पर इस समय और कुछ सोचनेका अवसर न था माँ उसकी ओर देखरही थी। अंधेरा कुछ अधिक था, इसलिए माँ को उसकी आकृति के चढ़ाव-उतार का कुछ भी चिह्न दीख न पड़ा। नवीन मुस्किरा कर बोल उठा—"सचमुच तुम्हें बड़ी तकलीफ हो रही है, माँ ! चलो—चलें !"

वह भीतर की ओर चल पड़ा, माँ भी पीछे-पीछे चली नवीन सोचता था—यदि राधा के लिवा लाने की बात इनसे कही जाय तो उत्तम। कम-से-कम उसके यहाँ आने पर माँ की तकलीफ दूर तो होगी। पर सहसा उसे स्मरण हो आया—माँ धार्मिक प्राणी है, हिन्दू-स्त्री है; अपने वैधव्य-धर्म का अक्षरशः पालन कर अपनी मुक्ति और मेरी मङ्गल-कामना के लिए नित्य-प्रति तुलसी वृक्ष में जल ढाल कर न जाने कौन-कौन सी प्रार्थनाएँ किया करती है। ऐसी दशा में रधिया का—उस रधिया का, जो व्यभिचारिणी है, भिखारिनी है, जिसके घर-द्वार का ठिकाना नहीं, जिसकी जात-पाँत कोई नहीं जानता—लाना क्या मेरे या माँ के पक्ष में मङ्गलकर होगा ? वह चिंता-धारा में बह चला। वह

मुँह-हाथ धोकर खाने को बैठा सही, पर भोजन आज उसे रुचा नहीं। माँ ने अनुमान किया पर, उसका अनुमान ठीक न उतरा। उससे रहा न गया--पूछ बैठी—"क्यों बेटा, खाया नहीं कुछ, योंही कैसे उठ गया ? रसोई जल तो नहीं गई ? कुछ हो तो नहीं गया ? मेरी बातों से असंतुष्ट तो न हुए ?"

नवीन उत्तर देने के लिए अपने को, इतनी कम देर में ही तैयार कर चुका था । वह बोल उठा—"यों ही तुम कहा करती हो माँ, रसोई तो बड़ी ही स्वादिष्ट थी। इसके अलावे मैंने खूब खाया भी—फिर भी तुम कहती हो कि तुम्हें कुछ रुचा ही नहीं।"

माँ हँस पड़ी--न जाने क्यों हँस पड़ी--पता नहीं। वह हँसती हुई ही बोल उठी—"जानती हूँ—जानती हूँ नवीन ! यह कुछ-नहीं यह कुछ नहीं—तुम मेरी तकलीफों को समझते हो ! नहीं तो ऐसा तुम नहीं कहते। मैं जानती हूँ—रसोई जो पकी है। खैर बेटा ! भगवान भला करे—तुम्हें शीघ्र ऐसी रसोई से निस्तार मिले।"

बोलते-बोलते माँ का गला भर आया, उसकी आँखों के कोने में आँसू ढलमल करने लगे। उसने आँसुओं को छिपाने के लिये अपना मुँह दूसरी ओर फिरा लिया। पर, नवीन से वह अपने को छिपा न सकी। उसका हृदय कह रहा था—अच्छा हो, रधिया की बात माँ से कह दी जाय। और बिना कुछ सोचे-विचारे वह बोल उठा—"माँ ! मैं कई दिनों से सोच रहा था कि तुमसे यह कह सुनाऊँ, पर मुझ से कहते न बन पड़ा। आज मैं कहने को तैयार हो चुका हूँ। मेरा कहना यह है कि यदि तुम्हारी आज्ञा मिले तो

एक दाई-वाई रसोई के लिए—नहीं तुम्हारी सेवा के लिए—रख ली जाय। क्या कहती हो माँ? क्यों कैसा होगा?"

"यह तो नहीं होगा!"—माँ स्वाभाविक रूप से यह ख्यालकर बोल उठी कि नवीन को वह जानती थी और जानती यह थी कि उसका विचार निरर्थक नहीं हुआ करता, और उसकी मानरक्षा उसकी बूढ़ी माँ बराबर करती आ रही थी। पर आगे वह जो कुछ कहा चाहती थी उसके लिए वह प्रस्तुत न थी। फिर भी वह कुछ चिंता करती हुई बोल उठी—"पर ऐसी अच्छी औरत कहाँ मिलती है जिस पर रसोई का भार···· ····।"

"सो तो ठीक है माँ! पर, यदि हम लोगों के भाग्य से मिल जाय तो तुम उसके हाथों की रसोई खा सकती हो?"

नवीन बोलता गया, पर वह सोचने लगा—यदि माँ से संतोष-जनक उत्तर न मिला तो?

साथ ही वह यह भी सोचने लगा कि माँ अनजान स्त्री के हाथ की बनाई हुई रसोई तो खा ही न सकेगी। कारण है—माँ बड़ी धार्मिक प्राणी है, सनातन धर्म उसका इसी में अक्षुण्ण रहता आया है। बुढ़ापे में वह तो और भी इस नियम का जी-जान से पालन किया करती है। यहाँ तक कि, मुझ को भी बिना हाथ-पाँव धोए रसोई घर में घुसने नहीं देती। फिर वह क्योंकर इस प्रस्ताव को स्वीकृत करेगी? वह कुछ देर तक इन्हीं विचारों में उलझा रहा, पर माँ ने उसे इस अवस्था में अधिक देर तक न पड़ा रहने दिया। वह बोल उठी—"यदि ऐसा जुगाड़ लगे तो अच्छा ही है! क्या

तुम्हारे देखे कोई ऐसी मिल सकती है ? पर—हाँ ·· कुछ नहीं,···· यही एक बात है कि खर्चा कुछ अधिक बढ़ जायगा—यही एक बात है,·······पर नहीं, कोई बात नहीं।"

नवीन के जी में जी आया। उसने एक निश्चिंतता की साँस ली। उसका मुँह प्रफुल्ल दीख पड़ा, उसके ओठों के बीच मंद मुस्कान की रेखा खिंच आई। वह बोल उठा—"हाँ, ऐसी एक लड़की है, माँ, बड़ी गरीब है, अपना उदर-पालन तक नहीं कर सकती। इसलिए मैं चाहता हूँ कि, उसका काम भी निकल आये और हम लोगों की तकलीफ भी दूर हो जाय। खर्चा कुछ अधिक नहीं, खाने-पहनने ही भर चाहिये—कुछ विशेष नहीं।"

माँ ने सारी बातें सुन कर अपना सम्मतिसूचक सिर हिलाया। माता–पुत्र की बातें यहीं शेष हुईं। नवीन अपने सोने के कमरे में आया और बिछावन पर आते ही लेट रहा। उसके मस्तिष्क में रह-रह कर रधिया की बातें घूम रही थीं। वह कभी-कभी सोच रहा था – रधिया-भिखारिन रधिया—को अपने घर ले आना क्या ठीक होगा ? माँ को यदि उसकी वास्तविक स्थिति का पता किसी दिन लग जाय तो उन्हें उसके प्रति कितनी घृणा होगी ? जाति का ठिकाना नहीं—रहने-सहने की जिसकी निम्नतर अवस्था है—भला उसे एक निष्ठावान के घर आश्रय देना क्या उचित होगा ?

नवीन ज्यों-ज्यों इस विषय को लेकर सोचता, त्यों-त्यों उसकी द्विविधाएँ और भी बढ़ती ही जातीं; पर उसका लक्ष्य ही इतना

ऊंचा था कि, उसके सामने ये सब बातें टिक न सकीं। अंत में उसने निश्चय कर लिया कि, उसको आश्रय न देना उसे पतन की राह पर छोड़ना ही होगा। नहीं, उसे आश्रय देना ही होगा!

कुछ देर के बाद वह गहरी नींद में सो गया।

सबेरा हुआ। नित्य कर्म से निवृत्त होकर वह पढ़ने को बैठ गया, पर उसे पढ़ने में जी न लगा। पर, माँ का आदेश था—सबेरे वह किसी भी अवस्था में पढ़ना छोड़कर बाहर निकल नहीं सकता था। पढ़ना ही उसके जीवन का परम लक्ष्य था और उसी पर उसकी माँ की एकमात्र आशा टिकी हुई थी। इसलिए नवीन ने उसमें जरा भी विघ्न उपस्थित नहीं करना चाहा। ज्यों-त्यों करके उसने इस नियम का पालन किया सही, पर व्यर्थ! वह मनोयोगपूर्वक पढ़ नहीं सका, केवल आदेश का पालन भर ही करता रहा। अंत में समयानुसार भोजन-पान करते-धरते एक बज गया। उसने खूंटी से कुरता उतार कर पहना और बाहर की ओर चल पड़ा।

आज नवीन जिस पथ पर बढ़ा चला जा रहा है, वह उसके जीवन-अध्याय का प्रथम पृष्ठ है। उसकी एकमात्र चिंता है कि रधिया का वह उद्धार कर सके। यदि रधिया उसे आज मिल जाय—हाँ, उसे मिल जाय तो वह उसे आज अपने साथ अपने घर ले आवेगा, उसे आश्रय देगा, उसे उन्नत करने की चेष्टा करेगा। इसलिए वह अपने विचार के साथ-साथ द्रुत गति से उसके निवास की ओर चल पड़ा। उसका हृदय धड़क रहा था,

पैर आगे को बढ़ते थे सही, पर उसका हृदय मानो पीछे की ओर ही खिंचा जाता था। उसे रह-रह कर बोध होता था—कहीं रधिया की माँ को इस षड्यंत्र का पता लग जाय तो कैसा? लोग क्या कहेंगे? आखिर वहाँ के भिखमंगे मुझ पर कैसा ताना कसेंगे? उस समय दिल की हालत क्या होगी? क्या उसे सहन करना मेरे लिए सरल होगा?............पर, वह इन चिंताओं में उलझा न रहा। वह मंत्र की तरह अपने पथ पर बढ़ता ही गया। उसने उस तंग गली में प्रवेश किया जिसकी आखिरी छोर पर भिखमंगे रहा करते थे। वह तेजी से कदम बढ़ाते हुए जा रहा था कि, इतने में पीछे की ओर से किसी ने आवाज दी—"नवीन बाबू!"

नवीन ने मुड़कर देखा—यह क्या? रधिया! किसकी प्रतीक्षा कर रही थी वह? वह बोल उठा—"यहाँ क्यों रधिया? क्या कर रही है?"

रधिया उसके पास कुछ बढ़ आई और सिर झुकाए हुए बोल उठी—"मैं तो कल ही वहाँ से निकल गई हूँ।"

उसकी आँखों में आँसू भर आए, उसने मुंह दूसरी ओर फेर लिया। पर नवीन से यह छिपा न रह सका। वह बोल उठा—"इतनी उतावली होकर क्यों निकली, राधा! मैं तो तुम से कह ही गया था कि मैं आऊँगा और तुम्हें अपने घर लिवा ले जाऊँगा! फिर क्यों?.................."

"क्यों का हाल मत पूछिए, नवीन बाबू! मुझे उस नरक से निकालना ही चाहते थे तो क्यों एक रात के लिए मैं अपनी

अस्मत गँवाती ? अगर मैं रात के पहले ही वहाँ से न निकल गई होती तो मेरी क्या गत होती—मैं खुद नहीं जानती। माँ तो मेरे नाम से चिढ़ी हुई थी, वह क्या जानती थी कि मुझपर कैसा कुछ बीत रहा है। और उसके पतन का तो ठिकाना नहीं। मैं और क्या कहूँ—कैसे कहूँ—आखिर वह मेरी माँ है। पर अब ? अब यहाँ से मुझे निकाल ले चलें और मैं आप से क्या कहूँ ?"—और बोलते-बोलते राधा की आँखों से आँसू बह निकले।

नवीन ने अनुभव किया—रधिया का अन्तिम वाक्य बड़ी मुश्किल से निकल सका था। उसके हृदय में जो व्यथा थी वह मुँह से प्रकट न कर सकी। उसका गला रुँध गया था। उसका उच्छ्वसित हृदय चंचल हो उठा था। उसकी आँखों से आँसुओं का बांध मानो टूट-सा गया था। नवीन उसकी दशा देखकर खिन्न हो उठा—उससे और देखा न गया। वह बोल उठा—"राधा, चलो! चलो मेरे घर! पर एक बात है, जिसे कह देना मैं उचित और आवश्यक समझता हूँ। तुम्हें इसमें मीन-मेष करने की जरूरत नहीं। ऐसा मैं क्यों कहने जा रहा हूँ ? जरूर कुछ मतलब है! तुम बुरा तो न मानोगी ? झूठ बोलना पड़ेगा और ऐसी अवस्था के लिए झूठ बोलना मैं बेजा नहीं समझता। तुम शायद जानती होगी कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं भले ही छुआछूत को नहीं मानता, सभी का बनाया भोजन कर सकता हूँ, पर मेरी माँ ऐसा नहीं कर सकती। वह बूढ़ी है और बुढ़ापे में किसी को अपने विचार से डिगाना कम कठिन बात नहीं। मैं तुम्हारे बारे में उनसे कह चुका हूँ, माँ

आश्रय देने के लिए तैयार हैं। तुम वहाँ अपना परिचय ब्राह्मणी—अनाथ ब्राह्मणी के रूप में देना और आजीवन तुम्हें यह भी छिपाना होगा कि तुम किसी दिन भिखारिन थी और किसी वेश्या की कन्या! इतनी-सी बात तुम्हें मेरी खातिर करनी होगी। क्यों—क्या विचार है? समझ गई मेरी बात?"

रधिया चाहे जैसी रही हो, यहाँ वह प्रश्न नहीं है, पर उसकी अंतरात्मा नवीन की बातें सुनकर एक बार सिहर-सी उठी। उसका हृदय धड़क उठा, उसका दिल काँप उठा—झूठ बोल कर किसी का धरम बिगाड़ना होगा—वह भी और किसी का नहीं—बूढ़ी निष्ठावान ब्राह्मणी का धरम! आखिर, ऐसा गर्हित कार्य करना होगा? और इस पेट के लिए? वह कुछ भी न बोल सकी। उसका चेहरा पीला पड़ गया। नवीन को मालूम हुआ—जैसे उस पर वज्र गिर पड़ा हो। वह घबरा कर बोल उठा—"क्या सोच रही है राधा! इतनी चिंता क्यों?"

इस बार राधा कुछ सचेत हुई। वह अपनी सारी शक्तियां इकट्ठी कर बोल उठी—"मुझे भगवान के नाम पर ऐसा न करने को कहें नवीन बाबू! आप जो कुछ कहेंगे करने को तैयार हूँ, पर झूठ बोल कर बूढ़ी माँ का धरम बिगाड़ना मुझसे न हो सकेगा। आखिर भगवान तो हैं? हमलोग चाहे कितना ही छिपाएँ, पर उनकी नजर में कोई बात भला छिपी रह सकती है? मैं निहोरा करती हूँ—ऐसे धरम-संकट में मुझे न डालिये—मुझे सिर्फ यहाँ से हटाकर आप कहीं रखवा दीजिए। मैं कहीं के जूठन से पेट भर

लूँगी; उतारे हुए कपड़ों से अपनी इज्जत ढाँक लूँगी—मगर……!"

नवीन उसकी बातें सुन कर दंग रह गया। भला, एक भिखारिन दुनियाँ की नज़र में त्याज्य—एक निकृष्टतम जीव से वह क्या सुन रहा है? उसे उस पर एक तरह की श्रद्धा हो आई—ममत्व हो आया। वह स्नेह के स्वर में उसकी बातें काट कर बोल उठा—"तुम बच्ची हो—नादान हो राधा! आपद्धर्म में आदमी सभी कुछ कर सकता है, वहाँ पाप नहीं लगता। धर्म ऐसी हल्की-सी चीज नहीं कि, जरा-सी हवा लगी और रूई जैसी उड़ गई! मन की पवित्रता सब कुछ है। वह जाति-पांति की अपेक्षा नहीं करती। मेरा विश्वास है, तुम जैसी विचारवान लड़की से कभी किसी का अमंगल नहीं हो सकता। फिर यह तो कुछ झूठ नहीं है? तुम्हारी माँ से मुझे पता लग गया है कि, वह वेश्या होने के पहले तक ब्राह्मणी ही थी। तुम उसी की बेटी हो—चाहे तुम अपने को जो भी कह लो—दुनिया भी चाहे तुम्हारे लिए जो भी कह ले। पर, यदि तुम अपने को ब्राह्मणी ही कहो—खैर, मेरे ख्याल से नहीं, क्योंकि मैं ब्राह्मण-शूद्र में जातिगत कुछ अंतर नहीं मानता—तो यह कुछ अनुचित नहीं होगा? फिर भी ऐसे समय में, जब कि मैं तुम्हारे लिए और कोई उपाय नहीं कर सकता। तुमसे इतना ही आग्रह करूँ तो क्या तुम उसकी रक्षा न कर सकोगी? कहो—क्या कहती हो!"

इस बार राधा की आँखों से आँसू निकल आए और ओठों पर एक हल्की-सी हास्य की रेखा खिंच आई। वह बोल उठी—"अच्छा, तो ऐसा ही होगा।"

नवीन प्रसन्न होकर बोला—"तो चलो चलें, राधा !"

और दोनों वहाँ से चल पड़े। नवीन ने देखा कि, राधा के कपड़े-लत्ते बुरी तरह फट गए हैं, साथ ही काफी मैले हैं। इसलिए उसने उससे कहा—"चलो, और आगे एक घोड़ा गाड़ी कर लेता हूँ। जल्दी हमलोग घर पहुंच जायंगे।" थोड़ी देर के बाद ही नवीन ने एक सुरक्षित स्थान में आकर राधा से कहा—"जरा ठहरो, राधा यहाँ! मैं घोड़ा गाड़ी की खबर लेता हूँ।"

राधा एक वृक्ष की आड़ में बैठ गई, नवीन वहाँ से तेजी के साथ बाजार की ओर चल पड़ा। उसने एक जोड़ा साड़ी खरीदी और रास्ते में ही गाड़ी का प्रबंध कर वह उस स्थान पर आ पहुंचा। राधा से उसने कपड़े बदलवाए और उसे साथ कर दोनों गाड़ी में आ बैठे। गाड़ी निश्चित स्थान के लिए चल पड़ी।

राधा ने उसके घर के भीतर पाँव धरते ही देखा—नवीन का एक छोटा-सा किन्तु साफ-सुथरा मकान है। उसने मन-ही-मन भगवान को धन्यवाद दिया। नवीन आगे-आगे जा रहा था और राधा पीछे-पीछे। नवीन आँगन में प्रवेश करते ही माँ से बोल उठा—"लो माँ, मैं इसे तुम्हारी सेवा के लिए ले आया, और राधा से कहा—"सुनो राधा! यही मेरी माँ है; देखना अब से इन्हें कोई कष्ट न हो।"

राधा ने बूढ़ी के चरणों पर अपना सिर रखा। माँ ने उसे उठाते हुए कहा—"लो! बेटी! यह क्या—यह क्या कर रही हो ?" माँ ने देखा—आगंतुक लड़की बड़ी सरल है, स्नेहशील है और राधा

ने देखा—मानो वह आज एक नवीन संसार में आ गई है, जहाँ मूर्त्तिमयी करुणा साकार रूप धारण किए बैठी है।

—चौदह—

इधर नवीन कई दिनों से, कार्य-व्यस्तता के कारण, मणि से मिलने न जा सका था, इसलिए वह मन-ही-मन झेंप रहा था कि इस बार मणि से भेंट होने पर, वह उस पर झुंझलाए बिना न रहेगी। कल नवीन की परीक्षा का पहला दिन होगा, इसलिए घड़ी भर के लिए मणि से मिल आने को वह चंचल हो उठा, वह संध्या को अपनी स्टडी से छुट्टी पा कुछ जलपान कर बाहर की ओर चल पड़ा।

वह ज्योंही मणि के घर पहुंचा, उसने देखा कि, एक भद्र पुरुष की लिबास में एक युवक ड्राइंग रूम में बैठा है। आज नवीन के लिए पहला ही अवसर था कि, मणि के घर एक अनजान युवक को देखे। वह जरा अप्रतिभ हुआ, कुछ सकुचाया-सा कुछ क्षण के लिए ठिठका-सा रहा—बैठा नहीं। ज्योंही ड्राइंग रूम में उसने प्रवेश किया था, वैसा ही अचल अटल-सा खड़ा रहा। अवश्य वह अनजान युवक कुछ संकुचित-सा हुआ। कुछ उसका मुखड़ा उदास-सा हो उठा। उसने एक बार नवीन को सिर से पाँव तक देखा सही, पर उसने सिर झुका लिया—कुछ बोला तक नहीं।

नवीन जरा द्विविधे में पड़ गया। वह उतनी जल्दी में सोच नहीं सका कि उसे बैठ जाना चाहिए वा बाहर की ओर बैरंग वापस हो जाना चाहिए। पर, मणि ने उसे इस अवस्था में अधिक देर तक पड़ा रहने न दिया। वह बेशकीमती कपड़ों से लैस हो, बिजली-जैसी आ धमकी। नवीन की जान में जान आई। वह उसे देख, अवश्य जरा मुस्किरा उठा, साथ ही आज उसके निखरे सौन्दर्य को देख उसे कुछ विस्मय भी हुआ। मणि नवीन को देखते ही बोल उठी—जरा व्यंग के स्वर में—"वाह ! यह क्या ? आज श्रीमान् किधर को भूल पड़े ?"

पर नवीन को आज उसके स्वर में सरसता न मिली, वह उत्तर के रूप में बोल उठा—"योंही चला आया। इधर कुछ ऐसा कार्य आ गया था, इससे फुर्सत ही न मिली !"

नवीन ने उसकी ओर देख कर अनुमान किया कि, वह कहीं जाने को मानो व्यग्र हो उठी है। और यह भद्र पुरुष ?

वह सोच ही रहा था कि, मणि ने उसे ज़रा भी अवसर न देकर कहा—"पर, खेद है नवीन बाबू ! अभी हमलोग सिनेमा में जा रहे हैं। पहले से ही सीट रिजर्व करवा ली थी, उधर मोटर भी तैयार है। क्या आप भी हमलोगों का साथ देंगे ?"

नवीन का कुतूहल बढ़ चला। कौन यह भद्र पुरुष है जो इतने ही कई दिनों में इससे इतना घुल मिल गया कि, आज मणि 'हमलोग' का प्रयोग कर रही है ? क्या यह कोई आत्मीय तो नहीं ? पर, मणि तो कहती थी—उसका कोई आत्मीय नहीं।

फिर ? हाँ, कोई प्रेमी होगा ! और उसने साथ ही यह भी अनुभव किया कि यद्यपि मणि उससे चलने का प्रस्ताव कर रही है, पर यह प्रस्ताव मौखिक भर ही है, कुछ अंतस्तल से नहीं। तब क्या मैं दोनों के बीच काँटा-सा पड़ा रहूँ ? इसलिए, उसने बलपूर्वक ओठों पर मुस्किराहट की रेखा खींचते हुए कह डाला—"छोड़ दो मणि मुझे ! तुम्हें शायद याद होगा, कल से मेरी परीक्षा प्रारंभ होनेवाली है। मैं अभी घर चलकर कल का विषय ठीक कर लूँगा। तुमलोग जाओ।"

मणि उसका अंतिम वाक्य सुनकर चौंक उठी। मानो किसी ने उस पर चाबुक खींच मारी। उसका मुँह तमतमा उठा, उसके कान गर्म हो उठे। वह संकुचित-सी हो उठी—कुछ लजा सी गई। उससे इतना भी न हुआ कि वह सिर उठा उसकी ओर देख भी सके। उसे बोध हो रहा था—मानो वह बेतरह पकड़ी गई है। नवीन 'हमलोग' सुनकर रंज हो उठा है, यह उसे बोध हुआ—उसे अपने आप पर रंज हुआ, उसकी गर्दन दूसरी ओर हिल गई। नवीन की आंखें अपरिचित भद्र पुरुष से टकरा गईं। उसने देखा—उनकी (भद्र पुरुष) आँखें तवे के समान तप्त हो उठी हैं। उसने समझा—नवीन का आना अच्छा न हुआ। क्यों यह अभागा आज न जाने कहाँ से आ धमका ?

इतने में वह पुरुष उठ खड़ा हुआ। मणि परिस्थिति को संभालते हुए बोल उठी—"अच्छा..................तो वैसा हीहो।"

वह बाहर की ओर चल पड़ी, भद्र पुरुष ने उसका अनुसरण किया और नवीन भी, जरा खिन्न होकर बाहर की ओर चल पड़ा। तीनों सीढ़ियों के रास्ते नीचे आए। कोई कुछ नहीं बोल पाया। भद्र पुरुष शोफर की सीट पर आ बैठा! मणि के लिए जरा कठिन हो उठा कि, वह कहाँ बैठे! पर, भद्र पुरुष को उसकी ओर घूम कर देखते ही मणि सङ्कुचित हो, पीछे की सीट पर ही आ बैठी। उसने मोटर को स्टार्ट किया। इतने में मणि जरा लजाती-सी बोल उठी—"अच्छा तो नवीन बाबू! आप भी आकर बैठिए न कम-से-कम········ ?"

"नहीं-नहीं आवश्यकता नहीं इसकी। मुझे तो दो ही फर्लाङ्ग पर अपने घर की ओर घूम जाना पड़ेगा। फिर इतनी-सी दूर के लिए········।"

उसकी बातें शेष भी न होने पाई थीं कि, मोटर सर्र से निकल पड़ी। मणि को भद्र पुरुष का यह व्यवहार उचित जँचा होगा वा अनुचित, सो तो वही जाने; पर, नवीन अवश्य खिन्न हो उठा। कैसा दुःशील व्यक्ति है वह। पर क्षण भर के बाद ही उसने देखा—मोटर से मुँह निकाले मणि बोल रही है—"अच्छा जाइए नवीन बाबू! पर परीक्षा का समाचार कह सुनाइएगा।"

नवीन ने उत्तर में जोर से कह सुनाया—"अच्छा!"

नवीन की दृष्टि में मणि एक पहेली-सी बन बैठी। इतना शुष्क व्यवहार, उसके जानते, उससे कभी न बन पड़ा था। फिर क्यों आज नवीन उसकी उपेक्षा की वस्तु बन गया? नवीन सिर

झुकाए अपने रास्ते पर चल पड़ा, पर उसका पथ आज उतना सुगम न मालूम पड़ा। उसका मस्तिष्क इतना भारी हो उठा कि उसे बोध होने लगा—मानो कठिन पीड़ा हो रही है उसके सिर में। वह घर आया, अपने बिछावन पर जरा चित होकर लेटा रहा। वह मन-ही-मन सोच रहा था—मणि इन्हीं दो चार दिनों के भीतर इतनी कैसे बदल गई ?

पर, कुछ ही क्षण के बाद उसने अपने को संयत किया। वह विचारने लगा—मणि की स्वतन्त्रता पर उसका अधिकार क्या ? क्यों उसके प्रति इतना वह सोच रहा है ? कौन होता है वह ? उसने नवीन को प्रेमी के रूप में कभी अपनाया तो नहीं है ? फिर उस कौतूहली रूपसी पर इतनी संजीदगी क्यों ? उसे अधिकार है, वह अपने को कहीं भी अटकावे—कहीं भी अपना प्रेम छितराती फिरे। अवश्य उसकी इतनी कृपा है कि, वह उसे प्रेम की दृष्टि से देख भर लेती है। क्या वह उसके पाने का अधिकारी है ? कहाँ वह यौवन-सौंदर्य-सम्पत्तिशालिनी रूपसी और कहाँ वह एक फटेहाल तुच्छ युवक !

नवीन किसी तरह अपने को संयत कर सका अवश्य, पर अपने हृदय से मणि को बाहर निकाल न सका। उसे रह-रह कर उसकी स्मृति चिउँटी काट जाती थी। वह अपने को अस्थिर पा रहा था कि इतने में दर्वाजे का पल्ला हटा और उसे एक छाया-सी भीतर आती हुए दीख पड़ी। नवीन का ध्यान उसकी ओर खिंच गया। इतने में राधा टेवुल के पास आकर लैंप की बत्ती जरा

उसकाते हुए बोल उठी—"खाना खालें, नवीन बाबू ! माँ को आज जोर का बुख़ार हो आया है, आपको खिलापिलाकर फ़ुर्सत पाने पर उनकी जरा··· ··· ।"

"बुख़ार आ गया माँ को ?"—चौंक कर नवीन बोल उठा। पर, नवीन को अपना ही प्रश्न अच्छा न जँचा। बुख़ार आज के लिए नई बात नहीं है। इधर बराबर एक-दो दिन के बाद उन्हें बुख़ार हो आया करता है। फिर आज के लिए नया तो नहीं है कुछ। अपने प्रश्न पर वह आप ही खीझ उठा। पर, राधा न पहचान पाई उसके प्रश्न को—उसके हृद्गत भावों को। वह बोल उठी—"हाँ, माँ को आज भी बुख़ार हो आया है। पर, नवीन बाबू ! जरा, इनकी दवा-दारू करते न ! बड़ी तकलीफ है। ख़ैर, भीतर चलिए भोजन कर लीजिए। क्या यहीं ला दूँ ? आज रोटी ही पकी है। आप ही तो कहते गये थे।"

"नहीं-नहीं, आता हूँ, चलो भीतर !"—उदास होकर नवीन बोल उठा।

राधा भीतर की ओर चल पड़ी। इस समय राधा का आना कदाचित् नवीन के लिए अच्छा रहा। वह मन-ही-मन मणि और राधा की तुलना करने में व्यस्त हुआ। एक वह है और एक यह। उसकी दृष्टि में मैं नगण्य हूँ और इसकी दृष्टि में श्रद्धा का पात्र। उसमें मादकता के साथ प्रेम का प्रदर्शन है और एक यह है—सरलता और स्नेह की साकार प्रतिमा ! कितना अन्तर है—कितनी भिन्नता !

वह अपनी ही तुलना से आप प्रसन्न हो उठा। आज राधा को अपने दृष्टि-पथ पर रखकर उसने मणि का जो पद-मर्दन किया है, इससे उसके प्रति की हुई उपेक्षा पर उसे जो एक प्रकार का खेद हुआ था, वह आप-से-आप जाता रहा। मणि को इसके साथ अपदस्थ कर उसका हृदय आनंद से खिल उठा, उसमें स्फूर्त्ति हो आई। वह उठकर भीतर की ओर चल पड़ा। उसने देखा—राधा अबतक उसकी प्रतीक्षा में भोजन का सामान लेकर उपयुक्त स्थान पर खड़ी है।

नवीन आसन पर बैठ गया। राधा ने थाली उसके सामने रख दी और जरा हटकर खड़ी हो रही। वह मन-ही-मन चिंतित-सी हो उठी—कहीं आज की रोटियां कल-जैसी न जँचे। बात यह है कि, राधा को सुस्वादु भोजन पकाने का तो जीवन में कभी अवसर मिला न था, उसे यहाँ ही भोजन बनाने का ककहरा सीखना पड़ा है। सीखना क्या—यहीं से उसने मानो संसार में प्रवेश किया है; पर, इन्हीं कई दिनों में वह अच्छी—हाँ, अच्छी ही कहेंगे—रसोई पका लिया करती है, फिर भी झेंप रही है—कहीं आज भी ख़राब न हो गई हो। पर, उसकी चिंता एक तरह से दूर हुई; यह देखकर कि, नवीन की आकृति पर एक स्वाभाविक आभा मानो फूटी है; कदाचित् ही अब से पहले उसने ऐसा देखा हो। यही नहीं—राधा को उस समय और भी प्रसन्नता हुई, जब दो-चार कवल खाते ही नवीन बोल उठा—"आज का भोजन तो बड़ा स्वादिष्ट हुआ राधा! तुम तो यों कहा करती हो-रसोई अच्छी नहीं बन पाती।"

राधा मानो लजा-सी गई और लजाती हुई ही बोली—"आप तो यों ही अच्छी कह दिया करते हैं—सिर्फ मेरा मन रखने को !"

नवीन उसकी सहज सरल लज्जा पर मुस्किराते हुए बोल उठा—"नहीं, राधा ! सो बात नहीं। तुम स्वयं खाकर देख लो—तुम कितनी तरक्की कर रही हो। केवल मेरे कहने पर ही न रहो। तुम जब खुद खा लोगी तो मेरा कहना तुम्हें सच मालूम पड़ेगा।"

सचमुच नवीन ने बड़े चाव से भोजन किया। उसका हृदय गद्गद हो उठा, वह आवेश में बोल उठा—"देखती है, राधा ! यदि तुम न आती—तो मुझे अभी भोजन कहाँ नसीब होता ? माँ इन दिनों बराबर बीमार ही रहती आ रही हैं, इस बुढ़ापे में वह मेरे लिए इतना भी ख्याल न करती कि उसे बुखार है या नहीं—रहते हुए भी कष्ट उठा कर मेरे लिए रसोई बनाकर ही दम लेती है ! मैंने कई बार देखा है—शरीर तबे के समान तप रहा है, फिर भी आग के सामने बैठी रसोई बना रही है। अपने लिए नहीं—अपने बेटे के लिए ! देखो तो उनकी ममता ! मैं तो कहता हूँ—उन्हीं की प्रेरणा से तुम यहाँ आने पर सहमत हुई—और कोई बात नहीं है। नहीं तो तुम कभी यहाँ आ सकती ?"

राधा इन बातों को सुन कर खुश हुई या नहीं—वही जाने; पर उसकी आँखें आँसुओं से भींग गईं और उन्हें छिपाने के लिए—कहीं नवीन देख न ले—उसने अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया। वह कहा चाहती थी—कहने के लिये उसका हृदय मानो छटपटा रहा था—कि यह कहना उनकी उदारता है। कहाँ एक निकृष्टतम

व्यक्ति का उद्धार और कहाँ उसकी उलटी कृतज्ञता! क्या कहे वह? कैसे कहे? नवीन उसे ऐसा कुछ कहने का अवसर देगा? अवसर देगा कभी उसे ऐसा बोलने का?:फिर भी उसके ओठ कुछ कहने को हिल-से गए—पर नवीन ने जान-बूझ कर उसे अवसर न दिया। उसका भोजन शेष हो गया था, वह मुंह धोते-धोते ही अपने कमरे में आ पहुँचा। राधा अपने कमरे में पान सजाने को चली गई।

कुछ ही क्षण के बाद राधा पान बनाकर देने को आई। नवीन ने उसे लेकर उससे कहा—"जाओ, राधा! खा-पीकर आराम करो। तुम बहुत तड़के उठा करती हो, मुझे भी उठा देना। अच्छा!"

"हाँ, उठा दूँगी। पर यह तो कहिए, नवीन बाबू! कल कितनी देर में रसोई तैयार हो जानी चाहिए?"

नवीन ने देखा—राधा कितनी बुद्धिमती है—कितनी फिक्र है इसे मेरी! परीक्षा के लिए कल मुझे जाना है, मैंने इसे सूचना तक न दी फिर भी इसे समझते देर न लगी। वह बोल उठा—"हाँ, अच्छी याद दिलाई; यदि तुम न कहती तो जरूर मुझे देर होती—फिर कल तो पहला दिन है, और इसलिए कुछ पहले ही जाना होगा। यही नौ—सवा नौ तक रसोई हो जायगी?"

"होगी क्यों नहीं? इसके पहले भी कहिए कर दूँ?"

"नहीं—नहीं, जरूरत नहीं। अच्छा जाओ, खाओ पियो!"

"तो आज की मेरी लिखी हुई कापी न देख लीजिएगा? सिर्फ पाँच मिनट!"

राधा दौड़कर भीतर गई और बात-की-बात में अपनी कापी लेकर आ पहुँची। नवीन कुर्सी पर बैठकर पुस्तक के खुले पृष्ठों पर अपनी शून्य दृष्टि डाले पड़ा था कि, इतने में राधा ने अपनी कापी लाकर उसके सामने रख दी।

यहाँ यह कहना व्यर्थ है कि, नवीन राधा को सब तरह से सुधारने में लग गया है। यही नहीं, राधा के अंतस्तल में उसकी प्रतिभा जो छिपी पड़ी थी, उसका अनुमान उसे लग चुका था। यही कारण है कि अपने अमूल्य समय का कुछ हिस्सा उसके लिए सुरक्षित रख कर उसे पढ़ाने में वह लग गया, और आज उसी का फल है कि, राधा अब अपने मन से शब्दों को जोड़-जोड़ कर कुछ वाक्य लिख लिया करती है और प्रति दिन अपनी रचना दिखाकर उसे सुधरवा लिया करती है।

नवीन का पाँच मिनट शेष हुआ पर पाँच ही मिनट में उसे ऐसा अनिर्वचनीय आनंद हुआ, वह मणि की उपेक्षा-जनित खेद को बिलकुल ही भूल कर बिछावन पर सुख की गोद में पड़ गया। राधा भीतर की ओर चली गई।

—पंद्रह—

राधा को नवीन के घर आए कई सप्ताह बीत गए। उसे यहां आने पर पहले-पहल अपनी स्वाभाविक प्रकृति के कारण जो झिझक थी, वह अब जाती रही। कारण यह था कि, उसे तो आजीवन किसी भद्र समाज में रहने का सुअवसर मिला नहीं था, साथ ही उसे अपने आप पर जो घृणा हो रही थी, उससे वह सहज ही अनुमान किया करती कि दूसरे भी उसे—कम-से-कम एक धर्मनिष्ट वृद्धा—कहीं घृणा की दृष्टि से न देखती हो, और इनके सिवा, उसे घरेलू काम-काज का कुछ भी अनुभव न था। अनुभव होता भी कैसे ? उसे तो भिखारियों के महल्ले में रहते हुए मांग-चांग कर ही जीवन बिताना पड़ता था। कच्ची-पक्की रसोई—वह भी बहुत कम—बनाने को सुअस्सर

थी। ये ही कुछ कारण थे कि वह सदैव डरी-डरी-सी रहती थी। पर, उदारचेता वृद्धा मां की सदय दृष्टि और कार्यपटुता के कारण, उसे जरा भी ऐसा मौका नहीं मिला कि उसे अपने काम से किसी तरह का रंज हो। अवश्य उसके हाथों ऐसी गलती हो जाती कि घर वालों को कच्ची-पक्की रसोई खानी पड़ती हो, पर उस दिन नवीन तो नहीं, उसकी मां केवल इतना ही भर कह दिया करती कि, 'देख बेटी! इस काम को इस तरह से किया कर! रसोई कुछ बुरी नहीं होती—फिर यदि इस तरह से की जाती तो और अच्छी होती। यद्यपि मां को उसके हाथ की रसोई खाने का बहुत ही कम अवसर मिला करता। कारण था—वृद्धा—जब वह नीरोग रहती—अपने हाथों ही रसोई बना लिया करती, पर बीमारी आदि की अवस्था में अवश्य उसे पथ्यादि उसके हाथों ग्रहण करना पड़ता।

अब तीन सप्ताह से अधिक हो गए, वह घर का काम-काज जान गई है। सबेरे उठकर घर-आंगन में झाड़ू देती, उन्हें लीपती-पोतती, बर्त्तन-बासन मलती, स्नान करती, कपड़े लत्ते फींचती, वृद्धा को स्नान कराती, जलपान बनाती—फिर रसोई आदि कामों में लग जाती। इससे जो समय बचता, नवीन से पढ़ा भी करती। और नवीन भी उसे घर के कामों को सुचारु रूप से करने को कभी कभी कहा करता। राधा अपनी कमजोरियों को समझ जाती और उन्हें सुधार कर करने को प्रवृत्त हो जाती। उसे एक स्वाभाविक चाह थी और

वह यह कि उसके कामों से घरवाले प्रसन्न रहें। उसी का फल था कि, वह घर के कामों को इन्हीं कुछ दिनों में, अच्छी तरह जान गई। उसकी सुघराई, सफाई और कार्य की संलग्नता से नवीन को जो एक प्रकार का आनन्द मिल रहा था—वह राधा से अप्रकट न रहा।

राधा के आने से मां को भी कम प्रसन्नता न थी। उसका भी कारण था—मां ने तो नवीन से यह कभी प्रकट न किया था कि उसके घर में एक तरुणी कन्या का आना मंगलकर होगा। जिस दिन पहले-पहल राधा उसके घर आई थी—अवश्य वृद्धा को एक सहज दुर्बलता के कारण भय था कि नवीन क्या सोच कर इसे अपने घर में ले आया। चौदह वर्ष की एक सुन्दरी तरुणी का, चाहे वह लौंडी ही क्यों न हो, एक युवक—अविवाहित युवक के घर आना—बराबर उसी घर में—उसी के संसर्ग में रहना, कहां तक युक्ति-संगत था—वृद्धा मन-ही-मन अनुमान किया करती। पर उसके हृदय की दुर्बलता—उसका भय, कुछ ही दिनों में जाता रहा। उसने राधा को बड़ी लज्जावती, सरल और स्नेहमयी के रूप में पाया, साथ ही वृद्धा ने उसकी गरीबी, उसकी दीनता, उसकी आश्रय-हीनता का समाचार जानकर उसके प्रति अपनी सहज स्वाभाविक ममता का घड़ा उस पर उढेल दिया। वह अपने को जब्त न कर सकी। राधा ने भी उसके हृदय को पहचाना और उस दिन उसके प्रति अपनी उदार श्रद्धा से उसके पाँव पर गिर कर कहा—'माँ! जीवन में मुझे सच-

मुच कभी ऐसा अवसर न मिला था कि आप जैसी मुझे कभी माँ मिल सकेगी।' उस दिन उसने देखा—दयामयी माँ की आँखों में आँसू भर आए थे। आह! उन आँसुओं में उसके जीवन का कौन-सा इतिहास छिपा पड़ा था! कौन इसे कह सकता है? शायद वृद्धा भी नहीं कह सकती।

पर, राधा के दुर्भाग्य से वृद्धा इन दिनों बराबर बीमार ही रहती। उसे दम्मा की बीमारी थी—साथ ही आए दिन आठो पहर ज्वर भी रहा करता। फिर भी राधा ने अपनी सेवा से उसके हृदय को अपनाने की अवश्य सफल चेष्टा की। वह उसकी सेवा में सदैव पड़ी रहती। घर के कामों से छुट्टी पाते ही वह वृद्धा के निकट ही बैठती, उसे उठाती, दवा दारू देती, उसके पांव दबाती, सेवा करती। अवश्य वृद्धा अपने मन में समझती—राधा का उसके घर आना मानो उसी के लिए लाभकर हुआ; नहीं तो कौन कह सकता कि वृद्धा को इन दिनों कितने कष्ट झेलने पड़ते?

इतना होने पर भी राधा को कभी-कभी इसका भय हो आता कि, कहीं वृद्धा उससे उसके जीवन का इतिहास न पूछ बैठे। खास कर इसलिए उसका भय और भी बढ़ जाता कि कहीं उसे अपनी जाति वा अवस्था छिपाकर उसे ऐसी धर्मनिष्ठ, भक्ति-परायणा वृद्धा के निकट झूठ न बोलना पड़े। उसका भीरु हृदय इतने भर के लिए बड़ा बेचैन रहता। अवश्य राधा का भय उस दिन और भी बढ़ गया जब माँ ने उससे कहा था—'बेटी, तुम्हारे विषय में मुझे नवीन से सब कुछ मालूम हो गया है, पर मैं यह जान न

पाई कि, इतने दिन तक तुम इन कष्टों को किस तरह सहती रही।' उस समय राधा पर कैसी बन-बीती होगी—यह तो वही कह सकती है। पर, भगवान को धन्यवाद! बुद्धिमती माँ को अपने प्रश्न पर आप ही रंज हो आया। शायद उसने यह सहज ही अनुमान कर लिया कि यह प्रश्न उसके (राधा के) लिए बड़ा कष्ट-कर हो उठा। उसने बात ही बदल डाली। अपने प्रश्न को आप ही संभाल कर उसी के सामने हल करती हुई बोली—'दुःख-सुख तो जीवन का सङ्गी है, बेटी! पर मुझे बड़ी खुशी है कि तुमने जिन कष्टों को इतनी अच्छाई के साथ सहा, वह क्या सभी सहा करते हैं? बेटी! कष्ट तो भगवान का वरदान है—वह सभी को मुअस्सर नहीं होता। जिस पर भगवान की कृपा अधिक होती है, वही कष्टों को लेकर अपना जीवन-निर्माण करता है। उस दिन उसी सिलसिले में वृद्धा अपना इतिहास भी सुना गई—किस तरह उसका बचपन बीता, किस तरह एक-एक कर उसकी आँखों के सामने उसके माता-पिता की मृत्यु हुई; किस तरह उसके मामा ने उसका भरण-पोषण किया, किस तरह उसका एक निर्धन किंतु बुद्धिमान व्यक्ति के साथ विवाह हुआ, किस तरह उसके भाग्याकाश में तारे चमके, किस तरह वह सुखी हुई और किस तरह नवीन को पाकर उसे अपने पति की मृत्यु का प्रलयङ्कर दृश्य भी देखना पड़ा। उस दिन राधा भी उसके जीवन-वृत्त से बड़ी दुखी हुई, पर उस का भय जो रह-रह कर उसे बेचैन किए था—सदा के लिए जाता रहा और उसी दिन से उसमें आनन्द की जो स्रोतस्विनी बह

निकली, वह उसके जीवन-पृष्ठ में पहली घटना थी।

नवीन की परीक्षा भी सकुशल समाप्त हो गई। इन दिनों रोग-शय्या पर पड़ी माँ अपने हाथों एक दिन भी नवीन को आदर से खिला-पिला कर परीक्षा-स्थल में भेजने को समर्थ न हो सकी थी। समय पर रसोई खिलाकर, उसके कपड़े-लत्ते सहेज कर, राधा ही देती। माँ इन्हीं दिनों को देखने के लिए बड़ी आतुर थी, क्योंकि इन्हीं दिनों पर उसके भविष्य-जीवन की आशा अटकी पड़ी थी। आज जब उसने सुना—नवीन आज के अन्तिम प्रश्न-पत्र को अच्छी तरह हल कर आया तो, वह अपनी रोग-शय्या पर ही एक बार खिल उठी। उसने नवीन से स्नेह-गद्‌गद स्वर में कह सुनाया—'भगवान तुम्हें खुश करें बेटा! तुम इसमें सफल हो! आज मुझे अपने बोझ को हलका करके जो खुशी हुई है, मैं ही जानती हूँ। बड़ी साध थी मेरी कि, मैं तुम्हें अपनी इच्छा भर पढ़ा लिखा सकूँ—आज मैं उसे भी अपनी आँखों देख चुकी। पर, दूसरी साध·······दूसरी साध·······देखती हूँ···मेरी, मेरे जीवन में पूरी न हो सकेगी—मैं अब अधिक जी न सकूँगी; मैं अपने जीवन से हाथ धो चुकी हूँ। मुझे विश्वास हो रहा है, मैं बचूँगी नहीं—दम टूट चुका है! अब अपनी देखरेख में एक सती-साध्वी से विवाह कर लेना—और देखना बेटा! हमलोगों की जो यश-मर्य्यादा पीढ़ियों से रहती आई है, उसमें किसी तरह का ठेस न लगे—और क्या कहूँ।'

उस दिन नवीन और राधा ने माँ की आँखों में जिन आँसुओं

को ढलकते देखा—उससे उन दोनों के हृदय भी संयत न रह सके—दोनों रो उठे। कुछ क्षण तक करुणा की शांत सरिता बह चली। सभी मूक थे—नीरव—निस्पन्द थे।

माँ का निरन्तर बीमार रहना और उसका इस तरह अपने को शून्य पाना नवीन के लिए बड़ा कष्टकर सिद्ध हुआ। परीक्षा समाप्त करने पर उसके सिर से जो एक तरह का बोझ-सा उतर गया था, उससे घड़ी भर के लिए जो एक आराम मिल सका था, वह दूसरी ही घड़ी में जाता रहा, जब उसने अपनी माँ से यह सुना कि वह अब अधिक दिन तक जी न सकेगी। उस का ध्यान सब से पहले उस ओर गया कि वह अपनी माँ के लिए इच्छा रहते हुए भी दवा-दारू की व्यवस्था न कर सका। पर उसके लिए यह एक बड़ी कठिन समस्या थी। अब तक नवीन एक पैसा तक नहीं कमा सका था—माँ ही उसे संभालती आ रही थी। यहाँ तक कि परीक्षा-शुल्क चुकाने में उसे उसकी अन्तिम निधि मकान तक को गिरवीं रखना पड़ा था। भोजन वा घर के अन्य खर्च में उसके रखे-रखाए रुपए भी समाप्त हो चुके थे। अब जब कि वह रोटी के लिए ही चिंतित था, माँ की दवा-दारू के लिए वह कितना छटपटा उठा—इसका कहना सहज नहीं है। अवश्य वह चाहता तो कोई साधारण-सी नौकरी का कार्य-संचालन करते हुए भी अपना पढ़ना जारी रखता। पर उसे ही क्यों, उसकी माँ की सनक थी कि वह ऊँचे नम्बरों से सर्वोत्कृष्ट होकर अपनी परीक्षा पास करे जिसके लिए अबतक नवीन भगीरथ

प्रयत्न करता रहा। पर, अब उसके लिए यह सनक बड़ी कष्ट-दायक जान पड़ी। विशेषतः इसलिए कि वह माँ के अरमानों के सामने माँ को ही मरते हुए देख रहा है और उसके लिए प्रयत्न करने पर भी वह कुछ कर नहीं सकता। ऐसे समय में—ऐसे गाढ़े वक्त पर, कौन उसकी सहायता करेगा? कौन उसे अपनी शक्ति से—अपने धन से सहायता देगा? उसकी मित्र-मण्डली उतनी बढ़ी हुई नहीं थी। उसका न अपना है और न कोई आसरा। जो भी आसरा था वह मणि का—उसका भी वह रंग-ढंग देख चुका था। वह चाहती तो इसकी सहायता कर सकती थी। उसने सहायता करने का कई बार प्रयत्न किया भी था। उस दिन वह केवल अपनी आन की ही रक्षा करता रहा—देने पर भी उसने उसे कभी ग्रहण नहीं किया। उसे अपने आप पर, इस बात के लिए अभिमान था। वह इसलिए कि उस पर किसी के अहसानों का बोझ नहीं है, पर आज अपनी माँ के लिये वह उसका भी खून कर सकता है। वह तैयार है आज उसके हाथों उसे ग्रहण करने को। पर, आज वह अवसर भी नहीं रह पाया। फिर भी वह अपने अरमानों को कुचल कर उठ खड़ा हुआ। खड़ा हुआ इसलिए कि, वह मणि से अपनी सहायता के लिए भीख माँगे। वह कुछ देर तक एकांत में सोचता रहा। उसका हृदय घात-प्रतिघातों का नीड़ बन चुका था। उसने कुछ भी निश्चय न किया, जिधर पाँव उठ गए—उसी ओर को वह चल पड़ा। अवश्य वह मणि के यहाँ ही चल पड़ा था। कैसा दुस्साहस था!

पर दुःखों की भी सीमा होती है और वह सीमा अभी नवीन से दूर थी। वह चलते-चलते उसके द्वार तक जा ही पहुँचा था और सोच रहा था कि उसके भीतर वह प्रवेश करे वा नहीं। वह सोच में पड़ा, सभी की नजरें बचा, इधर-उधर को देख ही रहा था कि, इतने में वही चिर-परिचित मोटर अपनी विजय-दुदुंभी फूंकती तीर की तरह दर्वाजे से निकल पड़ी—निकल पड़ी मणि और उसके प्रेमी के बोझ से लदकर। नवीन ने उन दोनों सजीव मूर्त्तियों को देखा। मोटर निकल गई। उन दोनों ने नवीन को देखा वा नहीं—वे ही जानें, पर नवीन पर बिजली कौंध गई—बज्र गिर पड़ा। उसने पल मारते ही जो दृश्य देख पाया, उससे उसका अभिमान सजग हो उठा। आज वह भीख मांगने पर उतारू हो आया था। आज उसकी माँ मृत्यु की साँस गिन रही है; वह संक्षुब्ध हो उठा—विक्षुब्ध हो उठा। उसे आज का मनस्ताप इतना कठोर जान पड़ा कि वह अपने को संयत न कर सका। वह हाथ टेक कर वहीं जमीन पर बैठ गया। कुछ देर तक उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया। उसने अपने को शून्य पाया—निराश पाया, दुंनियाँ आँखों से ओझल हो गई। वह जड़ होकर वहीं, न जाने घंटों—जमीन थामकर पड़ा ही रह गया।

पर सहसा उसका ध्यान भङ्ग हुआ और उस समय भङ्ग हुआ—जब उसने अपने सामने दर्वान को यह कहते हुए सुना—'नवीन बाबू! आप इस तरह यहाँ क्यों बैठे हैं? चलकर दालान

में बैठिए—वह घड़ी भर में आ ही जायँगी। यह कोई बात है ?'

नवीन उसकी बातों से चमक उठा, पर उसने अपने को उतनी ही देर में सँभाल लिया। उसने घूमकर देखा—वह उसका परिचित दर्वान था। सँभल कर उठ खड़ा हुआ और अपने ओठों पर बल-पूर्वक मुस्किराहट लाकर बोल उठा—"यों ही बैठ गया था, भाई ! कहाँ गई हैं वे ?"

"कहाँ गई हैं कैसे कहें ? बाबू ! बड़े आदमियों की बात ठहरीं, हम ग़रीब कैसे जानें ? उन्हें तो आजकल मानो फ़ुर्सत ही नहीं रहती ! कैसे बताएँ कि वह कहाँ गई हैं ?"

नवीन को और कुछ जानने की इच्छा न हुई। दर्वान की भाव-भंगी से उसे जो कुछ विदित हो सका, वही उसके लिए बहुत था। उससे अधिक वह जानने को आज समर्थ न था। माँ घर पर मृत्यु की अंतिम साँस गिन रही है किन्तु वह रिक्तहस्त है। आज उसके पास यदि असंख्य धन रहता तो वह ठीकरों-जैसे उड़ा कर माँ को बचाने में लग जाता। पर, वह तो अकिंचन है—फूटी कौड़ी भी पास नहीं और न कोई सामान ही है कि वह भी आज उसके काम आए। वह मनस्ताप से बौखला उठा। उसने एक बार शून्य दृष्टि से मणि के रम्य महल की ओर देखा, और दूसरे ही क्षण वहाँ से चलता बना।

—सोलह—

नवीन वहाँ से चल पड़ा, पर कहाँ चल पड़ा—इसकी उसे जरा भी सुध न थी। पाँव आगे को बढ़ रहे थे, पर दिल उसका बैठा जा रहा था। उसे आज बड़ी ठेस लगी थी। जिस पर उसे नाज़ था, जिसे पाकर वह घड़ी-आध-घड़ी के लिए अपने दुःख को भुला सकता था, जिस पर उसकी आशा टिकी थी—उसमें इतना शीघ्र परिवर्त्तन देखकर उसे एक तरह का विराग-भाव उत्पन्न हो आया—बड़ी उदासीनता हुई। आज वह संभल कर उसके पास आया था और आया था उससे कुछ मांगने को! आज उसने अपनी माँ को मृत्यु-शय्या पर करवटें बदलते हुए देखा था और उसका विश्वास था, उसकी माँ घड़ी-आध-घड़ी की मेहमान बन रही है। इतने दिनों तक जिसका प्यार पाकर वह कुछ करने में समर्थ हो सका है, आज उसका जीवन-प्रदीप बुझने-

बुझने को है—उसका रस निःशेष हो गया है। नवीन की आँखों के आगे एक विस्तृत अंधकार दीख पड़ा। संसार उसके लिए सूना दीख रहा था। अब वह कहाँ जाय—क्या करे—किस तरह आज वह अपनी माँ को बचाने में समर्थ हो सकेगा—किस तरह वह माँ के प्यार का प्रतिदान दे सकेगा? यही एकमात्र उसकी चिंता का विषय था।

वह मन में सोच रहा था—दरिद्रता कितनी विषादपूर्ण होती है! और जीवन को वह किस तरह चूर-चूर कर डालती है! आह! बड़ी-बड़ी आशा-आकाँक्षाएँ, बढ़े हुए अरमान, हसरतें इसके सामने एक स्वप्न की चीज समझी जाती हैं! आह! यदि आज उसके पास और कोई साधन होता तो वह शक्ति भर माँ की सेवा में लग जाता। पर अब? अब? उफ़! दरिद्राणां मनोरथाः!

वह चलते-चलते एक जगह ठिठक-सा गया। आने-जानेवाले नियमित रूप से आ-जा रहे थे। एक के बाद दूसरी मोटर, बसें, दनादन राक्षस-जैसे लोगों को अपनी छाती पर बिठाये दौड़ी जा रही थीं। ट्रामें आतीं और जातीं। बोध होता था—सभी में प्राण हैं, पर नवीन आज निष्प्राण है—हाँ, नवीन में जीवन है, पर जीवन के प्राण उसके, न जाने, कब उड़ गए हैं! वह निर्जीव-सा, घायल-सा खड़ा-खड़ा देख रहा था। क्या देख रहा था—उसे इसका पता नहीं—ख्याल ही नहीं कि वह वहाँ क्या कर रहा है। उसने सब कुछ देखा—मानो उसने कुछ देखा ही नहीं। आज वह विषाद के अनंत कूल पर खड़ा था, जहाँ उसे केवल शून्यता, केवल व्यर्थता—

केवल निःसीम व्यर्थता ही दीख रही थी। उसने एक बार गहरी आह ली और दरवाजे पर जाकर चुपचाप बैठ गया।

संध्या का अंधकार घना हो आया और उसे दूर करने को विजली की बत्तियाँ जल उठीं। पर, उसके हृदय में जो अंधकार आज परिपूर्ण हो उठा था, उसे दूर करने की सामर्थ आज कहाँ?

नवीन वहाँ बैठकर, न जाने, कबतक, क्या-क्या सोचता रहा। फिर वह उठ पड़ा और जिस पथ से वह आया था, उसी ओर मुड़ चला। वह तेजी के साथ कदम बढ़ाए जा रहा था, मानो उसमें कोई नवीन उत्तेजना हो आई हो—मानो उसकी आकांक्षा सफल होने को छटपटा-सी उठी हो। वह आंधी-जैसा चल पड़ा था और तबतक वह उसी तरह चलता रहा जबतक वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच न गया। उसने दरवाजे पर आकर पुकारा—"व्रजेन्द्र!"

व्रजेंद्र बोल उठा—"कौन?—नवीन!"

वह घर से हँसते हुए निकल आया, उसने दरवाजे पर देखा—नवीन खड़ा है। वह उसे देखते ही बोल उठा— "ओहो! चलो-चलो भीतर! अरे, भाई! तुम भी अजीब जीव हो, पता नहीं कहाँ दबके पड़े रहते हो।"

नवीन ने मुँह पर एक सूखी हँसी लाने का उपक्रम किया अवश्य, पर वह उसमें समर्थ न हो सका। नवीन उसके साथ-साथ सीढ़ियों के रास्ते ऊपर गया पर वहाँ जाकर उसने जो कुछ देखा—उससे उसका दिल हिल उठा। उसे देखते ही उसकी चौकड़ी

भरनेवाले दोस्त ठहाका मार कर हँस पड़े और व्यंगात्मक स्वर में बोल उठे—"आओ चौकड़ी के सरदार ! तुम्हारे ही लिये तो आज यह महफिल बीरान सी नजर आती थी ! चहको मेरे बुलबुल !"

सभी ठहाका मार कर हँस पड़े। ब्रजेंद्र ने उसी हँसी के बीच नवीन को एक कुर्सी पर बलपूर्वक बिठाया और आप भी टेबुल के एक सिरे पर बैठ कर अपने तास संभाले।

ब्रजेंद्र की तास-पार्टी आज भरपूर जमी हुई थी। उसने अपने पत्ते नवीन के हाथ में रखते हुए कहा—"लो, देखो नवीन ! मैं अभी अभी चाय का सामान निकाले आता हूँ।"

"चाय का सामान!"—नवीन बोल उठा—"रहने दो भाई, मैं न खेल सकूँगा—संभालो अपने पत्ते !"

नवीन मन-ही-मन सोचने लगा—यहां आकर मैंने अच्छा नहीं किया। कैसे यहां से जान लेकर निकल भागूँ ? पर, तुरत भागना भी तो संभव नहीं है। उधर मेरी माँ दम ले रही होगी और मैं इधर आनंद-उपभोग की सामग्री संभालें बैठा हूँ।"

वह और कुछ अधिक सोचने भी न पाया था कि, इसी बीच उनमें से एक बोल उठा—"हाँ, नवीन ! संभालो, जरा जम कर खेला जाय। क्यों मुर्दनी जैसी सूरत बनाए बैठे हो ?"

"अरे ! इसकी क्या पूछते हो ! हमलोगों के बीच इसे तो यही सूरत पसंद आती है दूसरी जगह...............।"

बोलने वाले की बात भी पूरी न हुई थी कि तीसरा बोल उठा—"नहीं नहीं, भूलते हो तुम ! जिसे तुम मुर्दनी सूरत कहते हो वह

नहीं है—यह तो सच्ची भावुकता का चिह्न है । भावुक लोग कुछ होते हैं ऐसे ही। तुम्हें मालूम है, आजकल हमारा नवीन हमलोगों के लिए आदर्श हो रहा है। उस दिन व्रज ही तो बोल रहा था—उस भिखमंगिन..................!"

नवीन का चेहरा तमतमा उठा । वह जानता था, आलोचना की धारा जिस रूप में बढ़ने को है, वह आगे चलकर बड़ी वीभत्स पूर्ण—बड़ी भयावह होगी । क्या आज वह यही कुछ सुनने को यहां आया था ? क्या इसी से उसके मन में शांति होगी ?

"क्या भिखमंगिन ? बोलो बोलो !"—उनमें एक बोल उठा।

"रहने भी दो, क्यों एक भले आदमी को............?"—दूसरा दुष्टहँसी हँसकर बोला।

खेल तो रुक-सा ही गया पर आलोचना का रंग अवश्य कुछ जम गया । नवीन अपने को आज उस दल में पाकर खिन्न हो उठा—उसकी अशांति दूनी गति से बढ़ चली । और वह सोचने लगा—किस तरह आज यहां से वह परित्राण पाकर भाग निकलेगा ।

उसने अपने मन में विचार किया—इनलोगों की हँसी का जबाब देना बुद्धिमत्ता नहीं। पर, साथ ही उसके लिए यह भी असह्य था कि, कान खोलकर वह अपने अपमान की बातें सुनता रहे । उसके दिल में हुआ—क्यों न घर की ओर चला जाय । जिस प्रश्न को लेकर वह आया था, अब वह तो दूर रहा, उल्टे जलीकटी ही सुनने को मिली, पर कबतक वह इन वाहि-

यात बातों को सुनता रहता ? इसलिए वह पल भर के लिए मानो बौखला उठा; पर, तुरत ही अपने मन के भावों को बदलते हुए बोल उठा—"खैर, अभी तो मुझे और अधिक समय नहीं है जो मैं जवाब दूँ पर, मैं किसी दिन इसका जवाब दूँगा और अवश्य दूँगा। कहे रखता हूँ।"

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ और झपट कर दरवाजे के पास आया ही था कि, इतने में व्रजेंद्र चाय का सामान नौकर से लिवाते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसे यह जानते देर न लगी कि, अवश्य नवीन को कोई गहरी ठेस लगी है, इसलिए वह भागा जा रहा है। उसने नवीन का हाथ पकड़ कर कहा—"वाह! यह कैसी बात! चाय तैयार है, पी लो! एक तो तुम आते ही हो यहां बहुत कम और आज आए भी तो भागे जा रहे हो?"

इतने में मंडली में से एक समर्थन करते हुए बोल उठा—"हाँ, भई! चाय भी तो पी लो, यह भी कोई बात है कि, तुम हमलोगों का इसमें साथ तक न दे सको?"

नवीन की इच्छा हुई कि वह बोल दे—उसे ऐसी चौकड़ी में पल भर के लिए बैठना उपयुक्त नहीं, पर उसने यह कुछ सोच कर बोलना उचित नहीं समझा कि, यहां उसकी बातों का कोई मूल्य ही न होगा। फिर भी वह व्रजेंद्र से बोल उठा—"मुझे अवकाश नहीं है, व्रज! मैं तुम से इधर मिल न सका था, इसलिए मैं चला आया, तुम से भेंट हो गई—यही मेरे लिए कम प्रसन्नता की बात नहीं। अभी जी ठिकाने नहीं है—चाय मैं पी न सकूँगा, माफ करो!"

व्रजेंद्र ने देखा—अवश्य नवीन को कोई गहरा घाव है और वह घाव अभी-अभी ही इसे लगा है । उसे अपने आप पर ही रंज हो आया और उन लोगों पर भी वह कुछ कम क्रुद्ध नहीं हुआ। कारण था—वह जानता था कि, वे सब नवीन के प्रति एक बुरी धारणा रखते हैं। अवश्य उन लोगों से इसने ऐसी बातें सुनी हैं, जिन्हें सुन लेना इसके लिए असह्य हो उठा है। इसलिए, वह कुछ द्रवित होकर नवीन से बोल उठा—"यदि तुम चाय न पियोगे तो मुझे बड़ा दुःख होगा। क्या तुम इसे पसंद करोगे, नवीन ?"

नवीन ऐसी प्रकृति का व्यक्ति था कि, वह अपने आप पर दुःख का पहाड़ उठा ले सकता था, पर वह दूसरे को दुखी करना नहीं जानता था । नवीन यहां पर अवश्य तिरस्कृत हुआ था और तिरस्कार पाकर उसके लिए यह कठिन था कि उसके सहवास में चाय-पान करने में वह अपने को समर्थ करता, पर अनुरोध की रक्षा किए बिना उसके लिए कठिन हो उठा आगे की ओर पाँव बढ़ाना । वह क्षण भर के लिए वहां की परिस्थिति पर विचार करता रहा, अंत में वह बोल उठा—"जब ऐसी बात है तो लाओ चाय, मैं खड़े-खड़े उसे घूँट डालूँ। पर, मैं ठहरूँगा नहीं—और नहीं ठहरूँगा, इसलिए कि, मुझे तुरत घर जाना जरूरी है—केवल इसीलिए। लाओ, तुम्हारी बातें माने लेता हूँ ।"

व्रजेंद्र ने समझा—होगी कोई ऐसी बात, इसलिए इसे रोक रखना शायद उचित न होगा ।

और उसने एक प्याले में चाय तैयार की और उसकी ओर

प्याला बढ़ाते हुए कहा—"दो मिनट के लिए बैठ जाओ, नवीन! खड़े-खड़े क्या चाय पिओगे?"

नवीन ने प्याला हाथ में लिया। इसी समय उसे घर की याद हो आई। ओह! एक ओर तो उसकी मां दम तोड़ रही है, राधा भी न जाने क्या क्या उसके (नवीन के) बारे में सोच रही होगी—और इधर वह अपने मित्रों के साथ चाय पीने को वाध्य किया जा रहा है। उसके दिल में हुआ—प्याला यों ही टेबुल पर रख कर वह खड़ा हो जाय; पर यह भी क्या उसके लिए संभव था?

व्रजेंद्र के आने पर चौकड़ी में एक तरह का सन्नाटा-सा छा गया, पर वहाँ का वातावरण ही कुछ ऐसा विषाक्त दीख पड़ रहा था कि, नवीन को उस प्याले में चाय के बदले विष ही जान पड़ा। पर, आज अपने मित्र के हाथों विष पान करने पर तुला था और तुला था, इसलिए कि, व्रजेंद्र को उसके प्रति किसी तरह का दुःख न रह जाय।

नवीन के लिए वह कैसी विरुद्ध परिस्थिति थी! वाध्यता उसे किस तरह उससे प्रतिकूल कार्य करा रही थी! आह! वाध्यता!

हाँ, उसने वाध्य होकर ही चाय पी। पर, उस समय भी उसकी आँखों के सामने था—माँ मृत्यु-शय्या पर पड़ी मेरी अंतिम भेंट के लिए छटपटा रही है। पर नवीन?

नवीन ने साँस रोक कर चाय पी और उठ कर व्रज से अनुरोध के स्वर में कहा—"इजाजत दो भाई! किसी दिन सुभीते से आकर तुम से बातें करूँगा। अभी…………।"

नवीन वहाँ से चल पड़ा, व्रज से कुछ कहते न बना। नवीन ने सीढ़ियों से उतरते हुए सुना—जोर का अट्टहास! आह! कितना करुण—कितना वीभत्स होगा वह अट्टहास!

———

—सतरह—

नवीन के लिए आज मृत्यु भी उतनी कष्टदायक न होती जितना आज अंतिम अट्टहास उसके लिए कष्टदायक सिद्ध हुआ। उसने मणि के हाथों ही काफी चोट खा ली थी—वहीं वह बे-दम हो चुका था, जो भी आशा का क्षीण-प्रकाश शेष बच रहा था उसके हृदय में, उसका भी यहां अवसान हो गया—अपने साथ और भी अधिक कुछ लेकर। आज वह सभी की दृष्टि में अपदार्थ दीख पड़ा—नितांत ही नगण्य! अब वह नगण्य होकर, निःस्व होकर—सब कुछ खोकर—कहाँ जायगा? कहाँ उसे इच्छानुकूल साधन उपलब्ध होगा? किस तरह वह खाली हाथ, बिना कुछ प्राप्त किए, घर लौटेगा? माँ तो उधर अंतिम साँस ले रही होगी! आह! अंतिम साँस! पर, नवीन—भग्न हृदय नवीन—अभागा नवीन

रिक्त-हस्त है—निःसंबल है—निरुपाय है । निराशा—एक गंभीर निराशा—एक निःसीम निराशा—के सिवा उसके पास और क्या साधन होगा ?

हां, तो वह निराशा का गट्ठर सिर पर लाद कर घर की ओर चल पड़ा। पर, उसके पांव आगे को बढ़ते ही न थे। उसका दिल बैठ गया था, साहस उससे कोसों दूर निकल गया था, धीरज की नस-नस ढीली पड़ी थी। किस तरह वह अपने को संभाले चलता ? फिर भी वह चल रहा था—विक्षिप्त की तरह—पंखहीन पक्षी की तरह—अपने नीड़ में।

खैर, किसी तरह वह अपने घर के पास आ पहुँचा। दम तोड़े हुए, शून्य दृष्टि से अपने मकान की ओर देखा—अंधेरे में उसकी छाया कराल यमराज-सी उसकी ओर अट्टहास कर रही है। उसे भय हुआ, रोम-रोम सिहर उठे ! ललाट पर पसीना निकल आया और कुछ काल के लिए उसे बोध हुआ—मानो उसकी साँस रुक-सी गई हो। वह जरा ठिठका, जरा डरा—पर, माता की दर्शनोत्कंठा उसे पल भर के लिए सचेत कर गई। और वह उत्तेजित होकर जोर से घर की ओर दौड़ पड़ा।

वह पलमात्र के लिए भी कहीं न रुका, सीधे माँ के कमरे के दरवाजे पर ही आकर रुका। दरवाजा खुला ही था, उसकी दृष्टि सीधे ही मां की आकृति पर पड़ी। राधा वहीं उसके सिरहाने बैठी थी। उसने जैसे ही धम-से किसी के आने का शब्द सुना कि, मुड़ कर देखा—सामने नवीन खड़ा है।

उसे देखते ही वह रो उठी। नवीन का हृदय धक् से हो उठा। उसने बढ़कर देखा—मां शांत भाव से बिछावन पर पड़ी है।

राधा जोर से रो उठी। नवीन क्षण भर के लिए भौंचक्का-सा अटल अचल-सा, ठिठका खड़ा रहा। उसके सामने मानो पृथ्वी घूम रही थी। उसकी दृष्टि में संसार सूना-सा दीख रहा था। उसने अपने आपको ऐसा अनुमान किया मानो सारी व्यर्थताएँ उसके सामने नग्न रूप में खड़ी हैं। इसके पहले उसने मृत्यु का दृश्य कभी नहीं देखा था। आज उसने अनुभव किया—मृत्यु क्या वस्तु है! जिस महानिद्रा में उसकी मां सोई पड़ी है, क्या अच्छा हो यदि वह कुछ देर के लिये सचेत हो उठे! पर क्या यह कभी संभव है? उफ! यदि ऐसा कहीं संभव होता!

पर, नवीन ने उन्हीं व्यर्थताओं के बीच एक निगूढ़ सत्य का अनुभव किया – उसके आँसू मानो सूख से गए और स्नेह गद्गद स्वर में बोल उठा—"मां की अंतिम साध पूरी मैं न कर सका, राधा! नगण्य होकर आज उनकी सेवा तक मुझ से न हो सकी। मां! मां! आखिर किस तरह माँ ने मेरे लिए घुल-घुल कर जान दे दी! राधा! आज यदि तू न होती तो न जाने मां को पानी तक पीने को न मिलता। राधा! राधा!—मैं तुम्हारा—जानती हो, मैं तुम्हारा कितना कृतज्ञ हूँ? तुम्हारी ही मां थी—जन्म से नहीं—कर्म से विशेष हाथ था। मैं उनका जन्म से पुत्र अवश्य था, पर कर्त्तव्य से मैं उनका क्या कुछ उपकार-साधन कर सका?"

नवीन की बातें सुनकर राधा कुछ क्षण के लिए शांत हुई।

उसने समझा—नवीन को मां की मृत्यु का काफी दुःख है, इसलिए उससे कहा—"आपका क्या दोष ? आप तो अपनी शक्ति भर इनकी देखभाल करते रहे, इसके सिवा आदमी और कर ही क्या सकता है ? फिर जो अपने वश की बात नहीं, उसके लिए चिंता करना ही बेकार है। अब अपने मन को शांत कीजिए, और जैसे हो, इनका आखरी संस्कार कर डालिए।"

नवीन ने राधा की सारी बातें सुनीं, अवश्य उसे इन वचनों से सांत्वना मिली। उसने अपने को संभाला—कुछ धीरज भी हुआ उसके सामने आज का संपूर्ण दृश्य एक बार उसकी आँखों के सामने नाच उठा। और इसी तारतम्य में उसे उस पाकेटमार—ललित की उस दिन की बात याद आ गई जिस दिन वह उसके रुपए लौटाने को आया था। आज उसे ठीक-ठीक अनुभव हुआ—गाढ़े दिन में मनुष्य अपनी प्राण रक्षा के लिए कितना अधम-से-अधम कार्य—जिसे वह स्वयं गर्हित समझ रहा है, करने को उतर आता है। आज की घटना से ललित के प्रति उसे हृदय से सहानुभूति हो आई। इसी सिलसिले में आज जो उसे मणि और व्रजेंद्र के दरवाजे खटखटाने के लिए भी वाध्य होना पड़ा था, याद हो आया कि, वह ललित से कुछ कम गर्हित कार्य करने को सन्नद्ध न था। वैसे समय में यदि उससे बन पड़ता तो वैसा करने को भी वह आगा पीछा न सोचता, पर, दुःख की बात है कि, जरा सी ठोकर खाकर—केवल निराशा का संबल बाँध कर ही वह वापस लौट आने को वाध्य हुआ। उसकी मां बची ही नहीं—यही उसके लिए

अनुताप की बात हुई। उसे यह भी स्मरण हुआ—व्रजेंद्र को, जिसे वह हृदय से अभिन्न हृदय समझते आ रहा था, आखिर हो क्या गया था जिसने इतना भी नहीं पूछा कि, 'भाई, आज कौन-सी ऐसी जरूरत है जिससे तुम तुरत घर की ओर वापस लौटने को उतारू हो पड़े ? आखिर, उसे इतना तो जरूर पूछना चाहिए था कि, वह क्यों घबरा कर जल्द भाग निकलने को तैयार हो रहा है ? खैर, रुपए पैसे की बात तो दूर रही। वह बड़ी देर तक इन सब बातों को लेकर सोचता रहा, अंत में सोच कर वह इस परिणाम पर आ पहुंचा कि, संसार की सहानुभूति अपने आप के लिए ही हुआ करती है। इससे न कुछ ज्यादा और न कुछ कम। तो क्या संसार स्वार्थमय है ?

इतने ही में नवीन की विचार-धारा अब दूसरी ओर को मुड़ पड़ी। उसके सामने मां का शव पड़ा हुआ था। उसे एक ऐसी विराग-भावना उत्पन्न हुई कि, क्षण भर के लिए वह सांसारिक क्षेत्र से परे जा पहुंचा जहाँ शांति का अटल साम्राज्य है और जहाँ के लिए अंतरात्मा शुद्धांतःकरण से नित्य किसी-न-किसी समय छटपटा उठती है।

नवीन बड़ी देर तक जड़वत्, न जाने क्या सोचता रहा। बोध हो रहा था—वह गंभीर चिंता में इतना निमग्न है कि उसे अपने आप की सुध-बुध नहीं है। वह आगे कब तक इस तरह पड़ा रहता, पर सहसा राधा ने उसकी चिंता भंग कर दी। वह बोल उठी—"आप पुरुष हैं, पुरुष धीरज न धरेगा तो कौन धरेगा ?

विपत्ति आने पर धीरज खो देने से काम नहीं चलता। ऐसे समय में तो दूने साहस से काम लेना चाहिए। आप तो खुद पढ़े लिखे व्यक्ति हैं। आप संसार को जानते हैं, आपको मैं छोटी मुंह बड़ी बात और क्या कहूँ ? नवीन बाबू ! मां के लिए चिंता की ऐसी कौन बात है ? किसके मां-बाप जीवन भर साथ दिया करते हैं ? फिर इसके लिए चिंता ही क्या ? इनकी तो ऐसी उमर ही थी; आज न सही कल—उन्हें जाना ही पड़ता। फिर आप ही कहिए—आपका इस तरह से घबरा उठना क्या उचित होगा ?"

नवीन को राधा की तथ्यपूर्ण बातें सुन कर बड़ी सांत्वना मिली। वह सोचने लगा—राधा कितनी बुद्धिमती है ! एक सामान्य बालिका होने पर भी इसने जो कुछ कहा है—उचित ही कहा है। कितनी इसकी ममता है मुझ पर ! आज मेरे लिए इसके सिवा और कौन है जो मुझे इस तरह से धीरज बँधाता ?

उसके दिल में हुआ—क्यों न खुल कर राधा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करे ? पर, उससे ऐसा न बन पड़ा। फिर भी उसके लिए अब चुपचाप पड़े रहना कठिन हो उठा, इसलिए उसे राधा से कहना ही पड़ा—"अब मैं घबरा कर करूँगा ही क्या राधा ! मुझे इनकी मृत्यु का उतना खेद तो है नहीं, पर दुःख है कि, मैं मां की सेवा के लिए कुछ भी न कर सका। तुम मेरी अवस्था जानती हो और तुमसे छिपा ही क्या है ? मैंने पढ़ना भर ही जाना—इससे अधिक और कुछ भी नहीं। संसार चलाना तो मेरे लिए एक कठिन समस्या है। मुझे विश्वास था कि, मैं

कुछ रुपयों का जुगाड़ कर मां को भर सक बचाने का प्रयत्न करूँगा। इसके लिए मुझे जहाँ न जाना चाहिए—वहाँ गया; पर हर जगह मुझे निराशा ही निराशा मिली। अब दूसरी समस्या सामने है। शव-संस्कार तो करना ही पड़ेगा। पर, अकेला क्या इसे श्मशान-भूमि तक मैं ले जा सकूँगा ?"

"अकेला क्यों, मैं भी तो हूँ! क्या दोनों जने मिल कर इसे वहाँ तक नहीं पहुंचा सकते ? आप क्या कह रहे हैं ?"

अंतिम वाक्य राधा ने बड़ी दृढ़ता के साथ कही, फलतः नवीन की चिंता कुछ काल के लिए जाती रही। उसने अपने को अच्छी तरह संभाला। फिर भी उसे रह-रह कर इस बात का बड़ा खेद हो रहा था कि, आज उसकी मां के अंतिम संस्कार में केवल राधा के सिवा और कोई साथ नहीं दे रहा है। उसका ध्यान एक बार अपनी मित्र-मंडली की ओर भी आकृष्ट हुआ सही, पर वह तुरत का घाव खाकर अपने विचार पर दृढ़ न रह सका। उसने फिर से किसी की सहानुभूति अपने मत्थे पर आने देना उपयुक्त न समझा। वह बड़ी देर तक मन-ही-मन इन सब बातों को लेकर सोचता रहा, अंत में, न जाने क्या सोच कर राधा से बोल पड़ा—"राधा! मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ, तुमने मेरी विपत्ति में जिस तरह अपना हाथ बँटाया, वैसा बहुत कम आदमी करने में समर्थ हो सकता है। बंधुओं की खास परीक्षा ऐसे-ऐसे अवसरों पर ही होती है और मैं कह सकता हूँ कि, तुम उस जाँच में पूरी पूरी सफल उतरीं। पर, मुझे खेद है कि, मैं आज ऐसी अवस्था में आ

पहुंचा हूँ कि, मां का अग्नि-संस्कार भी यथाविधि नहीं कर सकता।"

बोलते-बोलते नवीन की आँखों से आँसू फूट निकले। राधा ने नवीन को रोते हुए कभी भी अपनी आँखों से न देखा था। आज उसे रोते देख कर राधा भी अपने को न रोक सकी, वह भी फूट-फूट कर रो पड़ी। बड़ी देर तक, बोध होता था—करुणा की धारा वहाँ वह निकली हो। अंत में नवीन ने अपने को सँभाला, राधा को भी सांत्वना दी और दोनों मिल कर शव-संस्कार करने को बाहर की ओर चल पड़े।

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि किस तरह नवीन अपनी पूजनीया माता का अग्नि-संस्कार करने में समर्थ हो सका। गरीबी कितनी बुरी बला है! कैसा अभिशाप है भगवान का वह! हाय रे नवीन! हाय री दीनते!

रात बीती और प्रातःकाल सुनहली किरणों के साथ बाल सूर्य का आगमन हुआ। लोगों में स्फूर्ति की रेखा प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगी। पर, नवीन का घर आज सूना दीख रहा था और उससे भी अधिक सूना दीख रहा था उसका हृदय जहाँ न कुछ हलचल थी और न स्फूर्त्ति! अवश्य राधा नित्य नियमानुसार घर को लीपने-पोतने में लगी थी। बोध होता था—मानो वहाँ कुछ हुआ ही नहीं है!

—अठारह—

प्राणि-मात्र में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि, वह अकेला रहना पसंद नहीं करता—कोई करता भी हो, पर वह अपवाद ही कहा जायगा। ठीक यही बात मनुष्यों में भी पाई जाती है। भले ही इस पर कोई सोचे वा नहीं पर, वह रहेगा अवश्य अपना दल बना कर ही। अकेले रहना कभी संभव नहीं और प्रकृति भी ऐसा करने को उसे कभी आज्ञा न देगी। खास कर, मनुष्य की प्रकृति ही कुछ ऐसी होती है कि, वह अपना सुख-दुःख दूसरों के सामने रखने को छटपटाता-सा रहता है, उसी तरह दूसरों के सुख-दुःख को सुनने के लिए भी वह अधीर-सा रहता है। कथा-साहित्य का सूत्रपात इन्हीं कुछ कारणों के आधार पर हुआ है। कहानियां इसीलिए मानव-हृदय में अपना एक स्थान रखती हैं कि उनसे

उनका परितोष होता है और इसी परितोष-प्राप्ति की कामना लेकर मनुष्य अपने लिए ऐसे साथी वा ऐसे दल में रहना पसंद करता है जहाँ उसे पारस्परिक कुछ सुनने की—कुछ सुनाने की कामना सफल होती है। मानव-जीवन में यदि सुनने-सुनाने की भावना विदित न होती तो उसका रस सूख-सा जाता। उसमें न तो ताज़गी ही रहती और न कोई काम्य प्रवृत्ति ही। इसीलिए उसे घड़ी भर के लिए भी निःसंग रहना पसंद नहीं। भले ही उसका संगी उसके अनुकूल न हो, फिर भी जीवन में साथियों की आवश्यकता पड़ती है और इसके विना उसका मानो काम ही चलने का नहीं।

मणि के सम्बन्ध में बहुत कुछ यही नियम लागू हो सकता है, और इसके लिए कोई मणि को दोषी करार नहीं दे सकता। उसे जब यह अनुभव अच्छी तरह हो गया कि, नवीन उसकी ओर से अन्यमनस्क हो उठा है—पहले-जैसा आता जाता नहीं—चाहे नवीन इधर अपने कामों में अच्छी तरह जुटा हुआ ही क्यों हो, मणि के लिए यह कठिन हो चला कि, अकेली वह अपने आपको लेती चले। अवश्य उसने यह प्रयत्न भी किया हो, पर, कब तक वह अपने आपको अकेली इस तरह ले जा सकती थी? वैसे समय में, एक युवक अपनी कामना और अभिलाषाओं की डाली लेकर उसके दरवाजे पर आ धमका। मणि ने उसे देखा और उसका शून्य हृदय अपनी पूर्त्ति के लिये मानो अधीर हो उठा। उसने अपने रिक्त हृदय को भरना चाहा—उसे भरा देखना चाहा। इसलिए मणि ने उसका स्वागत किया।

दोनों की भावनाएँ एक ही स्थान पर आकर केंद्रीभूत हुईं। फिर क्या था? दोनों एक ही दिशा को चल पड़े। मणि ने आगा पीछा कुछ भी न सोचा। वह तो अपने को भरना चाहती थी। उसे अवकाश कहां कि वह पीछे बढ़कर देख भी सके?

किसी-किसी का कहना है कि नारी-हृदय विशृंखलताओं का पुंज है। वह नित्य नवीनता को पसंद करती है और यही कारण है कि, वह अपने को शृंखला में बद्ध रखना नहीं चाहती। मणि के लिए यहाँ यही बात कही जा सकती है। मणि को उस युवक के संसर्ग में आजाने के बाद भी नवीन से कई बार भेंट हुई है और जब-जब भेंट हुई है, तब तब उसकी भावनाएँ उसे पाने को अवश्य उसकी ओर लपकी हैं, पर उस समय स्त्रियोचित लज्जा वा संकोच के कारण उससे ऐसा न बन पड़ा कि, वह नवीन को अपने हृदय का परिचय दे सके। आखिर, अपनी इच्छा के अनुकूल वा प्रतिकूल—जो कुछ भी कहा जाय—उसे बह जाना पड़ा और इसके लिए वह स्वतंत्र थी।

युवक का नाम था—किशोर। एक धनी—संपन्न घराने का सुन्दर—फैशनेबल युवक और जो कुछ कहा जाय सब कुछ ऐसा वह था। उसकी दृष्टि बहुत दिन पहले मणि पर गड़ी थी, पर अवसर बहुत पीछे हाथ लगा जब नवीन उसकी दृष्टि-पथ से उतर चुका था।

शान-शौकत की गोद में पले हुए किशोर को मणि के अंतःपुर में अपना राज्य स्थापित करना था—अपने बल पर ही

नहीं; बल्कि अपनी अगाध संपत्ति के बल पर—अपने लकदक के बल पर—अपनी ठाठ-बाट के बल पर ! अवश्य मणि भी उस ओर आकृष्ट होती गई और उसका आकृष्ट होना ही स्वाभाविक था। क्योंकि, उसका संपत्ति की गोद में पालन हुआ था, ठाठ-बाट ही उसकी भोग्य वस्तु थी और तरुण हृदय में जो कुछ कामनाएँ रह सकती हैं--मणि को भी वे अवश्य होंगी और उनकी पूर्त्ति का इससे बढ़कर और साधन ही क्या हो सकता था ?

किशोर और मणि का संसर्ग—दो तरुण हृदयों का संसर्ग था, जहाँ यौवन की आकाक्षांएँ थीं—दीवानापन था और उसके सामने था वासनाओं का रंगीन इंद्रजाल। दोनों बेसुध थे—विभोर थे—दोनों की आकाक्षांएँ छटपटा रही थीं और उसकी पूर्त्ति के लिए अधीरता पूर्वक उस अवसर की प्रतीक्षा हो रही थी जिसे लोग कहते हैं—प्रणय का मंगल प्रभात !

मणि विभोर थी—किशोर विभोर था और विभोर था शारदीया रजनी का निशीथ—वह चाँद—वह वातावरण ! बोध होता था—इन दोनों के जीवन में न तो कभी निदाघ का ही दर्शन होगा, न प्रलयंकर सूर्य का ही उदय—वहाँ रहेगी सदैव वह चाँदनी रात—वह विहँसता चाँद और वह खुली छत ! और जो कुछ कहिए सो।

मणि यौवन-नद की बाढ़ में तेजी के साथ बह चली—किशोर उसे सहारा दिये आप भी बढ़ चला। बोध होता था—वह धारा निःसीम है—अनंत है। उसकी सीमा पर हैं बस, मणि और किशोर !

मणि के जीवन में किशोर का आगमन बहुत उपयुक्त समय पर हुआ था। संभवतः मणि ऐसे अवसर की प्रतीक्षा कर रही हो, अन्यथा नवीन के संसर्ग में रहते हुए उसके जीवन के लंबे दिन निकल गए थे; पर किशोर के साथ, इन्हीं कुछ दिनों में, जैसी मित्रता बँध गई, वह अवश्य पूर्व जन्म का ही संबंध कहा जायगा—कुछ आज का नहीं।

किशोर—यथासंभव उसे अपनाने को, ऐसा कोई भी साधन न था, जिसे काम में न लाया हो और कदाचित् ऐसे अवसर पर कोई कंजूसी से काम भी न लेता है; बल्कि ऐसा अवश्य देखने को मिलता है कि, प्रणयी की प्रेम-भिक्षा के लिए कंजूस भी, अपनी बड़ी-से-बड़ी वस्तु, प्यारी-से-प्यारी वस्तु, उसकी नेक-नज़र करता है। फिर किशोर तो वैसा है नहीं—वह सब कुछ दे सकता है—सब कुछ लुटा सकता है—सब कुछ न्यौछावर कर सकता है उसके बदले में, जिसे वह पाने को इतना आतुर हो उठा है। और यही कारण था कि, मणि और किशोर दोनों एक प्राण के दो विभिन्न रूप हैं—इससे अधिक और कुछ नहीं।

एक दिन आनंद के उन्माद में किशोर से न रहा गया—वह बोल उठा—"क्या अच्छा होता मणि! यदि हमलोगों के पंख होते!"

"तो क्या होता!"—मणि के ओठ हिल कर रह गए।

"वह देखो—जिस तरह वह सारस का जोड़ा आकाशमार्ग से अनंत की ओर उड़ा जा रहा है, वैसे ही हमलोग भी उड़ते!"

"और इस तरह उड़कर ही क्या करते ?"—भोली मणि का यह भोला-सा प्रश्न था ।

"ओह ! उड़कर ? उड़कर ?"—मणि, तुम कितनी नादान हो ! उड़कर हमलोग ऐसी जगह में निवास करते, जहाँ मेरे और तुम्हारे सिवा और कोई नहीं होता । तुम होतीं !—मैं होता ! सिर्फ मैं और तुम !"

मणि न जाने क्षण भर क्या सोचती रही, उसके बाद वह ठहाका मारकर हँस पड़ी । किशोर उसके हँसते हुए मुख-मंडल को बड़े तृषित नेत्रों से निहारने लगा ।

किशोर को मणि का विहँसता हुआ मुख-मंडल अवश्य अधिक आकर्षक जान पड़ा, पर वह सोच रहा था—मणि इतनी जोर हँसी क्यों ? आखिर उससे रहा न गया, वह बोल उठा—

"कह सकती हो मणि ! तुम इतनी जोर से हँसी क्यों ?"

"यदि न कहूँ तो ?"

"वाह ! यह कैसी बात ?"

"ऐसी ही !"—मणि फिर से—ऐसा कह कर—हँस पड़ी ।

इस बार किशोर को और भी संदेह हुआ । उसने समझा, मणि उसकी बातों को अवज्ञा की दृष्टि से सुन रही है ।

इस बार किशोर का मुख-मंडल उदास हो उठा, वह कुछ क्षण तक उसी तरह उदास ही रहा, पर मणि इस बार, उसे देख कर सचेत हुई । उसने समझा—उसी की हँसी के कारण कदाचित् वह उदास हो गया इसलिए वह परिस्थिति को संभालती हुई बोल

उठी—"किशोर, मैं नहीं समझ सकी कि, तुम्हारे कहने का मतलब क्या था ? मैं तो यह कहना चाहती थी कि, वह सारस का जोड़ा हमलोगों से अधिक प्रसन्न न होगा, फिर तुम उसी पर बार-बार जोर दे रहे थे। क्या मैं अनुचित सोच रही थी ? तुम्हीं कहो—हमलोगों के आनंद के सामने........!"

इस बार किशोर के ओठों पर हँसी आ ही गई, वह जरा झेंपा भी और इसलिए कि, मणि के हृदय को वह पहचानने में भूल कर गया।

"नहीं मणि ! सो बात नहीं है। मेरा मतलब यह था कि, हमलोग कुछ दिनों के लिए यहाँ से अन्यत्र उड़ चलते। यहाँ एक बंधन है............!"—किशोर बोल उठा।

"बंधन तो अवश्य है और उससे मैं मुक्त भी तो नहीं हो सकती। आप जानते हैं, मां की आज्ञा पाये विना....।" मणि का सिर आप-ही-आप झुक गया।

"कोई बात नहीं—कोई बात नहीं। इसलिए तुम घबरा उठीं ! यह काम मेरे सुपुर्द रहने दो। तुम इतना ही कहो—चलोगी न ?"

मणि जरा रुक कर सोचती रही, पर तुरत ही उसने सिर उठाया और उसकी ओर देखते हुए पूछ डाला—"कहाँ जाया चाहते हो ?"

"जहाँ चाहो; पर मैं तो कहूँगा पुरी ही चलो। बड़ा ही रमणीक स्थान है—समुद्र के किनारे की सुंदरता का क्या पूछना ? वहाँ की प्रकृति का नग्न सौंदर्य देख कर कौन ऐसा होगा जिसका हृदय आनंद के उन्माद से भर न जावेगा ? कहो, क्या कहती हो ?"

मणि कुछ देर तक न जाने क्या सोचती रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—"अच्छा, वही रहे; पर, मां की अनुमति दिलाने का भार रहा तुम्हीं पर—समझे ?"

"हाँ, समझा—वे अवश्य अपनी अनुमति देंगी। मैं तो उनसे यह भी अनुरोध करूँगा कि, वह भी चलें। बड़ी प्रसन्नता होगी। तुम अभी उसकी कल्पना तक नहीं कर सकती, मणि! पर तुम देखोगी तो तुम्हें मेरे कथन का यथार्थ परिचय मिल जायगा।"

मणि और कुछ न बोल सकी। आज न जाने क्यों वह किशोर के साथ इतनी तन्मयता पूर्वक न बोल पाई जैसी उसके साथ तन्मयता थी। अंत में दोनों साथ-साथ वहाँ से घर की ओर पैदल ही चल पड़े। दोनों पार्क में टहलने आए थे।

यहाँ यह कहना शायद अनुपयुक्त न होगा कि, मणि, अबतक अपने को उसके संसर्ग में आकर भी छोड़ नहीं बैठती जो उसके लिए कष्टकर हो उठेगा; पर, किशोर इसी को उसमें नहीं देखना चाहता। वह चाहता कि, मणि अपना पर्दा हटा कर प्रेम करे—प्यार दिखलाए—और जिसके लिए वह पागल हो उठा था। वह अबतक मणि को समझ कर भी समझने में समर्थ न हो सका था। फिर भी आज उसने एक नवीन प्रस्ताव उसके सामने रख ही दिया। संभव हो, यह प्रस्ताव उसे अपने लक्ष्य पर पहुँचा सके।

मणि ठीक उस मछली के समान थी जिसके सामने चारा डाल दिया गया हो, पर वह वंशी में फँसने के डर से भयभीत भी होती हो—और फिर उसे पाने के लिए ललचा भी उठती हो। पर

आखेट-प्रिय मछुआ अपने लक्ष्य पर सावधानी से आ जुटा है। वह उस परिस्थिति की प्रतीक्षा कर रहा है कि जैसे ही वह जरा सी लालच में आ, चारा धरने को समर्थ होगी—वैसे ही वह उसे लेकर भाग खड़ा होगा।

ठीक इसी तरह किशोर ने अपनी वंशी में नया चारा डाला था। पुरी की यात्रा इसी की द्योतक थी।

———

—उन्नीस—

नवीन को माँ की मृत्यु से जो एक प्रकार की बेचैनी थी—वह धीरे धीरे शांत होती गई। पर, दरिद्रता का अभिशाप अबतक उसके जीवन में ऐसी अमिट छाप डाल चुका था जिसे वह शीघ्र मिटा न सका—मिटाने में कृतकार्य न हो सका।

रह रह कर नवीन के हृदय में माता की मृत्यु की गहरी चोट पड़ती। उसकी कसक, उसकी वेदना, उसका वियोग नवीन को कुछ काल के लिए अस्थिर कर छोड़ता। वैसे समय में नवीन के लिये न तो कोई काम ही अच्छा लगता और न वह घर से कहीं बाहर ही निकलता। उसके लिए बाहर निकलना एक प्रकार से कठिन हो चला। पर, उसके लिए यह भी तो कठिन ही था क्योंकि, बिना किसी काम को अपनाए, अपनी घर गिरस्ती भी तो नहीं चल सकती थी। आखिर—पेट की ज्वाला..................!

हाँ, वह पेट की ज्वाला बहुत बुरी तरह से अनुभव करता और यह ज्वाला इतनी कठोर थी कि, वह अपने को संयमित न कर सकता; यहाँ तक कि, कभी-कभी तो उसकी इच्छा हो जाती कि क्यों न चल कर वह मणि से अपनी सारी बातें खुल कर कह दे—कह दे कि, वह तीन दिनों से निराहार है ! वैसे समय में मणि अवश्य उसकी सहायता करने को तुल पड़ेगी। पर, भावुक हृदय नवीन यह सोच कर, कि, उसकी कृतज्ञता का बोझ संवहन करना उसके लिए मृत्यु से भी बढ़कर कष्टदायक होगा—चुप साधे पड़ा रह जाता और इस बात को, मन पर पूरा जोर देकर, भुलाने का प्रयत्न करता। वैसे समय में उसका दीर्घ निःश्वास निकलकर शून्य वातावरण को और भी गंभीर कर छोड़ता।

आज उसके अनटन का तीसरा दिन था। उसने छिपकर लोगों की आंखें बचा, नौकरी की धुन में, न जाने कितनी गलियों की राख छानी, पर किसी ने उसके सूखे—विक्षिप्त चेहरे की ओर आँख उठा कर देखना तक गवारा न किया--नौकरी देने की तो बात ही दूर रही ! वह थका-माँदा बिछावन पर आकर चारखाने चित्त पड़ गया पर, उसके हृदय में एक छिपी हुई वेदना कराह रही थी और वह वेदना थी—एकमात्र राधा के लिये ! तीन दिनों की भूखी राधा मन में न जाने क्या क्या सोचती होगी ? कितना उसे मानसिक कष्ट होगा ? हरे ! हरे ! आज सूखी रोटी का एक टुकड़ा भी उसे नसीब नहीं ! उससे शांत होकर लेटे न रहा गया। उसने छिप कर, पांव दबाए राधा के कमरे में आकर देखा—राधा

निर्जीव-सी जमीन पर पड़ी है—बिलकुल शांत, मानो साँस तक न सुनाई पड़ रही हो। नवीन से वहां का दृश्य न देखा गया।

वह पांव दबाए, जैसे गया था, वैसे ही बाहर आया। कमरे में टिमटिमाती लैंप जल रही थी जिससे कमरे में एक अजीब उदासीनता छाई थी। इसी समय उससे एक गलती हो गई; जान बूझ कर नहीं—अनजान में ही। चौखट पर उसके पांव टकरा गए और किवाड़ पर एक जोर की ठेस लगी। वह ठोकर खाकर वहीं कुछ क्षण तक ठिठका-सा खड़ा रह गया। उसी समय राधा भी चौंक पड़ी। उसने भयभीत दृष्टि से बाहर की ओर देखा—"आह! कौन? नवीन बाबू!"——राधा निर्जीव शब्दों में बोल उठी।

"हाँ, मैं ही हूँ राधा!"—मुर्झायी सी आवाज में नवीन ने कहा।

"उफ्! चोट तो न लगी? कब आए?"

"अभी-अभी आया हूँ, राधा! चोट तो नहीं लगी, हाँ, इससे तुम्हारी शांति अलबत्ता भंग हुई।"

"जरूर चोट लगी होगी, नवीन बाबू!"—राधा उसके निकट आकर, पैर पकड़ कर दबाने लगी।

नवीन ने पांव उसकी ओर से खींच लिया और बोल उठा—"राधा, यह क्या कर रही हो? मुझे मुतलक़ चोट नहीं लगी। छोड़ दो पांव!"

राधा ने पांव छोड़ दिया और वहीं नवीन के सामने ही जड़वत् खड़ी रही।

नवीन कमरे से बाहर आया। बाहर अंधकार का अखंड साम्राज्य था सही, पर चाँद पश्चिम की ओर निकल रहा था जिसकी चांदनी का क्षीण प्रकाश बरामदे पर आकर उसे सात्वना बंधा रहा था। नवीन बाहर निकल, बरामदे पर आ, चांद को अपलक दृष्टि से निहारने लगा।

राधा भी बाहर निकल आई। चांदनी के क्षीण प्रकाश में नवीन ने राधा के मुंह की ओर देखा और राधा ने भी उसकी ओर। दोनों की आँखें टकरा गई, राधा ने सिर झुका लिया और दबी जबान से वह उसकी ओर देखती हुई बोल उठी—"रात कितनी हुई होगी?"

"रात? अधिक तो नहीं, यही ग्यारह—बारह के बीच होगी!" —नवीन के मुँह पर आतुरता नाच उठी।

राधा चिंता में पड़ गई। इतनी रात बिता कर नवीन कहाँ कहाँ से लौटे हैं? आह! कितना कष्ट! उससे न रहा गया। वह थरथराती आवाज में बोल उठी—"बोध होता है, नौकरी का जुगाड़ लगा नहीं। हाँ, नवीन बाबू! कुछ उम्मीद है?"

नवीन को जोर का आघात लगा। वह ठीक ठीक कहे तो क्या? आज तो सारा दिन उसे न जाने कितने भले मानसों की दुलत्तियां सहनी पड़ी थीं—यदि यही बात उसे कह दी जाय तो परिणाम? परिणाम?

वह कुछ क्षण तक चिंता में पड़ गया। क्या कहे वह राधा को? राधा तो आज जान कर ही दम लेगी। आखिर, अनटन देखना कबतक वह पसंद कर सकेगी?

नवीन कुछ देर तक भावावेश में पड़ा रहा, फिर वह अचानक बोल उठा—"नौकरी इतनी आसान नहीं है, राधा! फिर भी मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा है, कल कहीं न कहीं कोई बंदोवस्त हो ही जायगा। चिंता की बात नहीं।"

यों तो नवीन कहने को कह गया—'चिंता की कोई बात नहीं'—पर, वह सोचने लगा—शायद उससे यह असंगत बात कही गई हो। इसलिए, वह जरा अपने मुंह पर हँसी की क्षीण रेखा खींचते हुए बोल उठा—"जीवन में ऐसा भी समय आता है, राधा! इसके लिए हम लोगों को इतना निराश न होना चाहिए। मनुष्य परिस्थिति का गुलाम होता है, पर विजयी वही कहलाता है जो अपनी परिस्थिति को सदा अपने साथ लिये फिरता है। घबराहट अवश्य उसके मार्ग में काँटा बिछा जाती है, पर, ऐसी अवस्था में भी अपनी उपस्थित बुद्धि से ही उसे काम लेना पड़ता है। और यही आशा मैं तुमसे भी रखता हूँ।"

नवीन इतना कह कर चुप हो गया। राधा अपने मन-ही-मन न जाने क्या सोचती रही। वह नवीन के विचारों को या तो वह समझ ही न सकी या उसने कुछ कहना उचित ही नहीं समझा। उसकी दृष्टि चाँद के निखरे सौंदर्य पर पड़ रही थी। वह उसी दृष्टि से उसकी ओर ताकती रही। नवीन भी चुप था, मानो वह किसी जटिल समस्या के सुलझाने में अबतक पड़ा हो।

कुछ देर तक दोनों ही नीरव रहे। पर, इस तरह पड़े रहना नवीन को अच्छा न जँचा। इसलिये वह बोल उठा—

"अच्छा राधा ! इन बातों को लेकर चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। जानता हूँ, तुम्हें मेरे विषय में सोच कर बड़ा कष्ट हो रहा है। तुम बड़ी भावुक हो, थोड़ी सी तकलीफ में भी तुम्हारा हृदय रो उठता है। तुम अपने हृदय को कठोर बनाओ। राधा ! आखिर इतनी भावुकता से लाभ के बदले हानि ही अधिक उठानी पड़ेगी— और यह तुम्हारे लिए उचित नहीं।"

इस बार राधा चुप न रह सकी। उसके हृदय में जोर का आघात लगा। वह तिलमिला उठी और उसके करुण कंठ से आप-ही-आप निकल गया—"आखिर मेरे कारण........ ....मेरे कारण ही, आप को इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है, नहीं तो आप को अकेले अपने लिए कुछ भी नहीं सोचना पड़ता।"

नवीन के मुंह पर, इन बातों को सुन कर, हँसी की एक रेखा दौड़ गई। वह अपने को रोक न सका, वह ठहाका मार कर हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा—"यह तो तुमने अच्छा कहा राधा ! क्या खूब ! क्या खूब !! क्या मैं अकेले रह कर भी इन कष्टों से अपने को मुक्त कर सकता था ?—कभी नहीं ! तुम समझती हो, मुझे अपने लिए कष्ट नहीं होता ? सच तो यह है कि तुम्हारे साथ रह कर जिस शांति से मैं अपने को खुश कर सकता हूँ, तुम्हारी अनुपस्थिति में मुझे उस शांति से भेंट भी नहीं हो सकती ! उस समय मैं या तो पागल हो जाता या मुझ से ऐसा कोई अनुचित कार्य ही बन आता जो मेरे लिए बड़ा भयंकर सिद्ध होता। मनुष्य कब क्या कर बैठेगा—कोई नहीं कह सकता। पर, भगवान

को धन्यवाद है, तुम्हें उन्होंने मेरे साथ इसलिए लगा दिया है कि मैं अपने को इन विरुद्ध परिस्थितियों में भी सँभाले चलूँ। इससे अधिक मेरे लिये आनन्द की क्या बात हो सकती है कि तुम आज मेरे कष्ट के समय में भी अपनी सहानुभूति और स्वाभाविक ममता से मुझे शांति पहुंचा रही हो? मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ, राधा! तुम इसे सच जानो। मैं रत्ती भर भी कष्ट का अनुभव नहीं करता तुम्हें पाकर।"

राधा को इन बातों का कुछ उत्तर सूझ न पड़ा। उसका हृदय गद्‌गद् हो उठा। वह सिर झुकाए कान खोल कर सारी बातें—सुनती रही। मानो, वह किसी स्वप्न-लोक में विचर रही हो—मानो वह वहाँ उतनी देर के लिए थी ही नहीं।

नवीन ने देखा—अब अधिक देर तक वहाँ उस अवस्था में पड़ा रहना उचित नहीं, इसलिए वह बोल उठा—"राधा! अब चलो हमलोग आराम करें। रात अधिक हो गई है, फिर सबेरे मुझे बाहर जाना होगा। कल का समय हम लोगों के लिये बड़ा सुखद होगा। अतएव, आज की मीटिंग हम लोगों की यहीं खतम हो।"

राधा को कल की बात सुन कर जरा खुशी हो आई—कुछ उत्साह भी हो आया। उसके दिल में हुआ—पूछ देखूँ, किस आधार पर वह कल के समय को सुखद समझ रहे हैं। पर उसने ऐसा पूछना कदाचित् उचित न समझा और वह स्वाभाविक ढंग से इतना ही बोल सकी—"हाँ, चलिये, हमलोग अब आराम करें।"

और दोनों वहाँ से चल कर अपने-अपने कमरे में घुस पड़े।

नवीन का कमरा अंधेरा था और राधा के कमरे में टिमटिमाती हुई लैंप जल रही थी। इसलिए नवीन अपने कमरे में घुसते ही जोर से बोल उठा—"राधा, जरा मेरी लैंप जला तो दे भई!"

राधा अपने कमरे से बत्ती लिए आई और नवीन की लैंप जलाती हुई बोल उठी—"क्यों? इस समय लैंप जला कर क्या होगा? नवीन बाबू! रात तो अधिक हो गई है। अच्छा होता, आप सो जाते। क्यों?"

"हाँ, हाँ! सोऊँगा ही। तुम लैंप को जला कर चली जाओ! कपड़े उतारने की जरूरत थी, इसीलिए लैंप की जरूरत पड़ी।"

राधा वहाँ से चली आई और अपने कमरे में आ विछावन पर पड़ रही।

उधर नवीन ने अपने कपड़े उतारे—बदले। कुछ देर तक अकेले ही अपने कमरे में वह चक्कर देता रहा। वह मन-ही-मन किसी निगूढ़ चिंता में पड़ा था। उस समय कोई भी मनोविज्ञान-वेत्ता आसानी से उसकी अवस्था का अंदाज लगा सकता था। उस समय उसकी आकृति के चढ़ाव-उतार में रह-रह कर इतना परिवर्तन हो रहा था कि उसके मस्तिष्क का पता लगाना कुछ आसान बात न थी। करीब आध घंटे तक वह उसी तरह अपने कमरे में चक्कर ही काटता रहा। हठात् उसके मुंह पर आप ही आप हास्य की एक रेखा खिंच आई। उसके पाँव रुक-से गए। उसकी आँखें अधिक उज्वल दीख पड़ीं और वह टेबल के पास आ, लैंप की बत्ती जरा तेज कर, कुर्सी पर जम कर बैठ गया।

टेबल पर अस्तव्यस्त दशा में पुस्तकें पड़ी थीं। उसने पुस्तकों को ठीक कर उसके एक कोने पर रख दिया। फिर ड्रावर से कागज की फाइल निकाली। पेंसिल की नोंक को चाकू से तराशा फिर उसे लेकर गंभीर मुख-मुद्रा में कुछ देर तक सोचता रहा। कुछ देर तक यही अवस्था रही, उसके बाद वह जम कर लिखने को बैठ गया। पेंसिल सरपट चाल से सफेद कागज पर दौड़ने लगी।

दो-ढाई घंटे तक नवीन मनोयोगपूर्वक लिखता ही रहा। इतनी देर तक लिखे हुए पृष्ठों को नवीन ने टेबल पर छितरा दिया और शेष होने पर उसने निश्चिंतता की सांस ली।

—बीस—

मणि को अधिक दूर की यात्रा करने का कदाचित् पहला ही अवसर था। वह जिस साहस और उत्साह के साथ किशोर के साथ पुरी चलने को तैयार हुई थी, उसका वह उत्साह स्थायी न रह सका। अवश्य किशोर उसकी प्रसन्नता को बढ़ाने के उपक्रम में परेशान रहा, पर मणि को बोध होता था, जैसे उसकी कोई चीज कहीं खो गई हो और जिसे पाने के लिए वह बड़ी आतुर हो रही हो। यह उसकी आकृति से साफ झलक रहा था, यद्यपि वह उसे छिपाने की भरसक कोशिश कर रही थी। रास्ते में लंबी सफर होने पर भी, इन दोनों में खुलकर बातचीत न हो सकी। किशोर—यौवनोन्मत्त कशोर—के हृदय-पट पर कुछ देर के लिए उसका एक धुंधला चित्र खिँच गया सही, पर उसने अपनी चेष्टा बराबर ऐसी की जिससे वह अपनी मणि के हृदय में कुछ भी आनंद उत्पन्न कर सके। मणि पर उसका कुछ प्रभाव पड़ा वा नहीं—नहीं कहा जा

सकता, पर उसके अंतस्तल में, रह-रह कर जो दर्द उठ रहा था, उसका शमन न हो सका। जिस-तिस तरह दोनों पुरी आ पहुँचे।

किशोर ने पुरी में ठहरने का प्रबंध बहुत पहले ही कर लिया था। वहाँ उसका एक मित्र वायुसेवन को पहले से ही आकर टिका था। उसी के द्वारा उसने अपने लिए भी एक बंगला ठीक करा लिया था। पर, किशोर पहले पहल अपने मित्र का ही अतिथि रहा। मित्र का नाम था कमलाशंकर राय। उसके साथ उसकी पत्नी—आनंदी भी थी।

आनंदी ने मणि को अपने घर में पाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। कारण था, आनंदी को पुरी आने पर स्त्री-सहवास में बहुत ही कम रहना पड़ा था, इसलिए उसका सजातीय सख्य भाव, मणि को पाकर सजग हो उठा। और ऐसा होना कदाचित् स्वाभाविक ही था।

पर, मणि जिस रूप में थी, आनंदी का वह रूप नहीं था। आनंदी एक निठट्ठ देहात की रहने वाली थी। शौकीन नागरिक पति से उसका विवाह हुआ था। पर, उसमें नागरिक शिक्षा-सभ्यता का अभाव था—वह कोरी देहाती सती-साध्वी पत्नी थी। वह खिलौना न थी—वह चहकनेवाली कोयल न थी—न नाचनेवाली मोर थी और न फुदकनेवाली अंगरेज-रमणी।

और मणि ?

हाँ, मणि आज कोयल बनकर चहकने आई थी—मोर बनकर नाचने आई थी—वह नागरिक शिक्षा-सभ्यता में पाली-पोसी जाकर बिजली बन चुकी थी।

और इसी रूप में आनंदी ने मणि को, पहली दृष्टि में देख पाया। पर, आनंदी आनंद-स्वरूपा थी—आतिथ्य करना जानती थी और जानती थी मैत्री के पावन डोर में किसी को भी बाँध लेना। मणि चाहे जैसी रही हो, जैसी उसे रुचि हो, पर आनंदी के लिए, वह अतिथि थी—वंदनीय थी।

उस दिन आनंदी ने अपने घर में प्रिय अतिथियों को पाकर उनकी आदर-संवर्द्धना में अपनी शक्ति लगा दी। मणि से घुल-घुल कर बातें कीं, नास्ता-पानी कराया, अपने से खट पर तरह-तरह की चीजें पकाईं, खिलाया-पिलाया। दिन भर व्यस्त रही, पर उसके चेहरे पर नाम को भी उदासी न थी—थी एक उत्फुल्लता की स्निग्ध ज्योत्स्ना। कितना उसमें अनुराग था! कैसा था उसका पावन हृदय!

मणि को इसके पहले आनंदी जैसी गृहिणी का जरा भी अनुभव नहीं था। वह जिस वातावरण में तैयार हुई थी वहाँ केवल देखने को मिली थीं उसे वैसी रमणियाँ जो आनंदी से सर्वथा भिन्न थीं। मणि बड़े घर की कन्या है, बड़ों से सर्वदा संसर्ग रहा है, बड़े घर की लड़कियाँ, रमणियाँ, प्रौढ़ाएँ ही उसके घर में आती जाती थीं, और वह खुद लड़कियों, रमणियों के घर जाया करती थी—फिर आनंदी के रूप का उसे अनुमान या अनुभूति हो ही कैसे? बड़े और छोटे में कुछ अंतर भी तो चाहिए? फिर यौवनारंभ में, मदमाते वसंत में, बहनेवाली आँधी में, बढ़ती हुई बाढ़ की तरंगों में वह यदि औरों की पर्वाह न करे तो उसका दोष? मणि क्या जानती थी कि पत्नी का इतना पावन कर्त्तव्य भी हुआ करता है?

उस दिन मणि को आनंदी के विशेष आग्रह से रह जाना पड़ा। संध्या समय एक बार किशोर ने अपने मित्र से अपने बंगले पर जाने की इच्छा प्रकट की और कमलाशंकर ने जब उसकी इच्छा अपनी आनंदी पर प्रकट की तो आनंदी ने उत्तर में कहा—"यह क्यों ? ऐसा नहीं हो सकता। अपने बंगले पर तो जाएँगे ही, पर अभी नहीं। कह दो उन्हें जाकर; चाहे वे जायँ, पर मणि देवी को आज तो मैं न जाने दूंगी। यह कैसी बात ? रात भर के लिए क्या उन्हें चैन नहीं ?"

कमलाशंकर अपनी आनंदी के स्वभाव से पूर्णतः परिचित थे। वास्तव में आनंदी का हृदय बड़ा प्रेममय था। वह लौट कर चले गए और किशोर से अपनी पत्नी का अभिप्राय कह सुनाया। किशोर कुछ देर तक वहाँ उसके साथ गप्पें करता रहा, उसके बाद वह अपने नये डेरे की ओर चल पड़ा। चाहता तो वह स्वयं भी रह जा सकता था और रहने के लिए कमलाशंकर ने उससे आग्रह भी किया था, पर वह जाने क्या सोच समझ कर ठहर न सका और सीधे बंगले में आ अपने बिछावन पर लेट रहा। एक तो नया डेरा; दूसरे अकेला—उसे अगली रात नींद न आई। वह कमलाशंकर पर, विशेषतः आनंदी पर चिढ़ कर रह गया, पर वहाँ दूसरा चारा ही क्या था ? रात बहुत मुश्किल से कटी।

उधर मणि को आनंदी के व्यवहार और अयाचित सख्य-भाव से जितनी प्रसन्नता हुई थी, उतना उसके अंतिम वाक्य—'रात भर के लिए क्या उन्हें चैन नहीं'—से एक

वेदना-सी हुई। वह आनंदी के स्वभाव से—विशेषतः उसके हँसोड़ स्वभाव से परिचित हो गई थी। उसे एक प्रकार का भय था और भय था इसलिए कि, कहीं आनंदी यह समझ गई हो कि मणि के साथ किशोर का दांपत्य-संबंध हो। इस भय से वह विचलित-सी हो उठी, उसे वहाँ ठहर जाना भार-सा बोध होने लगा, पर उसके लिए वहाँ से चल देने का प्रस्ताव आनंदी के सामने रखना कठिन-सा प्रतीत हुआ, और वह खिन्न होकर रह जाने को विवश हुई।

आनंदी अपने गृह-कर्म से छुट्टी पाकर, बहुत हौसले से अपने कमरे में मणि से गप्पें करने को आ जुटी। दोनों एक ही पलंग पर लेटीं। कमलाशंकर को भीतर आने पर, आनंदी ने साफ कह दिया—"जनाब, आप क्या ढूँढ़ रहे हैं? कहीं आप सोने का प्रबंध कर लें, आज आप को यहाँ स्थान न मिलेगा। जिस तरह आपने अपने मित्र को अकेला कर छोड़ा है, उसी तरह आप भी अकेले का आनंद लूटिए, क्यों?"

और उसके उत्तर में कमलाशंकर ने हंसते हुए कहा—"हाँ, तुम ने ठीक ही कहा, आज हमलोग अकेले का आनंद ही लूटेंगे। मगर आनंदी देवी की तो बांछें खिल गईं। उन्हें साथ में सोने का आनंद तो मिला, यही क्या कम है? बड़ा भाग्य! आखिर, भाग्य भी तो........ ....!"

आनंदी हँसी के झोंक में बात काट कर बोल उठी—"हाँ, आखिर भाग्य भी तो कोई चीज होती है? और आप अपनी तक़दीर लेकर करवटें बदलिए!"

सभी ठहाका मार कर हँस पड़े। कमलाशंकर हँसते हुए अपने ड्राइंग रूम में आए और वहीं टेबल पर बिछावन बिछा कर लेट रहे।

कमलाशंकर के चले जाने पर मणि बोल उठी—"यह तुमने क्या कर दिया दीदी ? आखिर उन्हें तुम्हारे विना..........!"

"और यदि मैं भी यही पूछूँ—उन्हें तुम्हारे विना..........!"

मणि अपने प्रश्न पर आप ही खीझ-सी उठी। क्यों उसने ऐसा प्रश्न किया जो खुद उस पर भी आ गिरे ? वह स्वयं झेंप-सी उठी। पर, प्रश्न का उत्तर न देना और भी अपमान-जनक उसे बोध हुआ। वह बोली—"यह प्रश्न तो तुम्हारे लिए ही था, दीदी ! कुछ मेरे लिए नहीं।"

आनंदी चौंक-सी उठी। वह मणि के संबंध में जैसा कुछ सोच सकी थी, उस पर से उसका विश्वास जाता रहा। वह जिज्ञासा भरे स्वर में बोल उठी—"तो क्या तुम दोनों साथ-साथ नहीं सोते ? यह तो अच्छी रही। क्यों बनती हो, मणि ! समझती हो, मैं कुछ जानती ही नहीं हूँ। मैंने उसी समय लक्ष्य किया था, जब मैंने तुम्हारे रहने के संबंध में उनसे कहा—'मणि आज यहीं रहेंगी'—उस समय तुम्हारा चेहरा उदास हो गया। कहो तो, तुम उदास न हो गई थी ? हाँ सच-सच कहो तो ? मेरी कसम !"

"हाँ, सच ! मैं क्यों उदास होने लगी ? मैं महीनों यहीं रह सकती हूँ, तो भी मुझे कोई कष्ट नहीं हो सकता। चाहो तो तुम मुझे रख कर देख ही लो क्यों न ?"

Jangamwadi Math, VARANASI
Acc. No.

"अजी रहने दो वह बात। मणि, यह तुम किसी और को सुनाना। रात भर तो तुम्हें बेकली-सी रहेगी। कोसोगी मुझ को, और बात बनाने चली हो ? मेरा भी वही हाल था एक दिन। मैं भी अपनी सखी सहेलियों को दिखाने के लिए कह देती थी, मैं क्यों उनके साथ सोने लगी ? क्या उनके विना मुझे चैन न होगा ? पर जानती हो, मणि ! यह केवल कहने की बातें थीं—सच तो यह है कि, उनके देखे विना पल भर चैन ही नहीं ! दिल पर न जाने, कैसी-कैसी बीत जाती।"

"बीतती होगी, दीदी ! पर मुझ पर ऐसी कोई बात नहीं। मैं सच कहती हूँ। मानना न मानना तुम्हारे अधिकार की बात है।"

आनंदी ठहाका मार कर हँस पड़ी। उसे मणि की बात पर मुतलक विश्वास न हुआ। वह उसे छाती से चिपका, दोनों बाँहों से कस कर बोल उठी—"इतनी न बनो, मणि ! क्यों अल्हड़-सी बातें करती हो ? आखिर, ऐसी कौन सी रमणी होगी जो अपने पति के साथ..................।"

मणि अबतक बड़ी उलझन में फँसी थी। वह सोच रही थी, क्यों न खुल कर मैं इनसे कह दूँ कि मैं अविवाहिता हूँ, वह मेरे मित्र हैं—पति नहीं। पर, वह ऐसा कहने का साहस अपने में नहीं पा रही थी, फिर भी उसे भय था कि इसे सब कुछ मालूम हो कर ही रहेगा। तब मैं ही अभी क्यों न साफ साफ कह दूँ ? और ऐसा विचार कर वह बोल उठी—"वह मेरे पति नहीं हैं।"

मणि बड़ी कठिनता से, झेंपती हुई बोल उठी पर, उसे अपनी

बात स्वयं अपने लिए ही बहुत बुरी जंची। वह सोचने लगी—आखिर आनंदी क्या समझेगी?—मैं उसकी विवाहिता पत्नी नहीं?—तो मैं कौन हूँ उसकी? और उसे मुझ पर क्या अधिकार? अवश्य वह समझ गई होगी कि मेरे साथ उसका अवैध संबंध है—अनुचित संबंध है। मणि इस विषय पर जितना ही सोचती जा रही थी उतना ही उसका भय—उसका अपमान बढ़ता जा रहा था। आखिर, वह अस्थिर हो उठी। रात में भी वह पसीना-पसीना हो गई। उसके सांस की गति रुकी-सी जान पड़ने लगी। उसे हुआ—मानो कोई अपराधी न्यायाध्यक्ष के सामने अपना अपराध स्वीकार कर रहा है। पर, आनंदी ने उसे अधिक देर तक अपराधी के रूप में न रखा। वह मुस्किराती हुई बोल उठी—"जो बात मैं सुनती आ रही थी, वही आज अपनी आँखों देख रही हूँ। ठीक है, ठीक है, मणि! मैं समझ गई—समझ गई! भई! तुम लोग शहर में रहती हो, मैं देहात की ठहरी, इसीलिए अब तक न समझी थी। अच्छा है, तुम्हारे वे भावी पति होंगें! अब तो कुमारियाँ अपने लिए पति को अपने से चुनती हैं। खैर, तुम दोनों का जोड़ा मुबारक हो।"

मणि उसके व्यंग किंतु तथ्यपूर्ण बातों से चमक-सी उठी। उस पर मानो बिजली कौंध उठी हो—बज्र गिर पड़ा हो—उसे ऐसा अनुभव होने लगा। उसका मुंह रोष से तमतमा उठा। उसके गाल की लाली और भी गाढ़ी हो उठी। उसने करवट बदल कर मुंह दूसरी ओर फेर लिया। पर भोली आनंदी क्या जानती थी

कि, उसकी अतिथि—मणि को उसके वचनों से कितनी गहरी ठेस लगी है।

दोनों चुप थीं—दोनों दो विभिन्न बातें सोच रही थीं। पर, दोनों का इस तरह हठात् चुप्पी साध लेना आनंदी को अच्छा न जँचा। वह विनोद के स्वर में बोल उठी—"एक वह जमाना था मणि! और एक यह जमाना है! मैं इसे बुरा नहीं कहती पर, हिन्दू के घर विवाह का जो आदर्श होना चाहिए उसकी रक्षा इस तरह के संबंध से हो सकेगी वा नहीं—मैं नहीं कह सकती। जानती हूँ, हमारे यहां स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी, स्त्रियाँ जिन्हें चाहतीं, वरण कर सकती थीं, पर मैं यह नहीं कह सकती कि, वह नियम आजकल के लिए कहाँ तक अनुकूल हो सकता है। मैं तो मर्दों की बातें कहूँगी। वे लोग युवतियों को देखते ही फिसल पड़ते हैं। किसी सुंदरी को देखा और पीछे पड़ गए। उनके यहाँ नित्य नया सौंदर्य चाहिए। ऐसी दशा में वे इस तरह का संबंध स्थापित कर अधिक काल वा अपने जीवन-तक के लिए भी, निर्वाह कर सकते वा नहीं—ऐसा मैं नहीं कह सकती। खैर, मेरा बड़ा भ्रम दूर हुआ, मणि! अच्छा ही है, पर मैं कहे रखती हूँ—पति के चुनने में कहीं धोखा न खा जाना! पीछे इसका परिणाम बुरा न हो।"

मणि ने सारी बातें सुन ली, पर वह उत्तर दे तो क्या दे? वह घायल हो चुकी थी। उसे पहले जिस बात का भय था, आखिर वही हुआ। उसके दिल में तूफान मचा था। उसे स्वयं बोध

हो रहा था—ओह ! मैं कहाँ आ गई ? कहाँ आकर गिर पड़ी ? ओह ! कहीं पतन........! शायद मैं इनकी नजरों से गिर पड़ी।"

पर, कुछ ही देर के बाद आनंदी ने परिस्थिति को सँभालते हुए कहा—"रात बहुत अधिक निकल गई, मणि ! व्यर्थ मैंने तुम्हें कष्ट दिया। बुरा न मानना। मैं जरा हँसोड़ स्वभाव की हूँ, मणि ! तुमलोग स्वयं पढ़े लिखे आदमी हो, एक मूर्खा की बात का खेद न मानोगी।"

आनंदी ने बातचीत वहीं खतम की। वह दम मार कर पड़ी रह गई। कुछ ही समय के बाद उसे नींद ने धर दबाया। पर, वह रात मणि के लिए अग्नि-परीक्षा थी। वह चिंता से आहत हो कर लेटी ही रह गई। उसने जीवन में इसके पहले अपने विषय में इतना कटु अनुभव कभी नहीं प्राप्त किया था। रह-रह कर उसे बोध हो रहा था—अवश्य मैंने उसके साथ यहाँ आने की जो भूल की है—वह साधारण नहीं है। अवश्य उससे मेरे व्यक्तित्व का गुरुत्व बढ़ेगा नहीं—घटेगा ही। चाहे बढ़ भी जाय, पर आनंदी के निकट मैं तन कर खड़ी नहीं हो सकती।

—इक्कीस—

दूसरे दिन खूब तड़के आनंदी बिछावन से उठी। नित्य-कर्म किया और कोयले के चूल्हे में आग सुलगने को दी। साथ ही दाई आकर बर्त्तन-बासन साफ करने लगी। मणि तब तक सोयी हुई थी। उसे अगली रात नींद ही नहीं आई और इसी कारण वह तड़के उठ न सकी। जब वह उठी, उसने देखा—आनंदी नहा-धोकर, उसी कमरे में कपड़े बदल रही है। मणि ने उठते ही आनंदी को देखा, उसे कुछ लज्जा बोध हुई। वह शर्माती हुई बोल उठी—"तुमने नहा लिया, दीदी! मैं सोई ही रह गई! उठा दिया मुझे क्यों नहीं?"

आनंदी मुस्किराती हुई बोल उठी—'मैं क्या जानती थी कि, तुम्हें उठा देने की जरूरत पड़ेगी? मैंने तो समझा—तुम्हें इस अपरिचित स्थान में नींद ही न आई हो। एक तो मैंने तुम्हें यहां रख कर कष्ट दिया, मणि! फिर दूसरा कष्ट तुम्हें उठा कर देती?"

मणि तब तक उठ बैठी थी। वह आनंदी की बातें सुन कर हँस पड़ी और बोली—"तुम बड़ी वैसी हो आनंदी दीदी! कष्ट मुझे क्यों होने लगा? अलबत्ता कष्ट तो तुम्हें हुआ—तुम तो मन में मुझे कोसती होगी। आखिर, इसीलिए तो तुम्हें नींद नहीं आई—फिर तुम तड़के न उठती तो क्या करती? मैं तो जैसे दूसरे दिन सोती थी, वैसे ही सोती ही रह गई।"

आनंदी मणि की बातों पर ठहाका मारकर हँस पड़ी। उसकी हँसी से कमरा गूँज उठा। और वह हँसती हुई ही बोल उठी—"ठीक है—ठीक है मणि! तभी तो—तभी तो—तुम्हें नींद हो आई, और नींद आवे क्यों न? उस मधुर स्वप्न को कैसे तोड़ सकती थी?—संयोग के सुख-स्वप्न को! खैर, भई! अब तुम्हें अधिक स्वप्न-लोक में विचरने न दूँगी। उस स्वप्न के देवता की आराधना में संलग्न हो सको, मैं अब वही प्रबंध करती हूँ।"

आनंदी बोलते-ही-बोलते बाहर निकल आई। मणि भी उसके साथ बाहर आई। उसने देखा कि चूल्हे में ताव हो आया है और आनंदी उसके पास जाकर बर्त्तन ठीक कर रही है। इसे देखकर मणि बोल उठी—"वाह! मालूम होता है, गरम-गरम हलुवा बनाने की तैयारी हो रही है? हलुवा बनाओगी दीदी! वा कचौड़ी?"

"मैं तो कुछ न बनाती पर, देखा कि मणि देवी को आज नये घर में प्रवेश कराना है, इसलिए भूखी कैसे जाने देती? तुम्हें तो मालूम न होगा, मणि! और मालूम हो कैसे? शहर की जो ठहरीं! हमलोग देहात में, अपनी कन्या को ससुराल भेजते समय खूब

खिला-पिला देती हैं। फिर मैं तुम्हें यहाँ से कैसे यों ही जाने देती ? तुम्हारे जीजा जी आखिर मुझे क्या कहते ?"

"रहने दो-रहने दो, दीदी ! ऐसी बातें। मैं कोई ससुराल नहीं जा रही हूँ।"

मणि और अधिक न बोल सकी। उसे एक तरह की, न जाने क्यों, ग्लानि हो रही थी। पर, आनंदी के व्यक्तित्व के कारण वह उसे अच्छी तरह व्यक्त न कर सकी। वह नित्य कर्म करने को सन्नद्ध हुई।

आनंदी तब तक जलपान तैयार कर चुकी थी। उसने मणि को तैयार देखकर कहा—"आओ मणि ! जलपान कर लो। देखो, चाय ठंढी हो जायगी। आओ—कुर्सी पर बैठो ! तुम्हारे जीजा जी को भी बुलाए लेती हूँ।"

मणि को थोड़ी झिझक हो आई। वह बोली—"पहले उन्हें जलपान करा न लो, दीदी ! उसके बाद हमलोग कर लेंगी।"

"क्यों ? हमलोग सभी मिल कर एकही साथ क्यों न कर लें ? क्या अच्छा न होगा ?"

"अच्छा होगा क्यों नहीं ?............खैर............!"

आनंदी ने जलपान का सामान टेबल पर सजाया। मणि भी जा बैठी। उधर कमलाशंकर को जलपान कर लेने की बुलाहट गई।

आनंदी परोस रही थी और कमलाशंकर और मणि खाने को बैठे थे। मणि ने आनंदी को भी बैठने को कहा, पर वह चतुराई

से यह कहकर निकल गई कि, आखिर, परोसने को कोई एक आदमी तो चाहिए ही। आखिर, मणि को वाध्य होकर खाने को बैठना ही पड़ा।

कमलाशंकर के लिए यह पहला ही अवसर था कि, मणि को इतने निकट से वे देख रहे हों और मणि ने तो उन्हें पहले-पहल ही देखा—और जब देखा तो उन्हें अपने सामने ही। कमलाशंकर जैसा सभ्य और शिष्ट युवक और आनंदी जैसी विनोद-प्रिय और चतुर युवती की जोड़ी पाकर, मणि के दिल में हुआ—जैसे वह रिक्त हो रही हो—जैसे उसके दिल से उसका देवता कहीं चला गया हो! मणि ने समझा—वह जैसे खो गई हो! उसे जलपान करने में कुछ अधिक आनंद न आया। फिर भी जैसे-तैसे यह क्रिया समाप्त हुई। हाँ, समाप्ति के पहले कमलाशंकर ने मणि से कहा—"यहाँ यद्यपि आप पहले पहल आई हैं, इसलिए कुछ उदासी तो होगी ही, पर यहाँ का दृश्य इतना मनोरम है कि, आपका जी लग जायगा; फिर जल्दी जाने को दिल चाहेगा ही नहीं।"

मणि उस समय न जाने क्या-क्या सोच रही थी। उसने कमलाशंकर की सारी बातें सुनीं वा नहीं—नहीं कहा जा सकता; क्योंकि मणि को देखकर उस समय कोई भी कह सकता था कि, मणि यहाँ है ही नहीं।

वड़ी देर के बाद मणि जैसे चौंक कर बोल उठी—"मुझे तो कुछ अधिक समय तक रहना नहीं है। यों ही देखने चली आई।"

आनंदी को समझते देर न लगी। फिर वह अवसर पर

चूकनेवाली न थी। वह बोल उठी—"क्यों ? क्यों, मणि देवी ! यहाँ का दृश्य तो तुम्हारे अनुरूप ही है, फिर ऐसी जल्दी किस बात की ? जब आई हो तो खूब आनंद कर लो। जाना तो आख़िर है ही !"

आनंदी की बातों से मणि के चेहरे का रंग सुर्ख़ हो उठा। उसके कान झनझना उठे। वह जरा तिलमिला उठी। पर, तुरत ही उसने अपने को संयत करने के लिए अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया। उसे हो रहा था—अब यहाँ अधिक देर तक ठहरना उचित नहीं। आनंदी की बातें, रात से ही उसे सुई-जैसी चुभ रही थीं। कुछ देर के बाद वह बोल उठी—"मुझे पहुंचा दीजिए, कमलाशंकर बाबू ! मैं............!"

"अच्छा, आप तैयार हों, मैं घोड़ा-गाड़ी मँगवाता हूँ।"

कमलाशंकर बाहर की ओर चले गए। उन्होंने नौकर को गाड़ी लाने को कहा और आप कपड़े बदलने लगे।

यथासमय गाड़ी आ पहुँची। तब तक मणि भी तैयार हो गई। नौकर ने गाड़ी पहुँचने की बात कही। आनंदी उसे लेकर गाड़ी तक पहुंचाने आई। मणि गाड़ी में बैठी और कमलाशंकर भी। गाड़ी गंतव्य पथ पर चल पड़ी।

आनंदी को उसके जाने पर बड़ा दुःख हुआ, उसकी आँखें छलछला आईं। उसने मणि से कहा—"कभी कभी आती रहना, मणि ! तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ, बुरा न मानना।"

मणि शिष्टाचार के नाते कुछ बोलना ही चाहती थी कि, गाड़ी तेजी से निकल गई।

रास्ते में कमलाशंकर और मणि में कोई बात न हुई। कुछ ज्यादा समय भी न लगा। गाड़ी मणि के दरवाजे पर आ लगी। कमलाशंकर ने गाड़ी का दरवाजा खोला, आप उतर पड़े और मणि का हाथ पकड़ कर उसे भी उतारा। जिस समय मणि उतारी जा रही थी, किशोर ने खिड़की की राह उसे देखा। उसके हृदय में एक जोर का आघात लगा। उसने समझा—रात भर में ही ये दोनों आपस में कैसे हिलमिल गए? तभी तो यह रात को आने पर तैयार न हुई! देखो तो? और कमलाशंकर? उफ्! कितना सीधा-सा! विचित्र है मनुष्य का स्वभाव!

वे दोनों अगल-बगल साथ हो ड्राइंग रूम में आए। किशोर ने उन दोनों को आगे बढ़ते हुए देखा, पर शिष्टता के नाते भी वह उन्हें लिवाने को आगे तक न बढ़ा—ज्यों का त्यों पड़ा ही रह गया। कमलाशंकर ने ड्राइंग रूम में पहुँचते ही पुकारा—"कहाँ हो? किशोर!—किशोर!"

किशोर अपने कमरे से ही बोल उठा—जैसे कोई चौंक कर बोल उठा हो—"कौन? कमलाशंकर?"

कमलाशंकर मणि के साथ तब तक उसके कमरे के पास पहुँच चुके थे। वह भीतर घुसते ही बोल उठे—"वाह! इतना दिन चढ़ आया, और तुम लेटे ही पड़े हो? रात की खुमारी अभी मिटी नहीं है?"

किशोर मन-ही-मन झल्ला उठा—जैसे किसी ने उसके घाव पर नमक छिड़क दिया हो—पर, अपने आंतरिक भाव को छिपा कर वह बोल उठा—"खुमारी मिटती कैसे?"

कमलाशंकर कुछ देर तक खड़े रहे, किशोर ने उन्हें बैठने तक को न कहा। फिर भी वह एक कुर्सी खींच कर बैठ गए। मणि जैसे बंदी के रूप में ज्यों-की-त्यों खड़ी ही रही।

कमलाशंकर को कुछ बुरा न लगा। वह सरस प्रकृति के व्यक्ति थे। वह बोल उठे—क्यों किशोर! तुम्हें यहाँ बोध होता है, अच्छी तरह नींद नहीं आई—नहीं आई?"

"आना न आना तो अपने मन की बात है—और नींद आती क्यों नहीं? खूब सोया हूँ! शान से!"

"फिर तुम उठे क्यों नहीं? देखता हूँ............!"

"उठकर क्या पानी डँगाता?"

"क्या लोग उठकर पानी ही डँगाया करते हैं?"

"लोगों की बात मैं नहीं जानता। मैं तो अपनी ही कह सकता हूँ।"

मणि खड़ी-खड़ी मन-ही-मन ताड़ गई कि किशोर बे-मेल की बातें कर रहा है। उसे उसकी बात बड़ी बुरी जँची। उसे बहुत चोट लगी और वह कमलाशंकर का पक्ष लेकर बोल उठी—"अच्छी आपने अपनी बात सुनाई! कैसी मजेदार बात है आप की? यह तो आपके दोस्त को ही अच्छी लगी होगी—क्यों? ....हाँ, कमला बाबू! मजे तो आ गए होंगें उनकी बातों से?"

किशोर ने मणि की ओर आँखें फेरीं। वह उसे देखकर जरा झेंपा और परिस्थिति को संभालते हुए बोल उठा—"तुम नहीं समझ

सकती, मणि! हमलोगों की बातें! इसमें बुरा मानने की कौन-सी बात रही? कहो, कमल! क्या तुम्हें बुरा लगा? मणि! हमलोगों की ऐसी ही बातें ही हुआ करती हैं।"

"होती होंगी ऐसी बातें!"—मणि कहकर चुप हो गई। वह मन ही मन सोचने लगी—यह अपने दोस्त पर गुस्सा उतारता नहीं है, यह तो मुझ पर गर्मी उतार रहा है। वाह रे! मैं इतनी परतंत्र नहीं....!

कमलाशंकर अबतक वहाँ की बातें सुन कर समझ रहे थे कि, यह केवल मनोरंजन की बातें हो रही हैं, पर, मणि का स्वरूप देखकर उन्हें जान पड़ा—किशोर वास्तव में गलती कर रहा है, जिसे बर्दाश्त करना मणि के लिए कठिन हो उठा है। कमलाशंकर किशोर की मूर्खता पर हँस पड़े। उन्होंने समझा—कदाचित् मेरा आना ही इसे अखरा हो, इसलिए उन्होंने विचार किया—अब मुझे ठहरना उचित नहीं और वह यह कहकर उठ खड़े हुए—"ख़ैर, भाई किशोर! शाम को टहलने आना, अभी मैं एक आवश्यक कार्य्य से जा रहा हूँ"—और वह बाहर की ओर चल पड़े।

मणि भी उठकर कमलाशंकर के पीछे-पीछे आई और दरवाजे पर आकर बोली—"दीदी से कह दीजियेगा, वे मुझे न भूलें! मैं उनसे क्षमा चाहती हूँ।"

कमलाशंकर गाड़ी पर बैठते हुए बोल उठे—"हाँ, हाँ, कह दूँगा। जब कभी आपकी इच्छा हो, आइएगा। वह घर भी तो आपका ही है। ख़ैर, मैं आपसे क्षमा मांग लेता हूँ, घर के नाते आपको—हाँ, आपको वहाँ रात भर कष्ट उठाना पड़ा है।"

गाड़ी गंतव्य पथ पर चल पड़ी। मणि वहीं अपनी जगह पर खड़ी गाड़ी की ओर निहारती रही। जब वह आँखों से ओझल हो गई तो मणि ने एक गहरी सांस ली और पीछे कीं ओर मुड़कर दूसरे कमरे में आ बिछावन पर पड़ रही। किशोर अपनी खिड़की की राह बाहर के विदा का दृश्य देखता रह गया।

—बाईस—

किशोर कुछ देर तक यों ही पड़े-पड़े कुछ सोचता रहा। उसके हृदय में द्वंद का तूफान चल रहा था। उसका संशित हृदय कभी तो मणि पर तैश खाकर रह जाता, कभी मन में होता, क्यों उस दुष्ट के यहाँ मणि के साथ वह उतरा—और इसी विचार-शृंखलता में उसे अपने आप पर ही रोष हो आता। मणि के साथ कमला-शंकर का इसके पहले परिचय तक न था, फिर क्यों उसने उसे इससे परिचित होने का अवसर दिया? इसमें दोष किसका? मणि का वा स्वयं उसका? वह स्वयं अपने आप पर झल्ला कर रह गया। मणि पर उसे जो रोष आया था, धीरे-धीरे उसका आप ही आप शमन हो गया। उसने मणि से क्षमा-याचना के लिए अपने आपको तैयार किया और तैयार किया इसलिए कि, मणि के प्रेम

से—इस व्यवहार से, तुरत हाथ धो बैठेगा। वह उठ खड़ा हुआ और अपराधी-सा वहाँ से निकलकर मणि के कमरे में जा पहुँचा। उसने देखा—मणि तकिए में मुंह गड़ाए रो रही है। किशोर का हृदय काँप उठा, उसे जो आशंका थी, वह उसके सामने आकर विकराल रूप में खड़ी हो गई। उसने भयभीत मुख से उसकी ओर देखा और काँपते हुए कंठ से पुकारा—"मणि!"

मणि चौंक-सी उठी। उसने अपने को संयत करना चाहा, पर वह समर्थ न हो सकी। स्त्रियोचित मर्य्यादा फूट पड़ी और वह जोर से सिसक-सिसक कर रो उठी। किशोर कुछ देर तक सोच न सका कि क्या करना चाहिए। वह बिछावन के एक सिरे पर बैठ गया और उसकी देह पर हाथ रखते हुए बोल उठा—"क्यों रो रही हो मणि! क्यों? मैंने तो कुछ कहा नहीं फिर क्यों इस तरह ......?"

इतनी देर में मणि ने अपने को तैयार कर लिया था। उसके भीतर की मर्य्यादा क्रोध के रूप में उमड़ आई। स्त्रियाँ सभी कुछ सहन कर सकती हैं, पर वे अपने ऊपर आए हुए मिथ्या कलंक और अपमान को सहन नहीं कर सकतीं। उनका हृदय जितना ही दयार्द्र रहता है, उतनी ही उसमें प्रचंड ज्वाला भी रहती है। ऐसे अवसर पर, जितना वे देखने में शांत दीख पड़ती हैं, उतना ही उनमें विस्फोटक रहता है और अचानक एक हल्का-सा धक्का खाकर ज्वालामुखी-सी वे फूट पड़ती हैं। मणि भी उसी तरह फूट पड़ी। उसकी मर्य्यादा में—उसके स्त्रियोचित अभिमान में जोर का आघात लगा था। वह बोल उठी—

"क्यों नाहक इस तरह तंग करते हो ? इतना-छोटा-सा हृदय लेकर मुझ से प्रेम करने चले हो ? तुमने क्या समझ कर मेरा अपमान किया ? क्या तुमने मुझे एक बाजारू वेश्या समझा है जो लोभ में एक को छोड़कर दूसरे को फांसा करती है ? मैं यहाँ रहना नहीं चाहती—मुझे जाने दो—छोड़ दो मुझे ! मैं नहीं जानती थी कि, तुम इतने सशंकित आदमी हो !"

किशोर क्या उत्तर दे ? वह स्वयं अपराधी था और अपराध स्वीकार करने को वह स्वयं आ पहुँचा था वहाँ। वह विनम्र होकर बोल उठा—"मैं नहीं समझता था कि, तुम्हें मेरे व्यवहार से इस तरह की चोट पड़ेगी। मैंने तो कुछ वैसा किया नहीं और न कुछ वैसा सोचा ही जिससे तुम्हें इस तरह की चोट पड़नी चाहिए ? क्यों—फिर क्यों........?"

"रहने दो—रहने दो किशोर ! इससे अधिक और तुम मेरा अपमान क्या करते ? अच्छा होता—तुम मुझे मार दिए होते, पर—पर इस तरह घुल-घुल कर मरने के लिए मुझे न छोड़ते !"—मणि काफी रंज में आकर बोल उठी।

मणि रोष में आकर थरथरा रही थी। उसके अंग-प्रत्यंग से रोष उबला पड़ता था। अपराधी का हृदय दुर्बल होता है। किशोर ने अपने आपको अपराधी समझा। वह अपनी प्रेमिका के प्रेम पर आघात कर चुका था। आज वह प्रेम से हाथ धोने जा रहा था—उसे गहरी चोट लगी। वह अब सब कुछ न्यौछावर कर सकता था, उसके लिए कुछ भी अदेय न था जो उसे देकर उसके

बदले प्रेम को वापस ले। वह आप-ही-आप मणि की ओर झुक पड़ा और उसके कंधे पर सिर टेक कर बोल उठा—"मणि! माफ कर दो मुझे! मैंने तुम्हारा अपमान किया है—जो भी सजा दो, सहने को तैयार हूँ। अब मुझे तुम्हारे प्रति जरा भी मैल नहीं रह गया। क्या इतनी दया मुझ पर न करोगी?"

मणि अपने को संयत कर बोल उठी—"दया कहते हो किशोर! दया कर सकती हूँ, पर तुम्हें यह जानना चाहिए—मैं बहुत कुछ खोकर तुम्हारी ओर मुड़ी थी! मैं समझती थी कि तुममें युवकोचित बुद्धि है—तुम सहृदय हो!—पर, जिसे इतना ज्ञान नहीं—इतना विश्वास नहीं—सशंकित होकर वह मुझे पा नहीं सकता। कहो, क्यों तुम्हें ऐसा विचार आया? क्या रात को मैं वहाँ रह गई—इसलिये? क्या आतिथ्य-सत्कार का अपमान कर मैं वहाँ से चल देती? क्या तुम्हें अपने मित्र पर भी विश्वास नहीं? देवता-सा वह मित्र! छिः, तुम-जैसे को वैसे व्यक्ति से मित्रता का सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सका? मनुष्य और राक्षस में जितना अंतर हो सकता है उतना ही अंतर तुममें और उनमें है! उन्हें भी कलंकित करना""""!"

किशोर मानो आकाश से गिर पड़ा। उस पर मानो सौ घड़ा पानी पड़ गया हो। वह लज्जा से गड़ा जा रहा था। वह गिड़गिड़ा कर बोल उठा—"अब मुझे और लज्जित न करो! मैं पश्चात्ताप की आँच में आप ही जल रहा हूँ! मुझ से भूल हुई! क्षमा कर दो मणि!"

मणि पाषाण-सी शांत पड़ गई। ज्वालामुखी की आग ठंढी पड़ चुकी थी—ठीक उसी तरह वह शांत हो गई। उसने स्नेह के स्वर में कहा—"ख़ैर, जाने दो—अब ऐसा कह कर लज्जित न करो। मेरा हृदय इतना छोटा-सा नहीं कि, मैं तुम्हें ठुकरा दूँ इतनी सी बात पर! जाओ, मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ!"

मणि सँभल कर उठ बैठी। उसके मुख-प्रदेश पर दर्प की आभा चमक रही थी। वह स्त्रियोचित मर्य्यादा से निखर उठी। किशोर ने उसकी ओर देखा और देखा एक बार मणि ने उसकी ओर। दोनों का हृदय एक दूसरे को स्वच्छ दीख पड़ा—ऐनक सा स्वच्छ! कहीं भी दाग नहीं—कहीं भी धब्बा नहीं!

किशोर प्रसन्न हुआ, उसका खेद जाता रहा, और मणि को बहलाने के विचार से बोल उठा—"आज हमलोगों ने प्रातःकाल का समय खो दिया मणि! ख़ैर, चलो आज खुल कर समुद्र में स्नान करें और बाबा (जगन्नाथ जी) का दर्शन कर अपना अवसाद मिटाएँ। जगन्नाथपुरी में आया हूँ—एक बार बाबा का दर्शन तो करना ही चाहिये!"

मणि कुछ देर चुप रह कर आप-ही-आप बोल उठी—"उठो, चलो?"

किशोर उठ कर बाहर आया। मणि भी दूसरे कमरे में ट्रंक खोलने को चली गई।

कुछ देर के बाद मणि ने अपने दोनों के स्नान के लिए अच्छे अच्छे कपड़े निकाले। इतने में किशोर भी आ पहुँचा। दोनों बाहर की ओर चल पड़े।

मणि के लिए यह पहला ही अवसर था कि वह समुद्र के उन्मुक्त सौंदर्य को देखे। दिगंतव्यापी सागर का वह मनोमुग्धकारी सौंदर्य! तरंगावलियों का आपस में मिल कर टकराना और उनमें अपने अस्तित्व को खोकर दूसरी तरंगों से मिलने को आकुल होना और फिर उनमें समाहित हो जाना! वह स्वप्न था या कठोर सत्य? दोनों रेत के टीले से सागर का निर्मुक्त सौंदर्य अपलक दृष्टि से देखने लगे। कितनी तन्मयता थी—कितना उन्माद का नशा था! सागरीय तरंगमाला की वह आँखमिचौनी—वह अनुराग—अपने आपको मिटाकर अंतर्निहित हो जाने की वह आकुल आकांक्षा! वह स्नेह के स्वर में बोल उठी—"देखो! वह देखो—किशोर! तरंग किस तरह एक के बाद एक आकर अपना अस्तित्व गंवा रही है।"

"और उसी तरह मैं चाहता हूँ कि मेरा अस्तित्व तुम्हारे अस्तित्व में निहित हो जाय—मणि!"

मणि के अधर-प्रदेश पर हल्की-सी मुस्कान दौड़ गई। वह मुस्किराती-सी बोल उठी—"सच?"

"हाँ, सच मणि! आखिर प्रेम........! आओ, आज हमलोग इस प्रेमदेव के निकट प्रेम की दीक्षा लें!"

"पर, कहीं उससे विमुख हो जाओ तब?"—मणि के मुँह से अनायास निकल पड़ा।

"तब?"

"हाँ, तब?"

"तब, यही समुद्र मेरे प्रेम की समाधि बनेगा और मैं इसी समुद्र में.........!"

"बड़े निष्ठुर हो, किशोर !"

दोनों प्रेम में इतने आगे बढ़ जा रहे थे कि उन्हें आज की घटना का कुछ ध्यान ही न रहा। कुछ देर पहले जितना उन दोनों के हृदयों में विषाद था, उतनी ही अभी उत्फुल्लता—उसी सागर सी उत्फुल्लता थी। दोनों प्रेम में विभोर थे।

दोनों आगे की ओर बढ़े। किशोर ने कपड़े उतारे और मणि भी कपड़े उतारने लगी। मणि ने देखा—अनगिनत यात्री समुद्र में स्नान कर रहे हैं, उन ढेवों के बीच, जिन्हें देख कर भय उत्पन्न हुए विना नहीं रह सकता। मणि को आश्चर्य हुआ ! बांसों ऊँची उठी हुई लहरों में अपने को विलीन कर देना—फिर उसमें से आप-ही-आप विहँसते हुए निकल पड़ना—कितना सुंदर दीख रहा था। स्त्री-पुरुषों का ठिकाना नहीं। आखिर सभी तो समुद्र में स्नान करते हैं, फिर डरने की बात ? डरने की बात कैसी ? मणि तो तैरना जानती है—उसे तैरने में काफी मजा भी आता है। मणि देख रही थी एक दंपति को स्नान करते हुए। दोनों—स्त्री पुरुष—कितनी तल्लीनता से हँस-हँस कर बातें कर रहे थे और बीच-बीच में एक दूसरे को अंजलि से जल डाल रहे थे। मणि के हृदय में हुआ—कितना अच्छा हो, यदि हमलोग भी इस आनंद का अनुभव करें। वह इस दृश्य को देखने में ऐसी विभोर थी कि उन दोनों के सिवा उसके मस्तिष्क में और कुछ

था ही नहीं। उसी समय हठात् किशोर की बात कान में गई—'मणि! आओ, हमलोग भी स्नान करें!' मणि का ध्यान जैसे भंग हुआ। वह चौंक कर बोल उठी—"पहले तुम स्नान कर लो, पीछे मैं करूंगी।"

किशोर ने कहा—"नहीं-नहीं—हमलोग साथ ही नहाएँ।"

और वे दोनों साथ-ही साथ जल की ओर अग्रसर हुए।

मणि झीनी-सी साड़ी पहने हुए थी। उसने अपनी आजानु-लंबित केश-राशि खोल दी और छाती भर पानी में डुब्बी लगाई। किशोर भी नहा रहा था। किशोर के आनंद का क्या कहना? इसके पहले इतने निकट से, इतनी स्वच्छंदता के साथ मणि के उन्मुक्त सौंदर्य को निरखने का उसे कभी अवसर न मिला था। उसने झीने भींजे हुए कपड़े से उसकी देह की गठन, उभरा हुआ वक्षस्थल, सुपुष्ट नितंब, कदली-सी जांघ को, चतुराई से—बड़ी सुघरता के साथ, बार-बार—न जाने कितनी वार निहारा होगा। उसे लगा—जैसे सौंदर्य की साकार प्रतिमा उसके सामने उसे वरदान देने को खड़ी है। जल के ऊपर उसकी लंबी लटें छितराई पड़ी थीं। आह! इस सौंदर्य का क्या कहना! जी भर कर—अघा कर—वह सौंदर्य-सुधा-सागर में संतरण करने लगा। इसी समय मणि की चपलता थिरक उठी, वह बोली—"क्यों किशोर! चलो, दो-एक हाथ हमलोग तैरें! देखें, कौन कहाँ तक तैर सकता है? न तैरोगे?"

"हाँ-हाँ, लगे हाथ क्यों न तैर लें? पर, अधिक नहीं। और

उधर देखो ! समुद्र की लहर कितनी तेजी के साथ बढ़ती आ रही है ।"

मणि ने उसी ओर दृष्टि फेरी । वह भयभीत हुई—डरी । उसने अनुनय के स्वर में किशोर से कहा—"तैर तो सकती थी, पर नहीं; मुझे जल से निकलने दो मैं और न ठहरूँगी—मुझे बड़ा भय लगता है । जान पड़ता है—समुद्र राक्षस-सा ग्रास करने को बढ़ा आ रहा है !"

किशोर हँस पड़ा । बोला—"डरने की कोई बात नहीं मणि ! देखो असंख्य नर-नारी किस तत्परता के साथ लहरों का स्वागत करने को तैयार खड़े हैं । तुम क्यों डर रही हो ? ठहरो, मैं तुम्हें अच्छी तरह पकड़ रखता हूँ ।"

"नहीं नहीं ।"

मणि नहीं- नहीं करती ही रह गई तब तक लहर बहुत पास आ चुकी थी । अब दौड़ कर मणि इससे निकल नहीं सकती थी । फिर भी मणि भागने को मुड़ी पर किशोर ने अपनी भुजा-पाश में उसे आबद्ध कर रखा । मणि मानो बंध-सी गई । मणि ने देखा—पहाड़ सी ऊंची लहर उस पर से गुजरने को है । वह भयभीत होकर किशोर से लिपट गई । जीवन का कितना निष्ठुर मोह ! किशोर उसे कस कर पकड़े रहा । लहरें चट्टान जैसी आईं और क्षण मात्र में चली भी गईं । मणि भय से काँप रही थी । उसने एक-दो घूँट पानी पी लिया था फिर भी इन लहरों में उसे जो एक तरह की परितृप्ति मिली—वह बड़ी ही अभूतपूर्व थी—बड़ा ही आनंदमय था !

मणि ने अपने को पल भर में संयत किया और किशोर का हाथ छुड़ाते हुए बोल उठी—"तुम बड़े वैसे हो किशोर ! मैं यदि भँस जाती—भँस जाती तो ?"

"तो मैं भी तुम्हारे साथ भँस जाता, मणि !"

"रहने दो, यह केवल कहने की बातें हैं। तुम क्यों मेरे चलते जान देते ?"

"तो क्या ऐसी जान फिर दूसरे समय के लिए रख ली जाती ? क्यों, मणि ! क्या यह तुमसे भी अधिक महँगी है ?"

"सच ?"

"नहीं तो झूठ ?"

मणि हँस पड़ी, किशोर भी हँस पड़ा।

मणि बोली—"और अधिक न कहूँगी, किशोर ! चलो बाहर; बड़ी थकान-जैसी बोध हो रही है—अधिक नहाना ठीक नहीं।"

किशोर ने अपनी स्वीकृति दे दी। अब मणि के लिए कठिन समस्या थी—जल से बाहर कैसे निकला जाय ? उसे अपने आप का ज्ञान हो आया। उसने देखा—भींगे हुए कपड़े उसके बदन में चिपके पड़े हैं और उससे छन कर सौंदर्य फूटे पड़ता है। उसे हुआ—इस तरह अर्ध-नग्न स्नान करना उचित न हुआ। पर वहां और उपाय ही क्या था ? बड़ी कठिनाई से अपने बदन से कपड़े को हटाया, फिर भी उसकी गुराई स्पष्ट दीख रही थी। उसने मन में कहा—खैर, अब इस तरह, ऐसे झीने कपड़े पहन कर नहाने न आऊँगी। उसे आज अपने पसंद के कपड़े पर बड़ा रोष हुआ। कितनी निर्ल्लजता ! बड़ी मुश्किल से वह जल के

बाहर आई। उसने कपड़े बदले, धोती फेंची और धीरे-धीरे दोनों अपने बंगले की ओर चल पड़े।

दिन अधिक चढ़ आया था। किशोर चाहता था—चल कर बाबा जगन्नाथ के दर्शन किए जाएँ; पर, मणि ने दर्शन की बात दूसरे दिन के लिए टाल दी। दोनों अपने बंगले पर आ पहुंचे।

उस दिन रसोई का प्रबंध नहीं हो सका। सबेरे से दस बजे तक तो किशोर को मणि के रिझाने में ही लगा उसके बाद दोनों नहाने को ही गए और नहाने में भी काफी देर लगाई। इसलिए उस दिन बाजार के भोजन पर ही दोनों को संतोष करना पड़ा। दोनों खा-पी कर आराम करने के बाद गृह-प्रबंध में लग गए।

—तेईस—

आनंदमय जीवन का सुदीर्घ समय वर्षों का पलों-जैसा जान पड़ता है और ऐसा ही मणि और किशोर के लिए पुरी का सहवास कहा जा सकता है। मणि ने पुरी में आकर जो एक प्रकार का आनंद अनुभव किया था, वह उसके जीवन का वह सर्वोत्तम भाग था, जो सदैव नहीं मिला करता। इतने ही समय में संसार में कैसे-कैसे परिवर्त्तन घटे, पर उन दोनों के सहवास में किसी तरह का व्यतिरेक न हुआ। सफलता का इससे अच्छा सबूत और क्या हो सकता है ? किशोर भला फिर क्यों इस जीवन के वसंत को यों हाथ से गँवाता ? जान पड़ता था, मणि मंत्रबल से वश की गई है, नहीं तो संभव नहीं कि वह अपने प्रिय परिवार—अपने इष्ट मित्र को छोड़कर किशोर के साथ यों प्रवास के लंबे दिन काटने में समर्थ होती।

पर इस आनंदोत्सव के अवसर पर भी कभी-कभी ऐसा भी होता कि वह प्राचीन स्मृति अपने में सजग पाती। उस दिन उसका हृदय अपने-पराए के लिए बेचैन-जैसा हो जाता। वह एक तरह से छटपटा उठती और उस विकलता में भी—उस स्मृति की टीस में भी—उस दर्द के साथ भी एक प्रकार की उत्फुल्लता ही मिलती। वैसे समय में उसके अंतस्तल से एक विषाद की ध्वनि निकल पड़ती जिसे सुन कर, समझ कर, वह चौंक-सी उठती और अपने को वहीं से उसी दृष्टि-बिंदु से, देखती—वह कितनी आगे वा कितनी पीछे जा सकी है। मणि स्वयं नहीं कह सकती—वह आगे बढ़ रही है वा पीछे की ओर ही खिसकती जा रही है। ऐसे समय में वह खिन्न-जैसी हो जाती। न किसी से मिल सकती और न बातें ही कर सकती। किशोर भी यदि पूछ बैठता तो स्पष्ट कह देती—'न जाने क्यों मैं उदास हो उठती हूँ, इसका कुछ पता ही नहीं चलता।' और कहना नहीं होगा कि, किशोर ऐसी अवस्था में घबरा-सा जाता। और घबराता क्यों नहीं ? कोई प्रेमी प्रेमिका का विषाद किसी भी अवस्था में देखना पसंद नहीं कर सकता। और यही बात यहाँ किशोर के लिए भी कही जा सकती है।

पुरी में पहुंचने पर मणि और किशोर के बीच जो एक मनो-मालिन्य की दीवार खड़ी हो रही थी, वह प्रेमाभिनय की घड़ियों में ढह गयी। इस बीच में कई वार किशोर के मित्र कमलाशंकर आए और गए, पर किशोर की कोई ऐसी हरकत न दीख पड़ी जिससे यह पता चले कि किशोर का रुख बदला हुआ है। मणि

अब स्वच्छंद भाव से कमलाशंकर से मिलती-जुलती, बातें करती और उसके घर आती-जाती। आनंदी का आनंदमय जीवन देख-देखकर मणि प्रसन्न होती—खिल उठती और न जाने उसके हृदय में कैसे-कैसे भाव उदित होते—मिटते और नये भावों की सृष्टि होती। मणि के लिए यह सचमुच सुख की घड़ियाँ थीं और कदाचित् ऐसी घड़ियाँ जीवन में बहुत ही कम आया करती हैं।

एक दिन आनंदी के घर पार्टी थी और यह पार्टी खासकर मणि और किशोर के लिए ही दी जाने वाली थी। आनन्दी ने पार्टी के लिए उस दिन तरह-तरह की चीजें पकाईं। ड्राइंग रूम को अपनी चित्रकारी से सजाया। कमलाशंकर अपने मित्र को लिवानेके लिए गए। घोड़ागाड़ी पर कमलाशंकर—अपने प्रिय मिहमान किशोर और मणि को लिवा लाए। एक दिन जिस किशोर को कमलाशंकर के साथ मणि को घोड़ा गाड़ी से उतरने के समय रंज हुआ था, आज उसी किशोर को कमलाशंकर के साथ मणि को एक ही कोच पर बैठे देखकर प्रसन्नता का अनुभव हुआ। विचित्र है मानव-हृदय को पहचानना! रास्ते में कमलाशंकर ने मणि से बातें कीं और सभी ने खुलकर उन बातों में अपना योग दिया। यथासमय गाड़ी कमलाशंकर के दरवाजे लगी। आनंदी जरा आगे बढ़कर अपने प्रियं मिहमान की अभ्यर्थना करने आई और मणि को अपने साथ भीतर लिवा लाई।

मणि ने भीतर पहुंचते ही देखा—आनंदी ने कितनी व्यस्तता के साथ भोज्य वस्तुओं के बनाने का सारा भार लिया है और

कितनी सुघराई के साथ । मणि का आश्चर्य थिरक उठा, उसकी उमंगें नाच उठीं । वह अपने को जब्त न कर सकी—बोल उठी—"क्यों आनंदी दीदी ! तुमसे अकेले कैसे बन पड़ता है इतनी चीजों का बनाना ? तुम तो बड़ी वैसी दीख रही हो, दीदी !"

आनंदी हँस पड़ी और विनोद भरे स्वर में बोली—"ऐसी कौन सी चीजें मैंने बनाई हैं, मणि! जिसके लिए तुम्हें आश्चर्य हो रहा है ? जिन मिहमानों के लिए ये चीजें बनाई गई हैं, जानती हो, मणि! उन्हें देखते हुए ये चीजें बड़ी फीकी जान पड़ती हैं। आखिर मैं करती ही क्या ? क्या कर सकती थी मैं ? जली-अधजली जैसा जानती थी, पकाया । यदि ये चीजें तुम्हें पसंद आईं तो अहोभाग्य नहीं तो आज पूरी बुद्धू बनूंगी । मुझे तो होता है—आज मैं काफी छकूँगी । देखो मणि ! कहीं इन चीजों के साथ बदमाशी न कर बैठना—मैं शर्मा जाऊँगी ।"

मणि ने देखा—आनंदी इन बातों को कितनी सुघाई के साथ कह गई । मणि मुस्किराती हुई बोल उठी—"बलिहारी है तुम्हारे अभ्यस्त हाथों की ! फिर भी तुम कह रही हो दीदी ! ये चीजें मुझे पसंद न आयँगी ? आखिर ये न पसंद आयँगी तो और आएँगी क्या दीदी ?"

आनंदी का विनोद नाच उठा । वह बोल पड़ी—"ये बातें कहने की नहीं, मणि ! आखिर अपनी-अपनी पसंद भी तो कोई चीज है । जो चीजें मेरी पसंद की हों, वे ही दूसरों को भी पसंद आएँ —यह कभी संभव नहीं । मान लो, जिस तरह वे तुम्हारे पसंद के

हैं—क्या उसी तरह दूसरे भी उन्हें पसंद करेंगे ? इसी को कहते हैं टेस्ट (Test) मणि !"

मणि कट कर रह गई। इतनी-सी बातों से उसका चेहरा तमतमाउठा। उसे लगा—किसी ने उसके जले घाव को छू दिया। उसे हुआ—उसके अन्तर्प्रदेश की कोमल तंतुओं में किसी ने ठेस लगा दी। रोष से उसके गुलाबी चेहरे पर लाली दौड़ पड़ी और उस लालिमा में उसका विकसित सौंदर्य खिल उठा। आनंदी ने देखा—मणि पहले से कहीं अधिक सुन्दर—कहीं अधिक शोभामयी—कहीं अधिक आकर्षक हो उठी है। पर, आनंदी को यह समझते देर भी न लगी कि, मणि अपने को भूल रही है—मणि अपने से वहुत दूर आगे निकल पड़ी है। कुछ क्षण तक दोनों नीरव थीं—कदाचित् निस्पंद। पर, आनंदी को परिस्थिति संभालनी थी, इसलिए उसे ही फिर से बोलना पड़ा—"मैंनेजो उदाहरण तुम्हारे सामने पेश किया मणि ! वह शायद तुम्हें जँचा नहीं। पर, मैंने भूल की है; मुझे तो कहना चाहिए—मान लो जिस तरह वे मेरे पसंद के हैं, क्या उन्हें उसी तरह तुम भी पसंद कर सकोगी ? तुम्हीं कहो, क्या मैं कुछ अत्युक्ति तो नहीं कर रही हूँ ? क्योंकि मैं तो जानती हूँ, आखिर टेस्ट भी तो कोई चीज है !"

आनंदी को अपना उदाहरण आप चुनते देख कर मणि विहँस पड़ी। उसका क्षणिक रोष काफूर हो गया। उसकी लाली उड़ पड़ी और चेहरे पर हल्का गुलाबी रंग चढ़ गया। आनंदी ने इस बार देखा—मणि में जो एक तरह की मादकता—हाँ, इसे मादकता

ही कहेंगे—आ गई थी, वह उसे देखते हुए उचित ही था, क्योंकि मणि उसी साँचे की ढली है—अब प्रसन्नता में बदल गई। आनंदी ने कुछ वह उदाहरण उसे चिढ़ाने के लिए—रोष के लिए—नहीं कहा था। आनंदी विनोदी जीव ठहरी और ऐसा कहना शायद उसके लिए अन्याय भी नहीं था।

बातों-ही-बातों में जरा देर लग ही गई। कमलाशंकर भीतर आकर जानना चाहते थे—देर क्यों हो रही है। उन्होंने आकर देखा—आनंदी और मणि—दोनों बातें करने में व्यस्त हैं। मणि ने देखा—उसके सामने कमलाशंकर खड़े हैं। वह जरा अस्तव्यस्तता में पड़ गई। उसने समझा—चुप्पी साधे रहने में शायद इन्हें कोई खेद हो। इसलिए आनंदी को बोलने का अवसर न देकर वह स्वयं बोल उठी—"कमल बाबू! आप हम लोगों के बीच इस तरह टपक क्यों पड़े? क्या एक बात पूछूँ? उत्तर दीजिएगा?"

"एक क्यों, सौ पूछिए?"—कमलाशंकर ने मुस्किराते हुए कहा।

"सौ तो नहीं, एक ही पूछूँगी—और वह यह कि, आप मेरी दीदी को कितना पसंद करते हैं? बुरा न मानिएगा—मेरा प्रश्न जरा भद्दा-सा जान पड़ेगा पर, मैं इतना ही जानना चाहती हूँ।"

कमलाशंकर को हुआ—बोध होता है, इन दोनों में अभी यही बात चल रही थी। वह जरा असमंजस में पड़ गए। उन्होंने सोचा—न जाने मणि किस पक्ष से बोल रही है। उन्हें अन्दाज न लगा—किसका पक्ष समर्थन करें—आनंदी का वा मणि का?

आनंदी तो अपनी है ही, उन्हें अपने प्रिय मिहमान की ही अधिक खातिर करनी चाहिए। पर, वह आनंदी के स्वभाव से पूर्णतः परिचित थे। उन्होंने यह भी अनुमान किया कि आनंदी ने इसका उत्तर दे दिया होगा। फिर भी उन्हें जवाब देना था, इसलिए वह बोल उठे—भद्दा-वद्दा कुछ नहीं, मणि देवी! जो कुछ आपने पूछा है—उसका उत्तर तो मेरे पास इतना ही है कि, आप की दीदी साहिबा मुझे बेहद मानती हैं। मैं इन्हें न मानूं तो मेरे पक्ष में यह अन्याय ही होगा। और अधिक मुझे कहना नहीं है।"

"पर, यह तो आपने सिद्धांत की बात कही। मैं सिद्धांत नहीं चाहती, मैं यथार्थ जानना चाहती हूँ!"—मणि बोल उठी।

कमलाशंकर ने देखा—मणि उसके सामने जिज्ञासु के रूप में खड़ी है। उस समय मणि का आकर्षक सौंदर्य, उसकी रेशमी बासंती साड़ी, कानों में हिलनेवाली डायमंडकट की इयरिंग, शोभन वक्षस्थल पर के हिलते हुए नेकलेस—किस-किस को वह देखे—उसके सौंदर्य पर पालिश के काम हो रहे थे। ऐसी निखार इसके पहले उन्होंने मणि में न देखी थी। उस पर उसका यह गुदगुदानेवाला प्रश्न कमलाशंकर को बड़ा प्रिय जँचा। वह मुस्किराते हुए बोल उठे—"मैं सिद्धान्त की बातें नहीं कह रहा था। ख़ैर, इस प्रश्न का उत्तर मेरी ओर से देना शायद ठीक न होगा—आप अपनी दीदी साहिबा के पास ही इसका उत्तर पा जायँगी।"

आनंदी अब तक चुपचाप खड़ी थी, अब उसके लिए चुप्पी साधे रहना कठिन हो उठा। वह बोल उठी—"मुझ से मणि को

उत्तर मिल चुका है। मैंने तो साफ कह दिया कि जितना तुम उन्हें पसंद करती हो उससे बहुत कम मैं इन्हें पसंद करती हूँ।"

मणि बीच ही में बात काट कर बोल उठी—"सो बात नहीं है—सो बात नहीं है, कमल बाबू! दीदी, यह चालाकी मेरे सामने! मैं क्या तुम से ज्यादा उन्हें पसंद करती हूँ ? और ऐसा मैं करूँगी क्यों ?"

मणि बोलते-बोलते लजा-सी गई। मणि को हुआ—कमलाशंकर पर जितना आनंदी का अधिकार है उतना किशोर पर मेरा अधिकार क्यों ? और जो संबंध यहां..........। वह शर्म से गड़ी जा रही थी। बोध हो रहा था—आज वह बुरी तरह इन दोनों के बीच—खासकर कमलाशंकर के सामने आप-से-आप बँध गई है। कमलाशंकर ने देखा—मणि देवी को इस तरह जब्त करना उचित नहीं। इसलिए रुख बदल कर वे बोल उठे—"आनंदी! जान पड़ता है, तुम बातों ही में मणि देवी को फँसा रखना चाहती हो, क्यों ? भाई खिलाने-पिलाने का इन्तजाम.......।"

"हाँ, आप आगे बढ़िए। कर रहे हैं क्या ? मणि देवी को आप इस तरह क्यों परेशान करेंगे ? और आप के दोस्तमन वहाँ अकेले बैठे हैं। जाइए बाहर! हाँ, मणि!.........अजी रामू की माँ, पानी दे मणि को! मणि! जाओ मुंह-हाथ धो लो।"

मीटिंग शेष हुई। कमलाशंकर बाहर की ओर बढ़े, आनंदी अपने काम में लगी और मणि कमरे की ओर बढ़ी।

कुछ ही मिनटों में आनंदी ने ड्राइंग रूम के टेबल पर तीन तरफ खाना सजा दिया। कमलाशंकर किशोर के साथ और आनंदी

मणि के साथ ड्राइंग रूम में आई। आज वहां का दृश्य देख कर किशोर को यदि आश्चर्य हुआ हो तो यह असंभव नहीं, पर आश्चर्य तो कमलाशंकर को हो रहा था—अकेली आनंदी ने कितनी तत्परता और लगन के साथ इतनी तैयारियाँ की हैं। क्या खाने-पीने की वस्तुओं में, क्या ड्राईंग रूम के सजाने में, क्या टेबल पर करीने के साथ डिशों और रकाबियों को रखने में! आनंदी की इस पटुता पर कमलाशंकर ने गौरव का अनुभव किया और किशोर को हुआ—आनंदी और मणि में कितनी विभिन्नता है। आनंदी चतुर, दक्ष और सुरुचिसंपन्ना—और मणि चंचल, अल्हड़ और बेपराह-तबीयत! मणि सोच रही थी—शायद सोच ही नहीं रही थी अनुभव कर रही थी—वह आज आनंदी के सामने आप-ही-आप नीचे को उतरती जा रही है।

सभी अपनी-अपनी कुर्सियों पर आ बैठे। मणि को हो रहा था कि, आज वह पुरुष-समाज के बीच बैठ कर पार्टी में सम्मिलित न हो। वह कुछ ही सेकेंड के बाद उठ खड़ी हुई और बोली—"मैं नहीं बैठूँगी।"

आनंदी ने हंसते हुए कहा—"कुछ क्षण पहले तुम किस ख्याल से बैठ गई? अब तुम्हें बैठना ही पड़ेगा। इस तरह तुम अपने बैठे हुए मिहमानों को अपमानित न करो, मणि!"

मणि न जाने क्या सोच रही थी। वह आनंदी के अपमान के शब्द सुन कर मानो चौंक-सी उठी। वह थोड़ी देर के लिए जड़-सी हो रही, इसके बाद उसने अपने को स्थिर किया और

सँभल कर बोल उठी—"इसमें अपमान की कौन-सी बात है, दीदी! अगर समझती हो कि मेरे व्यवहार से अपमान हो रहा है तो क्या तुम मेरा अपमान नहीं कर रही हो ? तुम्हीं क्यों न बैठो ?"

आनंदी जरा असमंजस में पड़ी। उसके लिए यह समस्या जटिल-सी बोध हुई। और ऐसा सोचना स्वाभाविक ही था। कारण था—वह समझ रही थी कि, मणि अब उसी हालत में बैठ सकती है, जब मैं भी इसमें सम्मिलित होऊँ। पर, यह होना आनंदी के लिए कठिन था। आनंदी अबतक अन्य पुरुषों के साथ कभी बैठकर भोजन में सम्मिलित न हो सकी थी। अन्य पुरुष की बात तो अलग रहे—वह स्वयं अपने पति के साथ भोजन करने में अबतक समर्थ न हो सकी थी यद्यपि कई बार कमलाशंकर ने इसके लिए अनुरोध तक किया था। अब आनंदी को आज कोई न कोई राह निकालनी ही पड़ेगी नहीं तो, जैसा कि मणि ने कहा—'क्यों इस तरह अपमान कर रही हो ?'—आनंदी को साथ देना ही लाजिमी था। पर, सौभाग्य से आनंदी की बेवशी और असमर्थता देखकर कमलाशंकर ने इसमें भाग लिया। वह बोल उठे—"आज आपने अपनी दीदी को खूब ही छकाया, मणि देवी ! इन्हें तो इतनी झिझक है कि, मेरे साथ भी भोजन नहीं कर सकतीं पर, आज देखता हूँ—आप इन्हें मना कर ही दम लेंगी। क्यों आनंदी !"

इस पर किशोर ने भी जोर दिया, बोला—"सभ्यता का जहाँ तक तकाज़ा है, आवश्यक तो यह है कि मिजमान भी मिहमान के साथ बैठकर भोजन में साथ दे। अब वह दिन दूर गया जब पति-पत्नी

अलग-अलग, छिपकर, भोजन करते। यहाँ दूसरा तो कोई है ही नहीं। मुझे आप अपना मित्र समझ रही हैं, फिर क्या मित्र की सम्मान-रक्षा आप नहीं कर सकतीं ?"

आनंदी का असमंजस दूर न हुआ, पर मणि देवी की बाँछें खिल गईं। उसे हो रहा था, आज आनंदी दीदी को बैठाकर ही दम लूँगी। इधर आनंदी सोच रही थी—जन्मगत संस्कार को दूर करना सहज नहीं—इसके लिए कठोर साहस की आवश्यकता है। वह कुछ क्षण तक इसी तरह भावावेश में पड़ी रही, अंत में बोल उठी—"मुझे इन्कार नहीं है एक साथ बैठने में, पर यहाँ तो यह है कि परोसने का काम पड़ेगा ही। मैं अवश्य आपलोगों के बीच रहूंगी, आपके विनोद में साथ दूँगी। और क्या चाहिए ? भोजन में साथ देना इतना जरूरी नहीं है जितना कि............।"

"रहने भी दो दीदी ! यह चालाकी !"—मणि बोल उठी—"आज चालाकी से काम न चलेगा। परोसने का काम मैं करूँगी।"

मणि इतना कहकर भीतर की ओर जाने को तैयार हुई।

आनंदी कहना चाहती थी—मुझे साथ बैठकर भोजन करने की आदत नहीं जैसा तुम्हें है। तुम बैठ सकती हो, क्योंकि ऐसा तुम करती आ रही हो, और यह तुम्हारे लिए स्वाभाविक है भी। पर उसने मुंह खोलकर ऐसा कहा नहीं और वह इसलिए कि, कहीं मणि इससे अपने को अपमानित न समझ ले। इसलिए वह बात बनाकर बोली—"चालाकी की बात नहीं, मणि ! मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ, पर इतना-सा.........।"

"नहीं—हरगिज़ नहीं, आज तुम्हें वही करना पड़ेगा जो मुझ से कराना चाहती हो, नहीं तो हम दोनों पीछे ही बैठें।"—मणि ने तनकर कहा।

किशोर ने समझा—आज दोनों आपस में अच्छा उलझ रही हैं और कमलाशंकर ने समझा—इस तरह पार्टी का रंग ही नहीं जमेगा। फिर इसकी आवश्यकता ही क्या थी? आनंदी का सारा परिश्रम व्यर्थ होता जा रहा है। इसका बैठना ऐसी बेजा बात नहीं, और वह भी ऐसी हालत में जब मणि देवी हमलोगों का साथ दे रही हैं। इसलिए वह आनंदी की ओर मुखातिब होकर बोल उठा—"इसमें संकोच की बात क्या है, आनंदी! मणि देवी हमलोगों का साथ दे ही रही हैं और तुम्हारे बैठने से पार्टी का रंग जमेगा, खासकर उस हालत में जब तुमने स्वयं इतना कष्ट इस पार्टी के लिए उठाया है।"

किशोर ने भी कमलाशंकर की बातों का समर्थन किया और मणि का अनुमोदन। अब आनंदी सब तरह से विवश हो गई—निरुत्तर हो गई। आनंदी को आज मणि के सामने अपनी हार स्वीकार करनी ही पड़ी।

कुछ क्षण तक आनंदी चुपचाप खड़ी रही, उसके बाद न जाने क्या सोच कर बोल उठी—"खैर, आपलोगों की ही विजय रही; पर, मणि! मुझे संभालते जाना होगा, मैं आज तुम्हारी राह पर आ गई हूँ।"

टेबिल की तीन ओर पहले ही डिशों और रिकाबियों से भरी

थी, चौथी ओर भी डिशें और रिकाबियाँ सजाई गईं। अवश्य मणि ने ही इसमें प्रमुख भाग लिया। वह भोजन भी करती जाती थी और खुल कर हँसती भी। अवश्य उस दिन की पार्टी अच्छी जमी। आनंदी की जो एक झिझक थी वह दूर हुई वा नहीं—कौन जाने।

—चौबीस—

पार्टी शेष होने के बाद चारों व्यक्तियों में बड़ी देर तक विनोद-वार्त्ता होती रही। अवश्य आज की पार्टी आनंदजनक रही। आनंदी को यद्यपि आज की पार्टी बड़ी महँगी पड़ी, फिर भी आतिथ्य सत्कार के नाते उसे यहाँ तक उतर आना पड़ा। इसलिए उसकी अंतरात्मा रह-रह कर कुंठित होती। वैसे समय में यदि आनंदी के लिए सांत्वना की कोई बात थी तो इतनी ही कि उसने जिसके लिए इतना परिश्रम किया था, वह सफल हुई। फिर अपनी सफलता पर किसे प्रसन्नता नहीं होती है—चाहे वह सफलता कितने ही अधिक मूल्यों में क्यों न खरीदनी पड़े।

इतने दिनों के भीतर मणि न जाने कितनी वार आनंदी के घर आई होगी, पर उसे रात को रहने का अवकाश केवल उस एक दिन के सिवा फिर न मिला। उस रात को मणि के रहने पर यद्यपि आनंदी को बड़ी प्रसन्नता हुई थी, पर कमलाशंकर से यह जान कर कि मणि को उस दिन आग्रहपूर्वक रख लेना उसके पक्ष में अच्छा न रहा, फिर से आनंदी ने न तो रहने का आग्रह ही किया और न मणि स्वयं रहने को उत्सुक ही हुई। आज न जाने क्यों आनंदी वही प्रस्ताव मणि के सामने रखने जा रही थी। उसका नारी-हृदय रह-रह कर उसे ऐसा कहने को वाध्य कर रहा था, पर आनंदी कहने-कहने को होकर भी कह न रही थी। अवश्य उसके ओठों पर कहने के शब्द जोर कर रहे थे, पर उनका स्पष्ट उच्चारण हो ही नहीं रहा था। उसे शायद एक तरह का भय वा संकोच हो रहा था कि, कहीं मणि की पूर्व-स्मृति जागृत न हो जाय और इससे उसे काफी खेद हो, और यह जानकर कि, किशोर को यह प्रस्ताव कष्टकर जान पड़े। पर, आनंदी के लिए यह उचित जान पड़ा कि, क्यों न एक वार पूछ देखूँ और उसने विना कुछ सोचे-विचारे कह डाला—"मणि ! रह न जाओ, क्या अच्छा हो कि, हम दोनों बहनें उस दिन-जैसा साथ साथ सोएँ। और ....।"

आनंदी से 'और' के बाद और कुछ न बोला गया। वह जो कुछ कहने जा रही थी, उसने अनुभव किया कि किशोर को वह बात अखर जायगी। किशोर समझेगा कि उसी पर जान बूझ

कर प्रहार किया जा रहा है और इससे उसका अपमान हो रहा है। आनंदी न जाने और क्या-क्या सोच जाती, पर किशोर ने उसे ज्यादा सोचने का अवसर न दिया। वह उसकी बातों का समर्थन करते हुए बोल उठा—"अच्छा है, मणि! रह जाओ न, कम-से-कम साथ-साथ सोने का आनंद..................अच्छा, आनंदी देवी, मुझे अब इजाजत हो।"

किशोर बोलते-बोलते उठ खड़ा हुआ। मणि ने समझा—किशोर मुझे छोड़े जा रहा है, इसलिए वह तुरत ही चंचल हो उठी। उसका हृदय डोल गया और वह जल्दी में बोल उठी—"किसी दूसरे दिन रह जाऊँगी, दीदी! पर आज नहीं। मैंने पुरी-यात्रा पर एक आर्टिकल लिखा है, वह अधूरा ही पड़ा है, आज उसे ही पूरा करना है। मैं उसमें तुम्हारी आज की पार्टी की बात भी जोड़ देना चाहती हूँ और उसमें यह भी लिखूंगी कि आनंदी देवी ने आज नवीन सभ्यता को जिस साहस पूर्ण ढंग से अपनाया, वह बहुत कम ही देखने में आता है।"

आनंदी ने और अधिक रहने पर जोर न दिया। उसने समझा मणि अपने बचाव के लिए अच्छा बहाना सामने रख रही है। इसलिए और अधिक आग्रह न कर विनोद के स्वर में बोल उठी—"जानती हूँ, मणि! तुम कैसी लिक्खाड़ बनती जा रही हो। खैर, मैं तुम्हें रोक कर उसमें वाधा नहीं पहुँचा सकती। हाँ, मेरे विषय में जितना तुम्हें लिखना हो, खुल कर लिखना। मैं अपनी ओर से तुम्हें सम्मति दिए देती हूँ। और भी कुछ?"

"नहीं दीदी ! यही क्या कुछ कम है ? पर, विनती है, तुम इसके लिए खेद न मानोगी ।"

किशोर और मणि साथ-ही-साथ उठ खड़े हुए। कमलाशंकर बाबू और आनंदी बाहर तक साथ-साथ आए। कमलाशंकर बाबू ने किशोर से कहा—"जरा ठहरो, किशोर ! गाड़ी मंगवा देता हूँ। मणि देवी ! जाने में कष्ट होगा, जरा ठहरें, अभी मैं नौकर को............।"

किशोर ने एक वार आकाश की ओर निहारते हुए कहा—"जरूरत नहीं भाई! देखो, रात कितनी स्वच्छ है, इस चाँदनी में तो कोस-दो कोस पैदल जाया जा सकता है ; और इसी में अभी आनन्द भी आयगा। देखो, कितनी ठंढी हवा चल रही है।"

दोनों दोनों को बिदाकर वापस आए । मणि और किशोर शुभ्रमयी चंद्र-ज्योत्स्ना का आनंद लेते हुए अपने पथ पर चढ़ चले।

आज की धौत चाँदनी किशोर के हृदय में, न जाने क्यों उन्माद भर रही थी, उसे आज न जाने क्यों अधिक आनंद हो रहा था मणि के साथ इस चाँदनी में चलने में । न जाने ऐसी कितनी रातें दोनों ने साथ चलकर बिताई थीं, पर आज जैसी प्रफुल्लता मणि ने इसके पहले किशोर में न देखी ।

रास्ते की मोड़ पर पहुँचते ही किशोर ने दूसरे पथ पर पैर बढ़ाया । मणि ने समझा—किशोर दूसरी ओर जाना चाहता है, इसलिये वह बोल उठी—"उधर कहाँ चल रहे हो, किशोर ! चलो घर चलें ।"

"अभी घर चलकर क्या करोगी मणि ! क्यों न हमलोग सागर की नर्त्तन-लीला चलकर देखें ? क्या तुम्हें इसमें विशेष आनंद नहीं आता ?"

"आता क्यों नहीं ? पर, थकी-जैसी मालूम पड़ती हूँ।"

"खैर चलो; पर अधिक देर तक न ठहर सकूँगी।"

"मैं ही अधिक देर तक ठहर कर क्या करूँगा ?"—हँसते हुए किशोर ने कहा और दोनों उस पथ पर बढ़ चले।

दोनों किनारे पर आ पहुंचे, और साथ-साथ धीरे-धीरे टहलते रहे। सागर का आवर्त्तन-विवर्त्तन, तरंगों की अठखेलियाँ, घोर गर्जन, शीतल समीर का स्पर्श और चाँदनी बिछी हुई और उस सैकत-शय्या पर, जिस पर दोनों मचल-मचल कर पाँव रख रहे थे। सचमुच वह बड़ा उन्मादक, बड़ा ही उत्तेजक और बड़ा ही मनोरम दृश्य था ! किशोर टहलते-टहलते एक उत्तुंग सैकत-राशि पर बैठ गया। मणि भी वहीं, किंतु कुछ हट कर बैठ गई। रह-रह कर हवा के तीक्ष्ण झोंके से उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे, उसकी सुकुमार लटें सौम्य मुख-प्रदेश पर छितरा कर एक अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि कर रही थी। किशोर ने मणि को, न जाने कितनी बार, न जाने कितने ढंग में और न जाने किस वेश-भूषा में देखा होगा, पर आज वह मणि में और ही कुछ पा रहा था। एकांत शांत स्थान में इतने उद्दीपन दृश्यों के बीच किशोर ने मणि की ओर ललचाई दृष्टि से देखा, पर मणि की दृष्टि सुदूर प्रांत की लहरों पर गड़ी थी। उसे क्या पता था कि किशोर आज कितना

पागल हो उठा है—कितना उद्भ्रांत वह होता जा रहा है। यौव-नोन्मत्त किशोर की आकांक्षा नाच रही थी, मानव-हृदय का कोमल तंतु किसी अवांछनीय स्पर्श-सुख के लिए उल्लसित हो रहा था। इन दोनों के बीच किशोर था। उसकी धमनियाँ नाच रही थीं, उसकी छाती में जोर का स्पंदन हो रहा था, उसका ज्ञान पीछे की ओर खिसक रहा था, उसकी बुद्धि दिशा-हीन हो रही थी। वह काँप रहा था, पर वह खुद नहीं अनुभव कर रहा था कि क्यों उसकी ऐसी अवस्था हो रही है। उसके लिए वह संक्रांति का अवसर था, वह बड़ा संघर्षमय अवसर था और इस अवसर पर बहुत ही कम आदमी अपने को जब्त रख सकता है।

कदाचित् मणि के लिए भी वह ऐसा ही अवसर हो। उसमें भी यौवन था, लालसा थी, वासना थी। वह भी कदाचित् दैहिक स्पर्श की प्यासी रही हो और ऐसा होना कोई अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता। उसके सामने भी वही उत्तेजक दृश्य थे, उसके सामने भी वही आकर्षक सौंदर्य थां, उसके सामने भी वही मनोरम अवसर था। वह भी चाहती तो इस अवसर से लाभ उठाती। संभव है, वह भी यही सोच रही हो, पर, उसमें वह स्पंदन नहीं था, उसमें वह भंगिमा नहीं थी और न थी उसमें मिलन की वह उत्सुकता—वह छटपटाहट—वह बेकली; पर वह निर्जीव नहीं थी। वह सोच रही थी—हाँ, अनुभव कर रही थी वह सागर के वक्षःस्थल पर खेलती हुई तरंग-माला का। वह सागर की मर्मर ध्वनि में संगीत-स्वर का अनुभव कर रही थी,

उस शीतल समीरण-प्रवाह में अपना जीवन-रस घोल रही थी; और ? और वह रजत-ज्योत्स्ना में सुधा-सीकर का संचय कर अपने को अमर बना रही थी। दोनों की भावनाएँ दो विरुद्ध गति की ओर तेजी से अग्रसर हो रही थीं। दोनों में पार्थक्य था तो इतना ही—दोनों में विभिन्नता थी तो इतनी ही। दोनों बाहर से नीरव थे—निष्क्रिय थे।

इन दोनों की न जाने कबतक ऐसी अवस्था रहती, पर किशोर ने अस्त-व्यस्त होकर वीणा के तार को झंकृत कर दिया। उसने हठात् हाथ बढ़ाकर मणि की उँगलियाँ पकड़ लीं। मणि चौंक उठी, उसका ध्यान भंग हुआ। उसने किशोर की ओर देखा—देखा, उसकी साँस जोर से चल रही है सौर उसकी भाव-भंगी से पता चला वह मनुष्य नहीं—पशु होने को उद्यत हो रहा है। मणि ने किशोर का यह रूप कभी नहीं देखा था। उसे मानो अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। उसने फिर से उसकी ओर दृष्टि फेरी। इस वार वह भयभीत हुई—डरी! उसने हाथ झटक कर अपनी उँगलियाँ छुड़ाईं और जरा रुक्ष होकर बोल उठी—"क्यों ? क्यों तुम इतने चंचल हो उठे ? चलो—चलें; अब और यहाँ न ठहर सकूँगी।"

मणि उठ खड़ी हुई। किशोर कुछ बोलने जा रहा था, पर उससे कुछ कहा न गया। इतनी ही देर में उसे अवकाश मिल गया कुछ सोचने का। उसने अपने को संयत किया, उसने अपनी लुप्तप्राय शक्ति फिर से प्राप्त की और वह उठने का उपक्रम

करते हुए बोल उठा—"हां, चलना चाहिए अब!—यही तो मैं भी कहना चाहता था।"

अंतिम वाक्य उसने बड़ी देर के बाद कहा। उसे स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि वह झूठ बोलकर मणि को भुलाना चाहता है। दोनों अपने पथ पर बढ़ चले, पर साथ-साथ चल कर भी राह में और कोई बातचीत न हो सकी।

मणि ने कुछ देर पहले किशोर के कर-स्पर्श से जैसा-कुछ अनुमान किया था, वह कुछ देर के बाद आप-ही-आप विलीन हो गया। उसे इसका न तो कोई रंज रहा और न इस पर कोई दूसरा विचार। उसका पावन हृदय इस छोटी-सी बात पर न टिक सका। पर किशोर को अपने कुत्सित विचार पर अवश्य कुछ परिताप हुआ—और यही कारण था कि, वह अधिक कुछ बोल न सका।

मणि समुद्र के किनारे ठंढी हवा के बीच बैठ कर अधिक क्लांत हो गई थी। घर आते ही उसे खूब गहरी नींद हो आई। वह अपने कमरे में आ बिछावन पर लेट रही। उसे न तो बत्ती बुझाने का चेत रहा और न दरवाजा बंद करने का ही। वह जैसे ही बिछावन पर गिरी, वैसे ही नींद आ पहुँची। पर, किशोर अपने कमरे में आकर भी स्वस्थ न हो सका। वह कभी बिछावन पर आकर लेट जाता, कभी खिड़की के पास खड़ा हो कर पूर्णचंद्र की ओर टकटकी लगाए देखता और कभी अपने कमरे में चक्कर काटता। इसी तरह रात का अधिक भाग निकल

गया, पर, सोने का बहुत उपक्रम करने पर भी उसे नींद नहीं आई। उसे बोध हो रहा था—रात पलकों में कटी जा रही है, और ऐसा समझ कर वह उठ खड़ा होता—खड़े-खड़े सोचता, पांव आगे को बढ़ाता और फिर बिछावन पर आकर चित्त पड़ जाता।

एक वार वह अचानक बिछावन से कूद पड़ा। वह बाहर आया, देखा—निस्तब्धता का अखंड साम्राज्य है, कहीं से कोई जन-रव नहीं सुनाई पड़ता, रह-रह कर बहुत दूर पर जोर से कुत्ते भूँक उठते और आसपास नीरवता की साँय-साँय आवाज उसके कानों में गूँज उठती। इस निर्जनता में—इस कठोर नीरवता में उसकी कुत्सा सजग हो उठी, उसकी वासना विह्वल हो उठी। उसने अपने मन की लगाम ढीली छोड़ दी, अपने को प्रवृत्ति के प्रवाह में डाल दिया। उसने मुड़ कर देखा—मणि के अधखुले दरवाजे से बिजली का तेज प्रकाश छन कर आ रहा है। वह कुछ क्षण तक न जाने क्या-क्या सोचता रहा। वह अपने को रोक न सका और धीरे-धीरे पैर की आहट बचा कर मणि के कमरे की ओर चल पड़ा।

उसने किवाड़ से सट कर देखा—मणि गहरी नींद में सोई पड़ी है। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे हैं, उसकी लटें मुँह पर छित-राई पड़ी हैं। वह आगे की ओर अग्रसर हुआ। उसने बहुत धीरे से—बहुत हलके हाथों से किवाड़ के पल्ले जोड़ दिये, और वह आगे बढ़ा—पांव दबाए, दम रोके, अपने को प्रायः लुप्त कर। वह

मणि के पलंग के पास जाकर रुक-सा गया। बिजली का तीक्ष्ण प्रकाश मणि की मुख-श्री पर पड़ कर उसके सौंदर्य को उद्दीप्त कर रहा था। उसकी लटों के बीच उसका मुँह, उसके कपोल, उसकी नासिका, उसके ओठ आज जितने सुष्ठु, जितने मनोरम और जितने आकर्षक जान पड़ रहे थे कि किशोर के लिए अपने को रोक रखना असंभव हो उठा। उसने बहुत धीरे-धीरे—बहुत आहिस्ते-आहिस्ते एक-एक करके उसके ब्लाउज के बटन खोले। उफ् ! किशोर का हृदय जोर से उछलने लगा। उसने जबर्दस्ती से—बड़ी कठिनाई के साथ, बड़ी मुस्तैदी से अपनी बढ़ी हुई साँस रोकी और अपने को और भी शक्तिशाली बनाया। उसके सिर पर पशुता नाच रही थी, वह मनुष्य नहीं रह गया था, वह और कुछ देखना चाहता था—वह और कुछ जानना चाहता था। वासना कितनी विषाक्त होती है ! उसने कुछ देर तक शांति से काम लिया और वह इसलिए कि वह बहुत चुपके से आगे का रहस्योद्घाटन कर सके। कहीं ऐसा न हो, मणि चौंक कर उठ बैठे। उफ् ! सारा परिश्रम, सारे अरमान, सारी लालसाएँ.....................वह अपने जानते बहुत चतुराई से काम ले रहा था। वह बहुत कुछ अपनी प्यास बुझा चुका था, पर प्यास के समय जिस तरह थोड़े से जल से तृप्ति नहीं हुआ करती; ठीक उसी तरह, वह अपने को तृप्त न कर सका। उसने बहुत धीरे-धीरे उसके कटि-प्रदेश के बंधन को ढीला किया और बहुत आहिस्ते-आहिस्ते, उस वस्त्र को एक-एक इंच नीचे की ओर खिसकाता गया। पर, वस्त्र उसकी जाँघ से दबा

पड़ा था और बिना उसे वहाँ से खिसकाए उसकी उत्कंठा शांत होने वाली न थी। वह पशुता पर उतर चुका था। उसने वहाँ से कपड़ा हटाया, तब तक मणि को कोई सुध न थी। उसने अतृप्त आँखों से—निर्लज्ज आँखों से उस गुप्त प्रदेश..........छिः! कितना जघन्य! कितना कुत्सित! उफ्! उफ्! नर-पिशाच!!

मणि जोर से चिहुँक उठी! यह क्यों? कौन? उसने जांघ से सटे देखा किशोर को! वह बिछावन से कूद पड़ी। किशोर तो मानो जमीन में धँसा जा रहा था। मानो उस पर सौ घड़ा पानी पड़ गया हो—मानो उस पर बिजली कौंध उठी हो—मानो वज्र गिर पड़ा हो। मणि वस्त्र-हीन थी; पर, तुरत उसने अपने को कपड़ों से लपेटा और रोष से कांपती हुई बोल उठी—"इतने छिछोरे निकले! आखिर पशु भी इस तरह का पशु नहीं बन सकता! मेरी अस्मत—मेरी इज्जत.......शर्म नहीं आती? काठ हैं वा पत्थर!"

मणि बिजली-जैसी उसी कपड़े में—उसी वेश में बाहर निकल पड़ी। उसे होश नहीं था—वह कहाँ जा रही है, क्या करने जा रही है, ऐसी घोर रात में, बिना किसी को साथ लिए। वह जिस तरह निकली थी, उसी तरह तेजी के साथ अपने पथ पर बढ़ती ही गई। मोड़ पर आकर उसने अपने को संभाला, कपड़े ठीक किए। उसे हुआ—क्यों न समुद्र में कूद पड़ूँ? पर वह आत्म-हत्या को पाप समझती थी। अब उसके लिये एक ही राह था—और वह आनंदी के घर विश्राम करने का; और वह वहाँ के लिए ही अग्रसर हुई।

मणि जानती थी कि उसका द्वार बंद होगा। उसे यह भी पता था कि आनंदी जिस कमरे में सोती है, उसकी बाहर की खिड़की खुली ही रहती है और बगल वाले कमरे में कमलाशंकर सोते हैं। वह बाहर-ही-बाहर खिड़की के पास आई और चाँदनी में देखा—आनंदी अकेली सोई हुई है। उसने बहुत आहिस्ते-आहिस्ते पुकारा—"दीदी ! दीदी !! दीदी !!!"

आनंदी चौंक उठी। उसने देखा खिड़की की ओर, देखा—किसी स्त्री की छाया खड़ी है। वह डरी नहीं, उसने साहस किया, पूछा—"कौन ? मणि ?............इतनी रात को !"

मणि रो उठी। आनंदी ने जल्दी से दरवाजा खोला और बाहर जाकर उसे लिवा लाई।

मणि की आँखों से आँसू मानो फूट पड़े, वह सिसक सिसक कर रो रही थी। आनंदी उसे भौंचक होकर देख रही थी। उसे पता नहीं—मणि आज किस विपत्ति में पड़ कर उसकी शरण में इतनी निस्तब्धता को भेद कर, अपनी सारी लज्जा गँवा कर, उसके पास आ पहुंची है। कुछ घंटे पहले जिस मणि को आनंदी के सहवास में रहना रुचिकर न हुआ था, वही अब परिस्थिति के फेर में पड़ कर, बे-बुलाए, बिना किसी आगत-स्वागत के, आप-से-आप, उससे अपनी रक्षा की भीख मांगने आई है। आखिर, बात क्या है ?

आनंदी ने बहुत कुछ धीरज बंधाया, सांत्वना दी, अनेक तरह की बातें कीं। मणि को कुछ सांत्वना मिली, कुछ धीरज भी बंधा

पर वह सो न सकी। उस रात को आनंदी के सामने मणि ने अपना हृदय खोल कर रख दिया। आज आनंदी को मालूम हुआ—मणि कितनी निष्कलंक है, कितनी शांत है, कितनी सरल है।

आनंदी सोचने लगी—स्त्रियों पर पुरुष-समाज का जो अत्याचार अब तक होता चला आता है उसका प्रतिकार कहाँ है, किस रूप में है? उसका प्रतिकार कभी होगा वा नहीं?

—पचीस—

आनंदी को मणि की करुण अवस्था देखकर जैसा आंतरिक खेद हुआ, वैसा कभी उसे अनुभव न हो सका था। उसे जैसी धारणा थी, उसी के अनुरूप कार्य देखकर किशोर के प्रति उसका हृदय घृणा से परिपूर्ण हो उठा था। मणि कभी ऐसी अवस्था में आ पहुँचेगी, उसे स्वयं विश्वास न था और न कभी ऐसा उसनें ख्याल ही किया था। आनंदी ने कान खोलकर मणि की सारी बातें सुनीं। मणि पर उसे दया हो आई। स्त्रियोचित मर्य्यादा के भंग पर जैसा कुछ पश्चात्ताप नारी-हृदय में हो सकता है, आनंदी को उसी तरह का पश्चात्ताप हुआ। पर, अब किया क्या जाय? यह प्रश्न उसके सामने था और अभी वे दोनों इसी पर विचार करने को तैयार बैठी थीं।

आनंदी चाहती थी कि मणि कुछ दिन उसके घर पर रहकर अपने मन को शांत कर सके। उसे यह भय था कि मणि ग्लानि और लज्जा से कहीं कोई अनर्थ न कर बैठे—कहीं आत्म-हत्या पर न तुल जाय। यही कारण था कि वह उसे अपने घर पर ही टिकाने का विचार कर रही थी, पर मणि ने इसे अस्वीकार कर दिया। मणि चाहती थी कि जितना जल्दी पुरी से वापस हो जाय उतना ही अच्छा। इसलिए मणि बिना विलंब किए चल देने को तैयार हो उठी। अब प्रश्न यह था कि आज मणि के पास कुछ नहीं है—यहाँतक कि राह खर्च के लिए भी उसने रुपए न ले पाए। उसने कभी किसी के सामने हाथ न फैलाया था—उसे कभी ऐसा अवसर ही न आया था कि विपद् का सामना उससे किया जाय। पर, इस समय वह लाचार थी—विवश थी। बिना कुछ खर्च जुटाए वह आगे बढ़े तो कैसे? और वह खुलकर आनंदी को कैसे जत-लाए कि उसे राह खर्च मिले? फिर भी वह स्टेशन पहुंचने को तैयार हो उठी। वह अपनी बात आनंदी के भिन्न और किसी पर प्रकट होने देना नहीं चाहती थी—यहाँ तक कि कमलाशंकर पर भी नहीं। उनके कानों में यदि यह बात पड़ती तो वह सहर्ष मणि को साथ लेकर उसे घर तक पहुंचा आते। पर, उसने ऐसा किया नहीं। वह विना विलंब किए आनंदी के गले मिलकर—रो-रोकर—चलने को उठ खड़ी हुई। उसने यहाँ तक विचार न किया कि वह आज साधन-हीन है। पर, चतुर आनंदी ने अच्छे वक्त पर बड़ी बुद्धि-मानी से काम लिया। उसने समझा—मणि जिस अवस्था में घर

से निकली है, उसे कुछ लेने का अवसर ही न मिला होगा । यहाँ तक कि मणि के जेवर वगैरह वहीं धरे पड़े रह गए, मणि ने उन्हें भी साथ लेना आवश्यक नहीं समझा । इसलिए वह उठी और अपने बक्स से दस रुपए के दो नोट निकाल कर मणि के हाथ पर रखते हुए बोली—"यह मेरी ओर से भेंट है, मणि! रख लो ।" इसके सिवा उसने एक छोटे से सूटकेस में एक-दो साड़ियाँ, दो ब्लाउज, तौलिया और रूमाल सजा कर मणि के सामने ला रखा और मणि से कहा—"लंबी यात्रा है, कपड़ों के बदलने की जरूरत पड़ेगी, वैसे समय में इनसे काम चलाना ।" मणि ने इन चीजों को अपने सामने देखकर रो दिया। आखिर विवश होकर उसे इन चीजों को ग्रहण करना ही पड़ा। तबतक भोर हो गया था, सड़क पर आने-जाने वाले दीख रहे थे, कुछ सवारियाँ—मोटर, घोड़ा-गाड़ी, इक्के—चल रही थीं । मणि ऐसे समय में बाहर निकली । आनंदी भी उसके साथ बाहर आई। मणि ने उससे विदा मांगी, पर आनंदी तो स्टेशन तक पहुँचने को तैयार होकर ही निकली थी। उसने कहा—"तुम अकेली ही स्टेशन जाओगी ? चलो, कम-से-कम स्टेशन तक तो पहुंचा ही आऊँ।"—और बिना कुछ मणि की सुने वह उसके साथ चल पड़ी । मोड़ पर पहुँचते ही एक खाली घोड़ा गाड़ी स्टेशन की ओर जा रही थी, आनंदी ने उसे किराए पर ठीक किया और दोनों उस पर जा बैठीं । यथासमय वे दोनों स्टेशन पहुँच गईं।

भोर के पाँच बजे पुरी से हावड़ा एक्सप्रेस खुलती थी।

आनंदी ने गाड़ीवान को नोट देकर हावड़ा के लिए एक सेकेंड क्लास का टिकट कटाया और एक प्लेटफार्म टिकट। तबतक गाड़ी स्टेशन पर आ लगी। दोनों प्लेटफार्म पर पहुंचीं, मणि को डिब्बे में चढ़ाया और वह प्लेटफार्म पर खड़ी-खड़ी उससे बातें करती रही। उसने मणि से आग्रह किया कि कलकत्ता पहुंचकर वह उसे अपने पहुंचने की सूचना दे। मणि ने उसे सादर स्वीकार किया। यथा-समय गाड़ी अपने गंतव्य पथ पर चल पड़ी। मणि ने आनंदी को नमस्कार किया और जबतक गाड़ी दृष्टि-पथ पर चलती रही, मणि खिड़की के बाहर मुंह निकाल कर देखती रही। आनंदी ने देखा—मणि की आँखों से आज आँसू बह रहे हैं। आनंदी एक दीर्घ निःश्वास लेकर स्टेशन से बाहर आकर गाड़ी पर जा बैठी।

मणि को इसके पहले अकेले यात्रा करने का कभी अवसर न मिला था, पर आज वह अपने को सर्वथा अकेली पाकर भय से काँप-सी उठी। उसे हो रहा था—जैसे वह संसार में अकेली है—उसे न कोई साथ देने वाला है और न कोई साहस बंधाने वाला। वह चकित हरिणी-सी रह-रह कर इधर उधर देखने लगी। मालूम होता, जैसे उसने कठोर अपराध किया है और जिसके लिए वह पकड़ी जाने वाली है। वह दारुण मनस्ताप, अगणित चिंताओं में इतनी दब-सी गई कि उसकी दृष्टि में केवल हाहाकार की ज्वाला के सिवा और कुछ न रह गया। बर्थ खाली पड़ा था, वह लेट गई और तकिए में मुंह छिपाकर रोने लगी।

रुदन में शांति है और शांति में जीवन की अमर विभूति।

अवश्य मणि को इस रुदन से शांति मिली, मन हल्का हुआ। फल-स्वरूप वह खूब नींद में सो गई और वेसुध-सी सो गई । बोध होता था, जैसे नशे में वह डूब गई हो । गाड़ी अपनी चाल से चल रही थी—कितने स्टेशनों को पार कर और कितने स्टेशनों पर ठहरती हुई। कितने यात्री चढ़े और उतरे, पर, मणि को क्या पता—वह कहाँ है, क्या कर रही है, क्या देख रही है ? निगूढ़ चिंताओं और अपरिसीम वेदनाओं से वह वहुत दूर आगे निकल गई थी, जहाँ शांति का अमर आलोक उसके मनःप्राण में जीवन-रस भर रहा था । उसकी झँपी हुई पलकें, उसके मुंदे हुए ओठ बड़े ही सरस, बड़े ही करुण दीख रहे थे।

पूरे पांच घंटे के बाद उसकी नींद टूटी। वह सजग हुई, उठ बैठी। तब तक उस कमरे में कई स्त्रियां आ बैठी थीं—दो युवतियां और एक वृद्धा। मणि ने अपने सामने इन दोनों को देखा। उसे हुआ—इस तरह सोई हुई जान कर ये सब मन में क्या कहती होंगी। वह जरा झेंप-सी गई, पर उसे इस रूप में अधिक देर तक न रहना पड़ा। वृद्धा बोल उठी—"कहाँ उतरोगी, बेटी!"

"कहाँ ?"—मणि भौंचक-सी बोल उठी, पर तुरत ही अपने को संयत कर बोली—"हावड़ा !"

"क्या तुम्हारा घर कलकत्ता ही है ?"—वृद्धा ने पूछा।

"हाँ, कलकत्ता ही !"

वृद्धा के साथवाली दोनों युवतियाँ मणि की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगीं। इन दोनों युवतियों में एक ननद थी और

दूसरी भौजाई। और वृद्धा एक की सास और दूसरे की माँ। इन तीनों को मणि को देख कर न जाने क्यों कौतूहल हो रहा था। उन दोनों युवतियों में एक ने मणि से पूछा—"आप आ रही हैं कहाँ से ? और आप के साथ कौन हैं ?"

मणि नहीं चाहती थी कि इस तरह के प्रश्न उससे किए जाएँ और इनके उत्तर दिए जाएँ। मणि इन तीनों की आकृतियों से समझ गई थी कि, ये सब दिहात से आ रही हैं और तीनों अवश्य अशिक्षिता होंगी। फिर भी जिस उत्सुकता से प्रश्नकर्त्री ने प्रश्न पूछा था, वैसी दशा में चुप्पी साध लेने का अर्थ था—तानाकसी सहना। और यही कारण था कि वह उत्तर देने को सम्मत हुई। उसने उत्तर में सच-सच कह दिया—"पुरी से आ रही हूँ और अकेली ही आ रही हूँ, मेरे साथ और कोई नहीं है।"

अब तो उन तीनों का कौतूहल नाच उठा। कदाचित् इन लोगों ने अपने मन में जैसा कुछ अनुमान किया था—इन उत्तरों से उसकी पुष्टि हो गई हो। और कदाचित् यही कारण था कि, उन दोनों युवतियों की आँखें परस्पर टकराईं और ओठों पर मुस्किराहट दौड़ पड़ी। और वह बूढ़ी ? उसने भवें मटकाईं, और ओठों पर व्यंग की रेखा खींचती हुई बोल उठी—"तभी तो ....तभी तो !"

इस वार मणि ने साफ समझ लिया कि ये तीनों उसे कुछ और ही समझ रही हैं। मणि को यह जान कर बड़ा रंज हुआ।

उसे हुआ—क्यों न इन लोगों को डाँट दिया जाय ? कितनी शांति से मणि आ रही थी, और इन तीनों ने उस शांति में व्याघात पैदा कर दिया ! दोनों युवतियों पर भी उसे कम रंज न हुआ। बूढ़ी पर तो उतना नहीं, क्योंकि वह (मणि) समझ रही थी, बूढ़ी जिस जमाने की है और दिहात की—कि उसका अनुमान चाहे जो भी हो, सह्य हो सकता है। पर ये युवतियाँ ? मणि ने समझा—अपने पोजीशन को साफ न कर देना मानो अपमानित होना है और वह अपमान सहनेवाली मणि न थी। इसलिये वह बोल उठी—"तभी तो का क्या मानी ?"

मणि का चेहरा तमतमाया हुआ देखकर वे सब जरा सहम-सी गईं और बूढ़ी इस उलझन में पड़ गई कि, इसके प्रश्न का उत्तर क्या दिया जाय। पर, उसकी उलझन को उसकी लड़की ने सुलझाते हुए मणि से कहा—"क्या आप बुरा मान गईं ? इनके कहने का मानी यह था कि आज कल बहुत सी औरतें अकेलेदम सफर करती हैं। जहाँ कुछ ससुराल में चखचुख हुई कि बस, नैहर की राह पकड़ी। यों अकेली औरतें कैसे घर से बाहर हो सकती हैं ? कहिए आप ही ?..........अच्छा यही कहिए, आप अकेली क्यों जा रही हैं ? क्या आप के घर वाले नहीं ?"

इन प्रश्नों को सुन कर मणि का रोष जाता रहा। उसे स्पष्ट हो गया कि ये सब पूरी दिहातिन हैं। इन सबों का दोष ही क्या ? जान-बूझ कर बोलना एक बात है और अनजान में बोलना दूसरी बात। मणि को उन सबों पर दया हो आई। वह कुछ देर तक

सोचती ही रह गई। उसके बाद मणि जोर से हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—"जैसा आप लोग समझ रही हैं, वह बात नहीं है। और कदाचित् आप लोगों का जैसा अनुमान है, मैं वैसी नहीं हूँ। अवश्य मैंने अकेले यात्रा करने का साहस किया है और मैं उसे उचित समझती हूँ। विश्वास होना चाहिए, यदि हमलोग सतर्क रहें और दिल से ईमानदार, तो कोई भी कुछ नहीं कर सकता। अच्छा, आप लोग कहाँ जा रही हैं ?"

"कलकत्ता।"—उनमें से एक बोली।

"तब तो ठीक है, चलिये! और आपलोग वहाँ क्या करती हैं ?"—मणि ने पूछा।

बूढ़ी बोल उठी—"हमलोगों का वहाँ कारबार है, हम लोग अपने देश से कलकत्ता जा रही हैं। यह मेरी बेटी है और वह पतोहू। मेरे घरवाले और लड़के बहुत दिनों से कलकत्ते में ही रहते हैं। हमारे साथ जमादार है और एक नौकर। वे सब बगलवाले कमरे में हैं।"

बूढ़ी एक ही सांस में विस्तार के साथ अपना परिचय दे गई। मणि को समझ में आ गई कि ये सब जिस वातावरण में पाली-पोसी गई हैं, वह आधुनिक दुनिया से कोसों दूर है। उसने विनोद के स्वर में पूछा—"तो क्या आप सच-सच बताएँगी, आप ने मेरे सम्बन्ध में क्या अनुमान किया था ?"

इस वार युवतियों में एक जो पतोहू थी, बोली—"जाने दीजिए इन बातों को। अनुमान तो अवश्य कुछ दूसरा था, पर आप

के बोलचाल और व्यवहार से वह आप ही आप दूर हो गया। शायद ये लोग आपको वेश्या.........।"

"सो बात नहीं है—सो बात नहीं है"—दूसरी युवती बोल उठी—"मैं तो इन्हें बंगालिन समझ रही थी—स्कूल की पढ़ी हुई। क्योंकि वे सब भी अब अकेले ही बाहर निकलने लगी हैं।"

मणि को जरा ठेस भी लगी, पर उसका दर्द स्थायी न रहा। उसने हँस दिया, मानो उसे उन लोगों के अनुमान का जरा भी रंज नहीं है। जो हो, इन बातों से मणि का मनोरंजन ही हुआ। संध्या के समय ट्रेन हावड़ा आकर लगी। मणि भी उतरी और वे लोग भी। आपस में सभी बड़े प्रेम से मणि से मिलीं। बाहर आकर मणि टैक्सी पर बैठ कर घर की ओर चल पड़ी।

—छब्बीस—

उस दिन नवीन ने जिस मनोयोग के साथ, लगातार कई घंटों तक लेखन-कार्य किया था, उसे बिना कुछ देखे-सुने दूसरे दिन खूब तड़के लेकर बाहर निकल पड़ा। राधा ने उसे घर से बाहर निकलते देखा, पर, वह कुछ कह नहीं सकी। लगातार कई दिन तक अनटन रहने के कारण उसका शरीर पीला पड़ गया था, वह एक तरह से मुर्झा-सी गई थी। पर रह-रह कर उसके हृदय में नवीन के प्रति इतनी श्रद्धा बढ़ गई थी कि वह उसकी दशा का अनुमान कर स्थिर न रह सकी, वह फूट-फूट कर रो पड़ी। इतना अन्न-कष्ट उसे शायद, भिखमंगिन के रूप में भी न हुआ था। वह इन कष्टों का सारा दोष अपने ऊपर ही लेकर सोच रही थी। सोच रही थी—क्यों वह गलग्रह होकर नवीन का भार-स्वरूप हो रही है। क्यों वह अपने लिए कोई राह नहीं ढूढ़ँ रही है। आह ! वह नन्हीं-सी बच्ची का सरल हृदय !

नवीन पागल की भांति छूट कर रास्ते पर बढ़ा चला जा रहा था—कहाँ जा रहा था, पता नहीं। कहाँ उसे कुछ प्राप्त हो सकेगा? कौन उसे इन संकटों के समय सहायता दे सकेगा? नवीन अपने पथ पर बढ़ा चला जा रहा था, सहसा एक जगह जाकर रुक-सा गया। उसकी दृष्टि सहसा द्वार पर टंगे हुए साईनबोर्ड पर जा पड़ी। लिखा था—'बीसवी सदी'-कार्य्यालय। कुछ क्षण तक खड़े-खड़े साईनबोर्ड के अक्षरों पर दृष्टि गड़ाए रहा। उसने एक बार सांत्वना की साँस ली। कुछ आशा सजग हुई। उसने पाँव बढ़ाए। उसने एक आदमी को दर्वाजे पर खड़ा देखा; कदाचित् वह दर्बान था। उसने एक वार अपनी ओर आलोक-दृष्टि फेरी। ओह! फटेहाल था वह! कपड़े—फटे चिटे कपड़े अधमैले हो रहे थे। इतने गंदे कपड़े! कभी उसने ऐसे कपड़े न पहने थे। कैसे वह इन कपड़ों को लेकर भीतर प्रवेश करेगा? उसने अपने आपको धिक्कारा। इच्छा हुई—वह लौट चले। वह सोच ही रहा था कि उसकी दृष्टि दर्बान से टकरा गई। उसने आँखें नीची कर ली और वह पीछे की ओर मुड़ चला। दर्बान उसकी हरकत ताड़ गया। उसने जिज्ञासा भरे स्वर में पूछा—"किसे खोजते हैं आप?"

"नहीं तो.........!"—नवीन हड़बड़ा कर बोल उठा—"नहीं तो—यों ही देख रहा था!"

"सो ही तो पूछता हूँ?"—दर्बान बोला,—"क्या देख रहे थे?"

"क्या यह 'बीसवीं सदी' आफिस है?—यही है?"

"हाँ।"

"क्या संपादक जी से भेंट हो सकती है ?"—नवीन ने पांडु-लिपि को हाथ में मरोड़ते हुए पूछा।

"हाँ-हाँ, वह आफिस में काम कर रहे हैं। क्या इत्तिला दे दूँ ?"

नवीन उधेड़बुन में पड़ गया। वह सोचने लगा—इन गंदे कपड़ों को लेकर कैसे उनके पास पहुंचूँ ? आखिर एक भले आदमी के पास............। उसने देखा—दर्बान जिज्ञासा भरी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा है। वह बोल उठा—"हाँ, अगर कष्ट न हो तो....।"

"इसमें कष्ट की कौन-सी बात है ? आप ठहरें यहीं पर, मैं इत्तिला दिए आता हूँ। हाँ, अपने नाम की स्लिप लाइए तो ?"

नवीन ने अपने नाम की एक स्लिप लिखकर उसके हाथ पर रख दी।

दर्बान ने लौट कर उससे कहा—"हाँ, जाइए ऊपर बुलाते हैं।"

नवीन ने मन-ही-मन दर्बान को अनेक धन्यवाद दिये। उसने ऊपर जाकर एक कमरे के द्वार पर छोटे से बोर्ड में लिखा देखा—'संपादकीय विभाग'। कमरे के द्वार पर कर्टेन लगा हुआ था। वह उसे उठा कर भीतर गया। देखा—एक सज्जन बैठे हुए लिखने में व्यस्त हैं, सामने टेबल पर लिखे हुए पर्चे छितराए पड़े हैं। सामने टेलीफोन की मशीन रखी है, ऊपर बिजली का पंखा तेजी से घूम रहा है। नवीन ने झुक कर उनके प्रति अभिवादन जतलाया। संपादक जी ने अपनी कलम थाम कर उसकी ओर दृष्टि

फेरी, और उसके प्रति अभिवादन सूचित करते हुए कुर्सी की ओर बैठने का संकेत किया। नवीन लजाते हुए कुर्सी पर जा बैठा। दोनों की कुर्सियां आमने-सामने पड़ीं। संपादक ने एक वार तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा और अन्यमनस्क होकर पूछा—"कहिए, क्या आज्ञा है ?"

नवीन घर से जिस उल्लास के साथ बाहर निकला था, वह उल्लास न जाने कहाँ छूमंतर हो गया। अब वह उनसे कहे तो क्या कहे ? पर, उनके प्रश्न का उत्तर न देना भी उसके लिए कठिन ही था। वह संकुचित होकर बोल उठा—"मैं आपको कष्ट देने आया हूँ। मेरी रचना देख कर आप संतुष्ट न होंगे, फिर भी अनधिकार चेष्टा करनी पड़ती है।"

नवीन ने पांडुलिपि के पन्ने सरिया कर उनके सामने रखते हुए कहा—"इसी के लिए मैं कष्ट देने आया हूँ। देखिए, यदि इसमें कुछ तथ्य हो तो अपने पत्र में स्थान दीजिए।"

संपादक महोदय ने उसे उठाते हुए कहा—"हाँ-हाँ, अवश्य देखूँगा—अवश्य देखूँगा। यदि तथ्य की बातें होंगी तो अवश्य इसे प्रकाशित भी करूँगा।"

संपादक महोदय इसे ध्यान पूर्वक देखने लगे।

नवीन के हृदय में इधर जोर का ज्वार-भाठा उठ रहा था। उसे हो रहा था—व्यर्थ कष्ट देने आया हूँ। कितने सज्जन हैं ये। मेरे गंदे कपड़ों पर इन्होंने जरा भी ध्यान न दिया।"

नवीन उनकी भाव-भंगियों पर दृष्टि गड़ाए शांत होकर बैठा था।

वह ताड़ रहा था, उस लेख से उन पर कैसे-कैसे भाव-परिवर्त्तन हो रहे हैं। संपादक एक दो पन्नों को तो पूरी तरह पढ़ गए, शेष को केवल उलटा गए। उनकी दृष्टि उपसंहार पर जा पड़ी और एक निःश्वास में उसे भी पढ़ गए।

इधर नवीन की धड़कन जोर से हो रही थी। उपसंहार पढ़ने के समय तो उसे बोध हो रहा था, शायद उसकी सांस रुक सी गई है। वह अपने को जब्त किए हुए पड़ा था, मानो वह जड़ हो रहा हो। कदाचित् उसकी नसों का खून जहाँ-का-तहाँ रुद्ध हो गया है। पर, सहसा संपादक महोदय ने पांडुलिपि को टेबल पर पटका और बोल उठे—"खूब-खूब ! क्या यह लेख आप का लिखा हुआ है ?"

"हाँ, इसी बदनसीब का है"—नवीन ने गर्दन नीचे की ओर झुकाली।

"तो मेरा आपके प्रति हार्दिक धन्यवाद !"—संपादक ने मुस्किराते हुए कहा—"यद्यपि मैं आपके सिद्धांतों का कायल न हूँ तथापि मैं इसे छापूँगा अवश्य ! ऐसा मौलिक लेख मुझे कहाँ मिलता है साहब ! यहाँ तो पृष्ठ-पोषण भर है। ठीक तो है—जब तक लेखक अपने लेख में उतर नहीं आता तब तक वह लेख, लेख नहीं कहला सकता। मैं समझता हूँ, इसकी भाषा बड़ी तीव्र है, आलोचना बड़ी खरी है, फिर भी आपके अपने भावों पर तो मुझे खुलकर दाद देने को जी चाहता है। कहिए आप रहते कहाँ हैं ? क्या आपके लिए कुछ नाश्ता मंगवाऊँ ?............दर्बान !"

संपादक महोदय की उंगलियाँ बरबस अलार्म बेल पर जा पड़ीं। पर, नवीन उसके लिए प्रस्तुत न था, वह हड़बड़ा कर बोल उठा—"धन्यवाद! नाश्ते की आवश्यकता नहीं है। यह आपकी कृपा है—और अधिक न चाहिए।"

"नहीं, नवीन बाबू! यह तो शिष्टाचार है, आपको तो ग्रहण करना ही पड़ेगा।"—संपादक महोदय अपनी नाक पर से चश्मा उतारते हुए बोल उठे।

इतने में दर्बान हाथ बाँधकर सामने खड़ा हो गया। संपादकजी ने उसे देखकर कहा—"जाओ भीतर! दो रकाबियों में नाश्ता ले आओ—और चाय।"

नवीन बाधा देते हुए बोल उठा—"महोदय! क्षमा करें; मैं नाश्ता न कर सकूँगा।"

"वाह, यह कैसी बात? आप भी तो बड़े लड़के हैं! मैंने भी अभी नाश्ता नहीं किया है—लिखने में लगा था। कम-से-कम मेरा साथ देने के नाते ही सही—कुछ तो करना ही पड़ेगा।"

दर्बान तब तक भीतर चला गया था।

"हाँ तो नवीन बाबू!"—संपादक ने उसकी ओर मुखातिब होकर कहा—"आपने यह तो नहीं बतलाया कि आप रहते कहाँ हैं?"

"यहीं रहता हूँ।"

"तो आपने अब तक कभी लेख क्यों न दिए?"

"क्या देता, जब मैं अपने को उस योग्य समझता तब न!"

"यह तो आपकी सज्जनता है। पर, आपके लेख से मुझे

विश्वास है कि, आपमें प्रतिभा है, आपकी शैली में बल है, आपके भाव में नवीनता है; आपको इसका सदुपयोग करना चाहिए। यदि आप ऐसा नहीं करते तो मानो सरस्वती का आप अपमान कर रहे हैं—मानो साहित्य की हत्या कर रहे हैं। आप से हमारे साहित्य की श्री-वृद्धि होगी; सच जानिए। इतना-सा अनुरोध है हमारा।"

संपादक महोदय एक ही साँस में बहुत कुछ कह गए। नवीन मानो इस लोक में था ही नहीं। आज वह अपने को अपनी अवस्था से ऊपर—बहुत ऊपर देख रहा था। शायद वह अपने को एक सम्राट से भी बहुत ऊपर समझ रहा था। उसके सामने न तो दुख-दैन्य था, न हाहाकार। वह शील-सौजन्य से झुका हुआ था मानो करुणा साकार रूप से आसन पर विराजमान हो। उसकी दृष्टि में संपादक महोदय के प्रति कृतज्ञता नाच उठी।

इतने में नौकर नाश्ता की चीजें टेबुल पर रख गया। संपादक महोदय ने एक रकाबी नवीन की ओर बढ़ा दी और दूसरी अपनी ओर ली। नवीन अब भी झेंप रहा था, पर संपादक महोदय की आत्मीयता से प्रभावित होकर वह जलपान करने को प्रस्तुत हुआ।

आज कई दिनों के बाद नवीन को अन्न के दर्शन हुए थे। वह नाश्ता कर रहा था, साथ ही संपादक महोदय को मन-ही-मन धन्यवाद दे रहा था। सोच रहा था—इतने दिनों के बाद आज उसे 'मनुष्य' का रूप दीख पड़ा। क्यों न कुछ दिन पहले इनके पास वह आ सका था?

नवीन न जाने और क्या-क्या न सोचता; पर, संपादक महोदय ने उसे सोचने का अवसर ही न देकर पूछा—"आप इन दिनों कौन-सा काम कर रहे हैं, नवीन बाबू ! एम० ए० पास किए कितने दिन हुए ?"

नवीन नाश्ता करने में संलग्न था । उसने गर्दन उठाते हुए कहा—"अभी तो कोई काम नहीं कर रहा हूँ, पास किए हुए भी तो अधिक दिन नहीं हुए हैं—एक-डेढ़ वर्ष शायद !"

"आपके घर पर और कौन कौन हैं ?"

"कोई नहीं। माँ थीं—वह भी कुछ दिन हुए, अकेले मुझे छोड़ कर चल बसीं ।"

"क्यों, आप अविवाहित हैं ?"—उत्सुकता से संपादक ने पूछा ।

"हाँ ।"

"क्या आपका कोई ऐसा सिद्धांत तो नहीं है कि विवाह करना ही पाप समझते हों ?"

"ऐसा कुछ तो नहीं है। पर, इतना अवश्य है कि दरिद्र देश में, जहाँ अपना भरण-पोषण ही कठिनता से हो, विवाह एक शौक की चीज समझना सरासर पाप है ।"

"तो आपका मतलब यह हुआ कि धनी होकर शौक की सामग्री इकट्ठी की जाय !"

"सो नहीं; और यह तो धनियों में प्रायः देखा ही जाता है। मेरा मतलब है, विवाह किया जाय, केवल गार्हस्थ-धर्म पालन के लिए, न कि शौक के लिए ।"

इतने में दोनों का नाश्ता शेष हुआ। दोनों मुंह हाथ धोकर बैठ गए।

संपादक महोदय के सामने कार्य का बाहुल्य था। नवीन को अनुमान हुआ—और अधिक देर तक इनका वक्त बर्बाद करना उचित न होगा; इसलिए इधर-उधर की बातें झटपट शेष कर वह उठ खड़ा हुआ और संपादक महोदय से जाने की आज्ञा मांगी। संपादक महोदय ने मुस्किराते हुए अपना हाथ आगे बढ़ाया। नवीन ने शेक हैंड किया, और आगे की ओर पैर बढ़ाए। पर उसके पैर न जाने आगे को बढ़ते ही न थे। बोध होता था, मानो उसके पैर उलझ रहे हैं। संपादक महोदय ने एक बार उसकी ओर ताका, उनकी सजल आँखें बता रही थीं कि वह कुछ कहा चाहता है। इसलिए संपादक महोदय ने जिज्ञासा भरे स्वर में पूछा—"क्या नवीन बाबू! कुछ कहा चाहते हैं?"

नवीन जरा घबरा-सा उठा। इच्छा अवश्य थी कुछ कहने की, पर उससे कहा ही नहीं जा रहा था। संपादक ने लक्ष्य किया—उसकी आकृति पर पसीने की बूंदें झलक रही हैं। उन्होंने फिर से पूछा—"कहिए, कुछ कहिएगा?"

"कहना तो कुछ नहीं है"—नवीन ने गर्दन झुका कर कहा—"यदि हो सके तो कुछ पारिश्रमिक दिया जाय। देखता हूँ, इतने-से के लिए आपको कष्ट देना पड़ा और अपनी लज्जा..........!"—नवीन का गला रुद्ध हो रहा था।

"लज्जा? नहीं नहीं, लज्जा की कोई बात नहीं। आपस में

संकोच कैसा ? आवश्यकता सब को पड़ती ही है; और आपको तो अभी कोई काम भी नहीं है।"

उन्होंने अपना कैश बक्स खोलकर दस रुपए का एक नोट निकाला और उसे उसके हाथ पर रखते हुए कहा—"लीजिए नवीन बाबू ! आशा है, इतने से आपका काम चल जायगा। चल जायगा न ?"

"हाँ, चल जायगा—कष्ट के लिए क्षमा।"

"नहीं-नहीं, क्षमा की कौन सी बात ? यह तो उचित ही था। हमारे यहाँ तो इसी की कमी है। लेखक कहाँ तक साहित्य-सेवा में जुटे रहें ? आखिर, उसके सामने पेट का तो जबर्दस्त प्रश्न है ! खैर, हमलोग जब सरस्वती की आराधना में लगे हैं तो हमें कम-से-कम तपस्वी तो बनना ही पड़ेगा। पर, अपनी आवश्यकताएँ निभाकर !"

नवीन की आँखें सजल थीं। वह कहे तो क्या ? उसने फिर से नमस्कार किया और आगे बढ़ा।

बाहर आते ही भीतर से उसे सुन पड़ा—"अच्छा, नवीन बाबू ! फिर कभी दर्शन दीजिएगा।"

"अच्छा !"—कह कर वह सीढ़ियों से उतर पड़े।

आज नवीन को जितनी प्रसन्नता हुई, उतनी शायद उसके जीवन में कभी न मिली थी। आज वह अपने को धन्य समझ रहा था।

—सत्ताईस—

विपत्ति और शोक के समय यदि किसी से उस विपद्ग्रस्त व्यक्ति को मौखिक सहानुभूति ही मिल जाय तो उससे कुछ क्षण तक उसका दुःख दूर हो जाता है और यदि वैसी अवस्था में किसी से उसे सहायता मिल जाय तो फिर क्या कहना ? वह बहुत थोड़े के लिए ही, उस सहायता के बदले, मानो वह जन्मभर के लिए अपने सहायक का दासानुदास बन जाता है—यह स्वाभाविक है।

नवीन के लिए भी यही बात कही जा सकती है। वह इन दिनों जैसा निराश्रित हो पड़ा था, दर-दर की खाक छानने पर भी जिस तरह वह अन्न-कष्ट से बौखला उठा था—खासकर अपनी आश्रिता राधा को अनटन देखकर जिस तरह उसे मर्मांतक वेदना हो रही थी—आज वह संपादक महोदय से पारिश्रमिक स्वरूप दस रुपए पाकर उतनी ही प्रसन्नता का अनुभव करने लगा। फिर भी रह-रह कर उसके हृदय में एक टीस-सी उठती और वह इसलिए कि, वह अपने को संपादक महोदय के सामने जब्त न रख सका—

उसे खुलकर अपनी दरिद्रता दिखला ही देनी पड़ी। वह बड़ा स्वाभिमानी पुरुष था; पर हाय री बेवशी! उसका सारा अभिमान, सारे दर्प, सारी महत्वाकांक्षाएँ आज धूल में लोट रही थीं। उसे हो रहा था—जैसे उसकी मणि कहीं खो गई हो, जैसे उसका संचित रत्न कहीं राख की ढेर में पड़ गया हो। अवश्य दस रुपए उसके अनटन के लिए बहुत थे; पर, दस रुपए? इन थोड़े-से ठीकरे पर उसे आज अपना स्वाभिमान बेचना पड़ा, उसकी महत्वाकाँक्षाएँ पतन के गह्वर में जा विलीन हुईं। उसे इच्छा हुई—क्यों न चलकर—लौटकर—संपादक महोदय से कह दे—'मुझे इनकी आवश्यकता न रह गई, मैं खुशी से इन्हें वापस करता हूँ।' पर तुरत ही उसके दृष्टि-पथ पर राधा मानो नाच-सी उठी। उफ्! चार दिनों से फाकाकशी! वह जबर्दस्ती दिमाग पर जोर डालकर, लौटाने के विचार को भुलाने की चेष्टा कर, जितनी तेजी से हो सका, बाजार की ओर लपका और खाने-पीने की चीजों का गट्ठर सिर पर रख अपने घर की ओर दौड़ा।

उसने घर जाकर देखा—राधा चटाई पर विक्षिप्त-सी लेटी पड़ी है। उसकी अधमुँदी आँखों पर करुणा नाच रही है, उसके सुकुमार ओठ, फेंके हुए फूल-से सूख गए हैं। उसने आहिस्ते से गट्ठर जमीन पर रखा और फिर निर्निमेष नेत्रों से राधा के कुम्हलाए मुँह की ओर निहारने लगा।

कुछ ही क्षण के बाद राधा ने करवट बदली। उस समय वह कुछ सजग हो गई थी, पर उसे इसका पता तक न था कि, उसके

सामने नवीन आकर उसे निहार रहा है । नवीन ने उसे सजग समझ कर बहुत आहिस्ते से पुकारा—"राधा ! राधा !"

राधा ने आँखें खोलीं । देखा—सामने नवीन खड़ा है । वह उठ बैठी । उसकी दृष्टि गट्ठर पर गई, वह बोल उठी—"सवेरे-सवेरे कहाँ से आ रहे हैं नवीन बाबू !"

नवीन का चेहरा खिल उठा । वह बोला—"गत रात को, तुमने देख ही लिया था, मैंने एक लेख तैयार किया था, आज उसे बीसवीं सदी के संपादक को दे आया हूँ । उन्होंने दस रुपए पारिश्रमिक के दिए । अभी मैं उन्हीं रुपयों से यह भोजन का सामान लिए आ रहा हूँ । तुमने मुंह-हाथ धोया है वा नहीं ? यदि नहीं तो जरा उठकर धो लो । तब तक मैं इसे खोलता हूँ ।"

नवीन गट्ठर खोलकर कुछ फल और मेवे निकाल लाया और चटाई के एक सिरे पर बैठ कर बोल उठा—"राधा ! लो यह तुम्हारा हिस्सा है । बैठो, देख क्या रही हो ? जलपान तो कर लो ! उसके बाद रसोई बनाना ।"

राधा बोली—"आप खा लें, मैं पीछे खा लूँगी ।"

"यह न होगा, राधा ! मैंने तो संपादक के साथ ही जलपान कर लिया है । अभी तो मैं केवल तुम्हारा साथ देने को जलपान करूँगा; यों तो मुझे जरा भी भूख नहीं है । फिर देर क्यों ?"

राधा ने देखा—नवीन मानेंगे नहीं; और बिना मुझे खिलाए खुद भी नहीं खाएँगे । इसलिए वह बोल उठी—"अच्छा तो खाइए आप, मैं भी खा रही हूँ ।"

और दोनों जलपान करने पर सन्नद्ध हुए।

नवीन ने उसी जलपान के सिलसिले में संपादक की प्रोत्साहन संबंधी चीजें एक-एक कर कह डालीं। राधा को उन बातों से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने गौरव का भी अनुभव किया और मुस्किराती हुई बोली—"तब तो यही क्यों नहीं करते, नवीन बाबू! इससे अच्छा और कौन-सा रोजगार हो सकता है? सम्मान के साथ कमाए हुए एक पैसे का जो महत्व है वह अपमानित होकर लाख कमाने का नहीं। अगर महीने में अधिक नहीं तो तीन-चार लेख लिखने से ही हुआ। इसी में जीवन कट सकता है—अधिक की जरूरत ही क्या है?"

राधा की बातों से नवीन की उत्कंठा नाच उठी। वह राधा की बातों को मन-ही-मन दोहराने लगा—'सम्मान के साथ कमाए हुए एक पैसे का जो महत्व है, वह अपमानित होकर लाख कमाने का नहीं।' कितना सच कहा है! कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद वह बोल उठा—"हाँ, राधा! मैं अब लिखने की ओर ही अधिक ध्यान दूँगा। मुझे अपनी शक्ति पर विश्वास न था, पर आज उनकी बातों से मेरी आँखें खुल गई हैं। अब मुझे विश्वास हो गया कि, मैं जो लिखूँगा—सुंदर लिखूँगा। अवश्य उनमें सुंदर भाव होंगे—ऊँचे विचार होंगे। पर, तुम्हें भी एक काम करना होगा राधा! समझा?"

"एक क्या मैं सौ करने को तैयार हूँ, कहिए, मैं क्या करूँ?"

"सौ की तो जरूरत नहीं, एक की ही जरूरत है और वह यह कि, मेरी लिखावट अच्छी नहीं होती, इसलिए, मैं जो कुछ लिखूँ उसे

तुम साफ़ अक्षरों में नकल कर दिया करो। आज मैं देख रहा था कि, उन्हें (संपादक महोदय को) मेरी लिखावट पढ़ने में बड़ी दिक्कतें हो रही थीं। उन्होंने केवल संकोचवश मुझ से इसके सम्बंध में नहीं कहा, पर मैं उनकी भाव-भंगी से इतना अवश्य जान गया कि लिखावट अच्छी होनी चाहिए थी।"

"अंधा चाहे दो आँख!"—राधा हँस कर बोली,—"मेरे लिए इससे वढ़ कर सौभाग्य की और कौन-सी बात हो सकती है, नवीन बाबू! इससे आपका लाभ तो बहुत कम, मेरा ही अधिक उपकार होगा। हाँ, अब आप लिखने का काम जारी रखें और जमकर लिखें। मैं अलग उसे खूब सजा कर लिख लिया करूँगी। बेकार बैठने से तो यह कहीं अच्छा रहेगा।"

आखिर विचार पक्का हुआ और इधर जलपान भी दोनों के शेष हुए।

जलपान करने के बाद राधा में ताज़गी आ गई। वह उठ कर घर के और कामों में लग गई। नवीन वहाँ से उठ कर बिछावन पर आ लेट गया। कुछ ही देर के बाद उसे नींद आ गई—कई दिनों के अनटन के बाद आज जो उसका पेट भरा था!

पर, राधा?

हाँ, राधा ने उठ कर सामान को घर में संजोया, घर में झाड़ू लगाई, और अपने और नवीन के गंदे कपड़ों को लेकर हौज के पास साफ़ करने को गई। नवीन अपने साथ ही साबुन ले आया था। राधा बड़ी बुद्धिमती थी। साबुन देखते ही उसे नवीन के गंदे

कपड़ों का ध्यान हो आया । इसलिए वह जम कर कपड़े साफ करने में लग गई ।

उसने कपड़े साफ किए—अपने और उसके। स्नान किया, पानी लाया, चूल्हा जलाया और रसोई बनाने में लग गई । इतने काम वह इतनी फुर्ती से कर गई कि, दूसरा कोई अनुमान भी नहीं कर सकता । रसोई तैयार हो जाने के बाद वह नवीन के कमरे में गई और युक्ति से उसे उठाया । उसे सजग जान कर राधा बोली—"रसोई तैयार हो चुकी है, आप उठ कर जरा स्नान तो कर लें !"

नवीन आँख मलते हुए बाहर आया । उसने गमछा उठाया और हौज के पास आकर स्नान करने लगा। राधा ने उसकी धोती कोंचिया कर उसके सामने रख दी। नवीन को बड़ा आश्चर्य हुआ—इतनी जल्दी उसकी धोती कैसे साफ हो गई ? उसने मन-ही-मन राधा की कार्य-तत्परता को भूरि-भूरि सराहा।

नवीन और राधा को भोजनादि से दो बजे, कहीं जाकर फुर्सत हुई। कुछ देर के बाद दोनों एक जगह बैठ कर आगे का कार्यक्रम सोचने में सन्नद्ध रहे । पर, अचानक दोनों का ध्यान द्वार की ओर आकर्षित हुआ। बाहर कोई नवीन को पुकार रहा था। वह बाहर आया और उसने अपने सामने दो व्यक्तियों को खड़ा देखा। एक था वह महाजन जिससे रुपए लेकर फीस चुकाया था और दूसरा था अदालत का लाल साफावाला सिपाही ।

नवीन उन्हें देख कर भौंचक-सा हो रहा । वह कुछ कहने ही जा रहा था कि, महाजन बोल उठा—"यही है मेरा खादुक—नवीन !"

सिपाही जरा व्यंग के स्वर में बोल उठा—"यही हैं आप ?" फिर नवीन से बोला—"अच्छा साहब, आपके नाम अदालत का सम्मन है, उसे तामिल करने को हमलोग आए हुए हैं। यह लीजिए सम्मन और इस पर जरा अपना दस्तखत बना डालिए।"

नवीन चिंता में पड़ गया। एक मुसीबत टली तो दूसरी सिर पर ! वह महाजन की ओर मुखातिब होकर धीमे स्वर में बोला—"अवश्य मुझे रुपए चुकाने में देर हुई पर, मैं बेईमान नहीं। आपको इतनी जल्दी नालिश न करनी चाहिए थी। कम-से-कम मुझे तो आप जतला देते !"

महाजन तैश में आकर बोल उठा—"मैं कब तक आपका आसरा ताकता ? आपको लाजिम था कि, आप इसकी खोज-खबर रखते। मैं आपके पीछे हैरान होने को नहीं। जो कुछ होगा, अदालत में होगा। लीजिए सम्मन !"

इतने में सिपाही जरा ऐंठ कर बोल उठा—"कोई कब तक दूसरे की राह ताकता रहे ? महाजन ने आखिर रुपए लगाए हैं—कुछ ठीकरे नहीं। अच्छा साहब आपलोग पीछे निपटिएगा ; पहले मुझे तो छुट्टी दीजिए। बनाइए इस पर दस्तखत !"

सिपाही ने दो कागज निकाले। एक पर उसने नवीन का दस्तखत बनवाया और दूसरा उसके हवाले किया।

दोनों वहां से चलते बने। नवीन ने उस कागज पर दृष्टि फेरी। बोध होता था—मानो सभी अक्षर राक्षस-जैसा मुंह बाए उसकी ओर ताक रहे हैं। नवीन की आँखों के आगे अंधेरा छा गया। वह

कुछ देर तक वहीं ज्यों-का-त्यों उस कागज को हाथ में लिए खड़ा रहा, फिर वह भीतर की ओर चल पड़ा। उस समय उसका चेहरा स्याह हो रहा था—जैसे उसने किसी की चीज हड़प ली है और वह मुजरिम के रूप में अदालत की ओर बढ़ रहा है।

—अट्ठाईस—

जिस समय नवीन दर्वाजे पर उन दोनों व्यक्तियों से बातें कर रहा था, राधा आड़ में आकर सारी बातें सुन रही थी। उसे आज यह भी पता लग गया कि नवीन कर्जदार बना हुआ है, और रुपए न चुकाने पर उस पर अदालत में नालिश ठोकी गई है। इन बातों से उसके सुकुमार हृदय पर जोर का धक्का लगा। वह सरल बालिका संसार के उलझनों को भला क्या समझे ? वह हैरान थी। आखिर नवीन कहाँ से इतने रुपए पायगा और किस तरह वह इस आपदा से त्राण पा सकेगा ?

नवीन भीतर जाकर अपनी बिछावन पर लेट गया। उसकी दृष्टि छत की ओर लगी थी—उसके मस्तिष्क में जोर का तूफान चल रहा था। वह कहाँ था, पता नहीं। आज उसकी पैतृक संपत्ति, रहने का आश्रय, उसका दौलतखाना संकट में आ फँसा है। जिस घर में वह जन्मा, पाला-पोसा गया, जिस घर ने उसे ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दिलाई, जिस घर में उसकी प्रतिभा का विकास हुआ,

जिस घर ने उसे शक्ति और सामर्थ्य दी, और जो घर माता का अंतिम स्मृति-स्वरूप था, वह कुछ रुपए के लिए आज दूसरे का होने जा रहा है! यह विधाता का कितना दारुण—कितना निर्मम अभिशाप है! नवीन दरिद्र था, पर रहने का अपना खास स्थान तो था। भूखे, अधभूखे अपने घर में आकर आश्रय तो ले सकता था। पर कल ? कैसे वह कहेगा अदालत में जाकर कि, उसने रुपए नहीं लिए हैं ? यह गिरवी झूठी है ? उसने अपने हाथों गिरवी के कागज पर दस्तखत बनाया था।…………नहीं, यह नहीं होने का; चाहे एक तर्फा डिग्री हो जाय। और ऐसा होगा क्यों ? क्यों न वह जाकर महाजन से कह दे, बिना अदालती कार्रवाई के घर छोड़ देने को वह तैयार है? क्यों उसकी मिट्टी पलीद की जाय? वह स्वयं तैयार है अपनी वचन-रक्षा को।

नवीन बड़ी देर तक और न जाने क्या-क्या सोचता रहा। उसकी मुख-मुद्रा गंभीर से गंभीरतम होती गई। वह कुछ क्षण तक अस्थिर हो चला। सहसा उसकी आकृति पर भाव-परिवर्त्तन हुआ। उसका मुख-मंडल गौरव से चमक उठा, उसकी आँखें प्रसन्नता से विहँस उठीं। वह कुछ क्षण में अपने दुःख और विषाद को भूल गया। सहसा राधा वहाँ आ पहुँची। नवीन ने देखा—कुछ क्षण पहले राधा में जो उत्सुकता थी, वह नाम को भी नहीं रह गई है। नवीन समझ नहीं सका, उसे आखिर हो क्या गया ? क्या उसने वे बातें सुन तो न लीं ? वह बोल उठा—"तुम इतनी उदास क्यों दीख रही हो ?"

"उदास ?"—राधा खिन्न होकर बोल उठी—"उदास कहते हैं, नवीन बाबू ! मैं मर नहीं जाती—यही आश्चर्य है। मैंने आपलोगों की सारी बातें सुन लीं हैं। इस हालत में कौन अधीर न हो उठे ? आखिर मनुष्य तो हूँ ही ; दुःख-शोक, खेद-विषाद कैसे न हो ? पेट की चिंता किसी तरह दूर हुई तो अब नई आफत सिर पर ! कोई कहाँ तक आफतों को ढोता रहे ? आखिर, कुछ उपाय तो करना ही होगा ! क्यों कुछ करेंगे नहीं ?"

राधा जिज्ञासा भरी आँखों से नवीन की ओर देखने लगी। पर, नवीन के चेहरे पर कुछ भी विषाद का चिन्ह न देख कर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह समझ नहीं सकी, आखिर नवीन आदमी है वा देवता ! जिसकी संपत्ति लुटी जाय, वह इस तरह से बे-परवा और खुश हो ? इतने में नवीन उल्लास भरे स्वर में बोल उठा—"इतनी-सी बात पर तुम घबरा उठी हो, राधा ! घबराने की कौन सी बात है ? मैंने उससे अवश्य रुपये लिए हैं और बदले में घर उसे लिख दिया है। जब रुपए का प्रबंध मैं नहीं कर सकता और न कुछ होने की आशा ही है तो मकान ही उसे क्यों न छोड़ दूँ ? आखिर ईमान भी तो कोई चीज है ! लोग तो ऐसा नहीं कहेंगे कि, मैंने किसी की बेईमानी की है। भले ही हम लोगों को अनाथ होकर कहीं दिन काटना पड़े। आखिर दुनिया तो सराय ही है न, फिर चिंता किस बात की ? जानती हो, बेवसी की कोई दवा नहीं है, और जो अपने हाथ की बात नहीं फिर उसके लिए अफसोस ही कैसा ?"

नवीन चुप हो गया। उसके हृदय में इस समय भावों का संघर्ष हो रहा था और वह चाहता था, राधा की चिंता को वह दूर कर सके। वह जानता था, इन सब बातों में स्त्रियाँ बेचैन सी हो जाती हैं। उनके सुकमार हृदय इन सब बातों का सहन नहीं कर सकते! इसलिए नवीन धीरज बँधाने के ख्याल से बोल उठा—"सुख-दुख अपने हाथ की बात नहीं राधा! वह तो बराबर से होता आया है और बराबर रहेगा ही। मनुष्य की प्रकृति है, सुख में वह प्रसन्न रहता है और दुःख में चिंतित। मुझे भी इसकी चिन्ता है; पर, जानता हूँ, आफतों का सामना करना मनुष्य के हिस्से पड़ा है, आनंद उपलब्ध करना तो देवता जानते हैं। फिर इन आफतों को कोई बुरा क्यों कहे? संसार ही परिवर्त्तनशील है। जहाँ देखो, वहीं परिवर्त्तन! और क्या? कहाँ नहीं परिवर्त्तन देख रही हो? उस सूर्य को देखो—दोपहर में जैसा वह प्रचंड दीख पड़ता है, शाम को वही पीला पड़ जाता है। बाग में उन दरख्तों को देखो, जो फूलों के भार से फूले नहीं समाते; वे ही पतझड़ के मौसम में कंकाल-से नजर आते हैं। इसी तरह और कहीं देख सकती हो। इसके लिए व्याकुलता कैसी? हमें तो खुशी मनाना चाहिए, मैं कर्ज से छुटकारा पा रहा हूँ।"

नवीन फिर से कुछ क्षण तक चुप हो रहा। राधा उसकी बातों पर मन ही मन विचार कर रही थी, पर उसकी बातों से राधा प्रभावित हो सकी वा नहीं, ऐसा उसमें कुछ दीख न पड़ा। इतने में नवीन ठहाका मार कर हँस पड़ा और बोला—"अच्छा ही होगा

राधा ! कम-से-कम मैली-गंदी गुदड़ी से पिंड तो छूटेगा।"

अभी तक राधा को इन बातों से बड़ा विस्मय हो रहा था, पर गंदी गुदड़ी से पिंड छूटने की बात सुन कर वह भी अपने को जब्त न रख सकी—खिलखिला कर हँसती हुई बोली—"आप भी बड़े वैसे हैं, नवीन बाबू! आप कैसे संगदिल आदमी हैं कि ऐसे समय में भी आपको मज़ाक ही सूझता है। गंदी गुदड़ी ही सही, है तो वह अपनी चीज ही न ! फिर चाहे..............।"

"फिर क्या ?"—बात काट कर नवीन बोल उठा—"गंदी हर हालत में गंदी ही कहलायगी और अच्छी अच्छी ही—चाहे अपनी हो या पराए की। तुम्हीं कहो, सड़े गले मकान को देकर यदि मैं अपनी बेशकीमती चीज को बचा सकता हूँ तो क्या यह महँगी समझी जायगी ? मैं तो इन पार्थिव पदार्थों से आभ्यंतरिक शुचिता को अधिक प्रश्रय देता हूँ। कारण है, ये पदार्थ आ सकते है, जा सकते हैं, पर आंतरिक शुचिता एकबार नष्ट हो जाने पर फिर से नहीं पा सकते। मनुष्य पतनोन्मुख होकर ऊपर की ओर बड़ी कठिनता से उठ सकता है, पर भगवान को धन्यवाद है, मैं पतन की राह से बहुत दूर हूँ।"

राधा उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। नवीन मस्त होकर घूम रहा था, जैसे उस पर कुछ गुजरा ही नहीं है। आज राधा को नवीन के प्रति और भी श्रद्धा हुई। उसने देखा—गरीब होकर भी नवीन इतना संतोषी और ईमानदार है कि, ऐसा ढूँढ़ने पर भी बहुत कम ही मिल सकता है। कल कहाँ रहेगा—इसका भी

ठिकाना नहीं, पर अपने विचार का कितना पक्का है ! राधा यही सब सोच ही रही थी कि, नवीन एकाएक बोल उठा—"क्यों राधा, क्या तुम्हें भी मेरी बात पसंद नहीं आई ? तुम जानती हो मैं रुपए का प्रबंध नहीं कर सकता; चार दिनों पर तो बड़ी मुश्किल से आज पेट भर सका हूँ। जहाँ पेट का प्रश्न ही सामने है वहाँ अदा करने की बात तो सपना ही समझो। ऐसी हालत में उसे मकान ही क्यों न छोड़ दूँ ? क्यों, क्या विचार है तुम्हारा ?"

नवीन प्रश्नभरी दृष्टि से राधा की ओर देखने लगा। राधा उत्तर दे तो क्या दे ? पर कुछ तो उत्तर देना ही था, और इसलिए वह बोल उठी—"आपका कहना तो सोलह आने ठीक है, पर रहने का कुछ प्रबंध तो कर लेना चाहिए। क्या आपने सोच रखा है कुछ ?"

नवीन जोर से हँस पड़ा और हँसते-ही-हँसते बोला—"सभी काम क्या सोच कर ही किया जाता है, राधा ! बहुत से काम ऐसे हैं जो वक्त आते ही करने पड़ते हैं। उनके लिए वहाँ अवकाश कहाँ कि कोई सोच समझ कर करे ? हाँ, एक बात तुम से पूछने को भूल रहा था, राधा ! अभी याद पड़ी है और वह यह कि, मेरा हाल तो तुम देख ही रही हो। कहाँ रहूँगा—इसका भी ठिकाना नहीं। ऐसी दशा से तुम्हें मेरे साथ रहने में अनेक कष्ट और असुविधाएँ होंगी । इसलिए यदि कहो तो तुम्हें एक अनाथाश्रम में रखवा दूँ। वहाँ तुम जैसी कितनी बहनें बड़े प्रेम से—बड़ी प्रतिष्ठा के साथ रहती हैं। वहाँ तुम्हें कोई कष्ट न होगा।"

राधा इन बातों से विचलित-सी हो गई। उसका चेहरा तम-

तमा उठा, वह रोष से फूलने लगी। नवीन ने उसे पहचाना, पहचाना उसके हृदय को। समझा—अवश्य वह मेरे प्रस्ताव से दुखी हुई है। वह कुछ बोलने ही जा रहा था कि राधा बोल उठी—"क्या आप कह रहे हैं, मुझे कष्ट न हो तो ? मैं वहाँ खुशी से रहूँगी ? ऐसी खुशी पर गाज गिरे । सुख में आपके साथ रही और दुख में मैं आपको छोड़कर आनंद लूटने जाऊँ ? आप ही कहिए, क्या मेरे लिए यही उचित होगा ? कर्म-अकर्म का ज्ञान क्या औरतों को नहीं होता ? ऐसा न कहें, इससे मेरा अपमान होता है ; और मुझे अपमानित करने का आपको कोई अधिकार नहीं ।"

राधा रोष से फूल रही थी, उसका आरक्तिभ मुख-मंडल नवीन को बड़ा भला प्रतीत हुआ। नवीन के लिए आज पहला ही अवसर था कि, वह राधा को इतनी आत्मीयता के रूप में पा सके। पर, राधा ने अभी जो कुछ कहा था—सच्चे और निष्कपट हृदय से कहा था, इसलिए नवीन उसके अमायिक स्नेह पर अधिक आकृष्ट हुआ और उसे अपनी ओर खींच उसके गाल पर स्नेह से चपत लगाते हुए बोला—"मुझ पर इतना रंज ? मैंने तो कुछ कहा नहीं, राधा !······अच्छा, साथ ही रहना, जब तुम मरने के लिए मेरे साथ पिल पड़ी हो तो मरो ! कहो, और भी कुछ ?"

राधा के ओठों पर हास्य की एक हल्की-सी रेखा दौड़ गई। मानो अभी कुछ देर पहले कुछ हुआ ही नहीं।

तब तक संध्या घनी हो आई थी। नवीन उठ खड़ा हुआ, उसने कपड़े पहने और बाहर की ओर चल पड़ा। राधा घर के काम में लगी।

—उनतीस—

नवीन महाजन के घर जाकर समझौता कर आया। समझौता का शर्त्त यह रहा कि वह मकान महाजन को केवाला बना दे और उसे तब तक उस मकान में रहने दिया जाय जब तक वह रहने का दूसरा प्रबंध न कर ले।

नवीन रजिष्ट्री ऑफिस में जाकर मकान का केवाला दर्ज करा आया। उसने अपने पैतृक मकान से सदा के लिए छुट्टी पा ली। उस दिन निश्चिंतता की सांस लेकर वह सारा दिन घर पर पड़ा रहा। इस व्यापार से उसे एक अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव हुआ। उस दिन खुल कर राधा के साथ विनोद करता रहा, पर राधा के हृदय में उस घर के प्रति जो ममत्व था उसे वह किसी तरह भंग न कर सका। राधा का सरल हृदय समझ न सका कि नवीन का भविष्य किस ओर जा रहा है और वह किस तरह उसके साथ रहकर उसके काम आ सकेगी।

नवीन के पास जो कुछ रुपए बच रहे थे, एक-एक कर कपूर की गंध की तरह उड़ गए। आगे के लिए जीवन-निर्वाह की समस्या भी जटिल हो गई। पर नवीन की आकृति पर इस समस्या का कोई चिह्न न था। न उसे कोई विषाद था और न हर्ष। इसे यों कहा जा सकता है कि, असीम विषाद-सिंधु में उसका मन इतना डूब गया था कि उसके लिए आनंद और विषाद का कोई प्रश्न ही नहीं रह गया। दुर्निवार विपत्तियों के बोझ से भोक्ता में समता का भाव उत्पन्न हो ही जाता है।

कई दिन के बाद नवीन के विचार ने करवट बदली। उसने अपने को रिक्त पाया —सर्वथा रिक्त। उसने देखा, न तो कोई उसका अपना है—और कोई उसके आँसू पोंछने वाला। न तो उसे रहने का घर रह गया है और न पेट-पूजा का कुछ सामान। अवश्य उसकी अभिभावकता में राधा है जो छाया की तरह उठते बैठते उसका साथ दे रही है। उसके हृदय का सारा प्रेम, सारी आकांक्षाएँ राधा पर केंद्रीभूत हुईं। आज राधा उसके लिए प्रकाश है—राधा उसके जीवन-मरण की अवलंब! राधा पर उसका असीम प्यार है—अगाध ममत्व है।

पंद्रह-बीस दिनों तक नवीन ने संपादक के दान का सदुपयोग किया। उसके बाद ? हाँ, उसके बाद संध्या के समय निरुपाय होकर राधा बैठी थी। चूल्हा-चक्की ज्यों-की-त्यों पड़ी थी। न चिराग का तेल शेष रह गया था और न चावल की एक कनिका ही निःशेष रह गई थी। नवीन अपने मौज में था। सहसा कमरे से बाहर

निकल कर उसने राधा को अनमनी बैठी हुई देखा। वह विनोद के स्वर में पूछ बैठा—"क्या डौल है राधा! क्या आज चूल्हा-चक्की न जलेगी?"

राधा ने आकाश की ओर देखा और एक गहरी साँस ली। उसकी आँखें भींज रही थीं। उसका गला रुद्ध हो रहा था। उसने भर्राई आवाज में कहा—"आज जो कुछ था, निःशेष हो गया है!"

"निःशेष!"—नवीन मुस्करा कर बोला,—"अच्छा हुआ, झंझट तय हुई। एक दिन, राधा! हमलोग भी निःशेष हो जाएँगे। रह जायगा यह संसार और रह जायगी यह विहँसती प्रकृति! अच्छा, बत्ती ही जला दो। आज मैं जम कर कुछ लिखूंगा लौह लेखनी से—समाज का हृदय! हाँ, नकशा उतारूँगा समाज के अग्निकुंड का। उफ्! कितना भयंकर, कितना प्रलयंकर! लोग पढ़ेंगे, दाँतों उंगली दबाएँगे। कोई दाद देगा और कोई गालियों की बौछार करेगा। मैं खड़े-खड़े यह नग्न-नृत्य देखूँगा! वह कितना सुंदर होगा—कितना मंगलकर! राधा, अनमनी क्यों बैठी है? क्या तुम्हें मेरे रूप का ज्ञान नहीं? तुम्हारे साथ रहता हूँ, पर तुम मुझे क्या पहचानो? पहचानता है संपादक—वह भी मेरे जैसा ही जीव है। देखो—'बीसवीं सदी' निकालता है। उस अंक को तो तुम देख ही चुकी हो; और लेखों को देखो;—और देखो मेरे लेख को। तभी तो उसने उस पर अपनी संपादकीय सम्मति लिख दी है। फिर से स्पेशल नंबर के लिए मेरे लेख की उसकी मांग है। जलाओ बत्ती, आज उस लेख को समाप्त कर डालूंगा।

कल सवेरे तुम उसे 'फेयर' कर देना। दोपहर को मैं उसे दे आऊँगा। इस बार वह एक ही नोट न देगा, अवश्य अधिक नहीं तो दो तो मिलेंगे ही। आज मैं उससे माँगूंगा नहीं। सम्राट होकर भीख माँगूं ? यह नहीं होने का ! वह मुझे पहचान गया है। पढ़ने वालों में मेरी खोज हो रही है। यह सौभाग्य मेरे जैसे बहुत कम लोगों को मिलता है। हाँ, उठी नहीं, राधा ! बत्ती जला !"

पर, राधा अपनी जगह से जौ भर भी न हिली। उसने सिर झुका कर उत्तर दिया—"तेल तो रात को ही चुक गया था—बत्ती भी शेष नहीं बची है !"

नवीन ने गहरी साँस ली। उसने आकाश की ओर देखा। देखा—कृष्ण-वसना रजनी के विशाल भाल पर अर्द्ध चंद्र शोभायमान है। आज का चंद्र उसे भला दीख न पड़ा और न उससे उसकी कुछ तृप्ति ही हुई।

नवीन कुछ देर तक खड़ा-खड़ा न जाने क्या सोचता रहा। उसके बाद अंधकार को भेद कर बाहर की ओर चलता बना।

नवीन कई गलियों को पारकर द्रुतगति से बढ़ा चला जा रहा था। उसे पता तक न था—आज वह जा कहाँ रहा है और क्यों ? वह एक गली के मोड़ को पार ही कर रहा था कि दूसरी दिशा से किसी ने आकर उसकी पीठ पर हाथ रखा। नवीन सहसा चौंक उठा। उसने मुड़ कर देखा—उसका ललित दादा उसके सामने मुस्किरा रहा है। वह रुक-सा गया और उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—"कहाँ ललित दा ! कैसे हो ?"

"जैसा हूँ देख ही रहे हो ! मोटा हूँ, तगड़ा हूँ, मस्त हूँ ! और तुम अपनी सुनाओ ! नौकरी का कहीं डील-डौल लगा या मक्खी ही मार रहे हो ? पर, मैं तुम्हें खुल कर धन्यवाद देता हूँ। यार खूब लिखा है ! मैंने बीसवीं सदी देखी है । गजब ढा दिया है भाई ! ऐसा तो तुम लिखोगे ही ! कलेजा ही निकाल कर रख दिया है कागज पर !"

"नहीं ललित 'दा ! ऐसा कुछ तो नहीं लिखा, पर वह लेख तुम्हें पसंद हुआ—खुशी की बात है !"

पर ललित तो और कुछ सुनना चाहता था। उसने फिर से अपने प्रश्नों को दुहराया ।

नवीन को अपना किस्सा कहना पड़ा । किस तरह वह घुल घुल कर मरने को तैयार बैठा है—किस तरह वह पढ़लिख कर भी असमर्थ है !

आज ललित का वह रूप न था जिस रूप में वह पहले पहल नवीन के सामने उपस्थित हुआ था। आज वह कोट-पैंटधारी देशी साहब बना हुआ था—सभी चीजों से लैस !

नवीन को पहले आश्चर्य हुआ ललित को इस रूप के देख कर। ललित ने भी अनुभव किया—नवीन उसे किस रूप में समझ रहा है। इसलिए ललित को कहना पड़ा—"क्यों नवीन ! तुम मुझे घूर रहे हो क्यों ? क्या कुछ मुझमें नवीनता का आभास तो नहीं मिल रहा है ?"

"आभास ? नहीं तो ! पर भाई, तुम्हें कोट-पैंट तो खूब ही फबते हैं ! मालूम पड़ते हो, ललित 'दा ! पूरे साहब ही हो ।"

ललित ठहाका मारकर हँस पड़ा और हँसते हँसते बोला—"जानते नहीं हो नवीन ! पूरा जैन्टलमन बने विना तुम दूसरों को अच्छी तरह चकमा नहीं दे सकते । यह सभ्यता का जमाना है न ? आखिर जमाने के रुख के मुताविक तो चलना ही पड़ेगा—तभी कोई जी सकता है। मैं पहले जिस रूप में था, वह था मेरा भारतीय रूप—भारत का दार्शनिक रूप ! उस रूप में रहकर डाके का काम कोई कर ही नहीं सकता। दस-बीस-सौ अगर मिल ही गया तो उससे क्या होना-जाना ? गुनाह बेलज्जत ! इसलिए मुझे साहब बनना पड़ा और मजबूरी बनना पड़ा । अब मौज से टैक्सी की हवा खाता हूँ, बड़े-से-बड़े मालदारों को उल्लू बनाता हूँ । खैर, चलते हो सिनेमा में ? चलो आज हम सभी जमकर देखें। तुम्हारे साथ चलने में और ही लुत्फ मिलेगा। तुम्हारे लिए मशाले अगर कहीं हैं तो वैसी जगह में ही ! देखोगे—कैसे-कैसे जीव किस-किस रूप में अवतीर्ण होते हैं !"

नवीन भौचक-सा उसकी ओर देख रहा था। उसे समझ में नहीं आया कि, वह कहां जा रहा था और क्या करने ? उसे कुछ बोलने का भी अवसर न मिला। वह उसके साथ हो लिया। दोनों सड़क पर आए। टैक्सी वाला टैक्सी लिए जा रहा था । ललित ने सिगनल दिखलाया, टैक्सी खड़ी हो गई। दोनों उस पर बैठे। ललित ने कहा—"सोफर ! रौनक महल !"

टैक्सी हवा हो गई।

दोनों उतरे। ललित ने सोफर को दस रुपये का एक नोट

थमाया। उसने सात रुपये वापस किए। ललित ने कहा—"नवीन, अभी समय है, चलो जरा नाश्ता-पानी............ !"

दोनों होटल में गए। छक कर बेशकीमती डिशें उड़ाईं। बड़ा मौज रहा। दोनों सिनेमा के बुकिंग आफिस के पास आए। ललित ने टिकट लिए और दोनों सिनेमा हॉल में दाखिल हुए।

सिनेमा हॉल दर्शकों से खचाखच भरा था और चवन्नी क्लास में तो मानो द्वन्द्व-युद्ध ही छिड़ा था। काफी होहल्ला मचा था। नवीन और ललित दोनों पास ही कोच पर बैठे थे। उनकी सीट के दाएँ-बाएँ दो स्त्री-पुरुष के जोड़े बैठे हुए अंग्रेजी में गप्पें उड़ा रहे थे। बोध होता था—वे सब संभ्रात व्यक्ति थे। ललित और नवीन कुछ देर तक तो शांत बैठे रहे। उसके बाद ललित ने ही प्रसंग उठाया। उससे शांत बैठना कठिन था। उसने दाहिने ओर की सीट पर बैठे हुए जोड़े की ओर संकेत करते हुए नवीन से कहा—"जरा ध्यान लगा कर इनकी गप्पें सुनो। इन्हें तुम नहीं जानते होगे पर, मैं इन्हें जानना हूँ। इनके विषय में मैं पीछे कहूंगा; अभी तुम शांत होकर इनकी बातें सुनो !"

नवीन ने उनकी ओर कटाक्ष भरी दृष्टि से देखा, फिर कान लगा कर उनकी बातें सुनने लगा। उनकी बातों में नवीन को भी रस आने लगा और इसलिए उसने बड़ी दिलचस्पी के साथ उनकी ओर मुखातिब होकर कान लगा दिया। नवीन ने अनुभव किया, ये दोनों अभी-अभी के प्रणयी हैं। पुरुष नवयौवना युवती को अपनी आकर्षण डोर में अपनी ओर खींच रहा है।

ललित ने नवीन से उनकी ओर मुखातिब होकर उनकी बातें सुनने को इसलिए कहा कि, नवीन का ध्यान उस ओर लग जाय। क्योंकि ललित ने यह पहले ही अनुमान कर लिया था कि नवीन रह-रह कर उदास हो जाता है । केवल उदासीनता दूर करना ही ललित का एकमात्र उद्देश्य था।

सिनेमा हॉल में आखिरी घंटी पड़ी, साथ ही रजत-पट पर चित्र अंकित होने लगे। दर्शक-मंडली उस ओर देखने लगी।

आधा घंटा भी न हुआ था कि नवीन अचानक चौंक-सा उठा। उसकी आत्मा बेचैन हो उठी—वह छटपटा सा उठा। ललित ने मार्क किया; वह बोल उठा—"क्यों नवीन! तुम चंचल क्यों हो रहे हो? क्या तुम्हें यह फिल्म अच्छा नहीं लगता?"

नवीन असमंजस में पड़ गया। वह नहीं चाहता था कि ललित मेरे अंतस्तल में घुस कर मेरे घाव को देख ले। इसलिए वह अपने को छिपाने के लिए मुस्किरा कर बोल उठा—"सो बात नहीं है ललित 'दा! सच पूछो तो मैं केवल तुम्हारा साथ देने को ही चला आया, नहीं तो मुझे ये सब पसंद नहीं। फिर भी साथ तो दूँगा ही।"

"वाह! साथ देने की गरज से तुम्हें बांध रखना उचित नहीं; यों तो मैं भी सिनेमा—सिनेमा देखने की गरज से नहीं आता, पर यदा-कदा आ जाता हूँ। यहाँ मेरे कार्य सधते हैं और कुछ नहीं। अगर चाहो तो चलो, हमलोग चल-चलें।"

"नहीं-नहीं, सो बात नहीं है, ललित 'दा! जब हमलोग आ गए हैं तो देख ही लें क्यों न?"

ललित बोल उठा—"तो ऐसा ही हो।"

दोनों देखने लगे।

और आध घंटे के बाद विश्राम का समय आया। पंद्रह मिनट का समय था। ललित ने कहा—"चलो, नवीन! बाहर चलें, यहाँ गर्मी ज्यादा है, पंखे से काम नहीं चलता।"

दोनों बाहर आए।

पंद्रह मिनट का समय देखते-देखते शेष हो गया। दर्शक जो बाहर आए थे, हॉल की ओर दौड़ पड़े। पर, वे दोनों अभी तक बाहर ही थे। हठात् ललित बोल उठा—"जाओ नवीन! भीतर, देखो पूरा तमाशा, तब तुम घर जाना। मैं अब नहीं ठहर सकता—मैं एक जरूरी काम से दूसरी जगह जाता हूँ। अब एक मिनट का समय बर्बाद करना मेरे लिए बुरा होगा। फिर तुम से मिलूंगा; बहुत-सी बातें करनी हैं। क्या तुम एक दिन मेरे यहाँ नहीं आ सकते? पता तो तुम्हें मालूम ही है। कहो, कब आते हो? मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँ?"

नवीन नहीं समझ सका कि, इतनी जल्दी उसके ललित दादा को ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा। उसने उस काम के संबंध में ललित से पूछना उचित नहीं समझा। ललित उसका उत्तर सुनने के लिए उसकी ओर देख रहा था। नवीन ने सिर उठा कर देखा—ललित केवल उससे उत्तर पाने की आशा में व्यग्र होकर खड़ा है। इसलिए उसे कहना पड़ा—"आ जाऊँगा, ललित दा! कल तीन बजे के बाद।"

"तीन बजे ?"—ललित जरा सोचने लगा—"नहीं तीन बजे मत आना—हाँ चार साढ़े चार बजे आना। मैं वहाँ तुम्हारे लिए ठहरूंगा, अच्छा ? जरूर आना !"

ललित ने आगे की ओर पैर बढ़ाया, नवीन तब तक अपनी जगह खड़ा ही था। ललित ने जरा खड़ा होकर, पीछे की ओर कहा—"हाँ, सुनो नवीन ! इधर आओ !"

नवीन उसके पास गया। ललित ने जेब से एक नोट निकाल कर उसे देते हुए कहा—"रख लो इसे, टैक्सी कर लेना। तुम भी क्या समझोगे! आए टैक्सी पर, और लौटोगे पाँव पैदल ? यह नहीं होने का!"

नवीन ने समझा—ललित का विचार कितना ऊँचा है। उसने कहा—"तो फिर इतने की क्या आवश्यकता ? एक डेढ़ रुपए से तो काम चल जायगा।"

नवीन की बात खतम भी नहीं होने पाई थी कि, ललित कई कदम आगे बढ़ गया था। उसने चलते ही चलते कहा—"रख लो, रख लो इसे नवीन ! हाँ, कल तुम जरूर आना।"

ललित पागल की तरह चलता बना।

नवीन असमंजस में पड़ गया। क्या करे वह, घर जाय वा सिनेमा देखे ? वह सोच ही रहा था कि, पीछे से एक आदमी ने उसके कंधे पर हाथ रख कर अपना नमस्कार जतलाया।

नवीन ने मुड़ कर देखा—संपादक जी थे।

नवीन ने उनके प्रति नमस्कार जतलाते हुए कहा—"कहिए प्रसन्न हैं न ?"

"हाँ, सानंद हूँ, नवीन बाबू ! आपको मेरा पत्र तो मिल गया होगा ? कहिए, लेख तैयार हुआ है वा नहीं ? बहुत देर लगा दी आपने ; मुझे जल्दी मिलना चाहिए। आपके लेख की मुझे नितांत आवश्यकता है। विशेषांक उसके बिना नगण्य ही रहेगा। कहिए, कबतक की आशा करूँ ?"

नवीन को आज की घटना याद पड़ गई। वह तो आज ही जम कर लिखने वाला था, पर तेल-हीन बत्ती के बिना इसे न कर पाया ! उसे एक वार अपनी दरिद्रता की बात याद पड़ गई। पर, कुछ क्षण के बाद उसे यह जान कर आनंद ही हुआ कि संपादक महोदय मेरे लेख के बिना विशेषांक को नगण्य समझ रहे हैं। उसके ओठों पर मुस्किराहट दौड़ गई और वह आनंद से बोल उठा—"प्रयत्न करूंगा कल दस-बारह बजे तक दे देने का। अधिकांश तो लिख लिया है, शेष अभी जाकर पूरा करूंगा।"

"धन्यवाद ! आपसे यही आशा रखता हूँ"—संपादकजी बोल उठे—"क्या अभी आप सिनेमा में नहीं जाएँगे ?"

"और आप ?"

"मुझे तो यह खेल पसंद नहीं आया। लोग क्यों इसके लिए मार करते हैं ? हमारे यहाँ तो अच्छी-बुरी चीज की पहचान ही नहीं है, नवीन बाबू ! कथानक देखा, कितना ऊटपटाँग था ! कितना अस्वाभाविक !"

"हाँ, मुझे भी पसंद नहीं आया। मैं तो जाने को ही सोच

रहा था, लेख का ही स्मरण हो आया; व्यर्थ समय नष्ट क्यों करता ? क्या आप भी चलेंगे ?"

"जरूर ! हाँ, आइए, मोटर तैयार है। मेरे कतिपय मित्र उस पर बैठे मेरी राह देखते होंगे । अच्छा रहेगा, चलिए उन लोगों से आपका परिचय भी करा दूँगा।"

नवीन भी तैयार ही था। वह संपादक जी के साथ हाते से बाहर आया। सड़क पर एक मोटर तैयार थी। संपादक जी उसकी ओर बढ़ कर बोले—"आइए नवीन बाबू ! हमलोग बैठें !"

दोनों बैठ गए। उस पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे थे। सोफर ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। संपादक जी अपने मित्र की ओर मुखातिब होकर बोले—"इन्हें शायद आपलोग पहचानते तो न होंगे?"

"नहीं,....आप ?"—उनके मित्र ने जिज्ञासा भरे स्वर में कहा।

"आपका ही नाम नवीन बाबू है, जिनके विषय में आपने पूछा था।"

"वाह ! नवीन बाबू !"—स्त्री बोल उठी,—"आप ही हैं ! मेरा नमस्कार है आपके प्रति ! सौभाग्य है, आज आपके दर्शन हुए !"

संपादक जी ने इन दोनों का परिचय नवीन को दिया। नवीन ने उन दोनों के प्रति नमस्कार जतलाया।

वह स्त्री बोली—"हाँ, धीरेन बाबू (संपादक) आप इनसे भी अनुरोध करें उस पार्टी में सम्मिलित होने को। बड़ा सुंदर रहेगा।" फिर वह नवीन से बोली—"क्या नवीन बाबू ! मैं परसों संध्या को अपने यहाँ आने की आशा करूं ? छोटी-सी पार्टी है !"

"खुशी से श्रीमती जी !"

"हाँ, बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँगी !"

इतने में गाड़ी संपादक जी के आफिस के पास पहुंच गई। वे सभी वहीं उतर पड़े। उनलोगों ने नमस्कार जतलाया। नवीन से कहा—"तो आप से हमलोग परसों मिलने की आशा करते हैं, अवश्य आइएगा। सोफर ! इन्हें पहुँचा कर वापस आओ; तब तक हमलोग यहीं रहते हैं।"

नवीन चाहता था कि वहाँ से वह पैदल ही चला जाय पर उन लोगों के आग्रह के सामने उसे झुक जाना पड़ा। गाड़ी उसे लेकर गंतव्य पथ पर चल पड़ी।

—तीस—

नवीन ने सड़क के मोड़ पर ही मोटर छोड़ दी और गलियों की राह घर की ओर चल पड़ा। कुछ ही दूर जाने पर उसे स्मरण हुआ—घर पर खाने के समान नहीं हैं, यहां तक कि जलाने को तेल तक नहीं। वह वहां से एक छोटी सी दूकान पर गया, खाने के सामान खरीदे और जलाने के लिए मोमबत्तियां। और सभी चीजों को एक कुली के सिर पर रखा कर घर आया।

रात अधिक नहीं हुई थी, फिर भी नौ बज रहे थे। उसने दर्वाजा खटखटाया, भीतर से राधा के पद-शब्द सुन पड़े। उसने दर्वाजा खोल दिया। नवीन कुली को लिवाए भीतर आया। देखा—वहाँ अंधकार का साम्राज्य ज्यों-का-त्यों है। राधा ने उस अंधकार में नवीन की हर्षोत्फुल्ल आकृति देखी नहीं, फिर भी कुली के लाए हुए सामान को देख कर अनुभव किया—अवश्य नवीन का जाना व्यर्थ नहीं गया। वह खुशी के मारे बोल उठी—"कहाँ से—कहाँ से लिवा लाए ये सब सामान नवीन बाबू !"

कुली पैसा लेकर चला गया।

नवीन ने जेब से बचे हुए रुपए-पैसे निकाल कर राधा के हाथ पर रखते हुए कहा—"परमात्मा को धन्यवाद है राधा ! आज का क्या कहना ? बड़ा आनंद रहा ! संपादक जी से भेंट हुई, उनके द्वारा अन्य दो व्यक्तियों की मैत्री उपलब्ध हुई और मेरे ललित दादा ने कृपा कर और रुपए भी दिए—बिना मांगे !"

राधा ने कई बार नवीन के मुंह से ललित का नाम सुना था, साथ ही यह भी सुना था कि वह नामी-गरामी डाकू है—गिरहकट है—और न जाने क्या-क्या। उसे स्वभावतः उस नाम से चिढ़ थी—घृणा थी। वह उसका नाम सुनना नहीं चाहती, पर आज यह जानकर कि नवीन को उससे सहायता मिली है उसे कुछ अवश्य उसके प्रति श्रद्धा हुई, पर उसका हृदय कांप उठा। वह अपने भाव को छिपा न सकी, बोल उठी—"मगर उसकी जाल में न आइए, नवीन बाबू ! क्यों, वैसों का साथ भी निरापद होगा ? बुरी बला में कहीं आप न फँस जायँ ! मुझे तो बड़ा भय लगता है !"

नवीन राधा की सरलता पर हँस पड़ा। पर, वह मन-ही-मन समझने लगा—राधा के कहने में तथ्य है—सचाई है। फिर कुछ ही क्षण के बाद वह ललित की आत्मीयता का स्मरण करते हुए बोल उठा—"डरने की बात नहीं, राधा ! अपना मन सच्चा रहे तो कोई आँच नहीं आ सकती। वह चाहे कैसा ही हो, फिर भी वह मनुष्य है। उसमें जहाँ इतनी बुराइयाँ हैं, वहाँ उसमें देवत्व भी है। यह इनकार नहीं किया जा सकता।"

राधा को नवीन की बात जँची नहीं । उसने अनमनी होकर कहा—"मैं छोटा सा दिल और दिमाग लेकर उस देवत्व की बात क्या जानूँ ? मगर संगत का असर, सुना है होता जरूर है ! इससे तो शायद आप इनकार नहीं जा सकते ?"

"मैं इनकार नहीं करता"—नवीन और बल न देकर उसका पक्ष समर्थन करते हुए बोला—"जो बातें मानने लायक हैं, मानूंगा ही; मगर तुम जिस पहलू से विचार कर रही हो, उसे दूसरे पहलू से भी देखो । एकांगीन सोचना ठीक नहीं ; और सच तो यह है कि, हमें अंधकार को न देख प्रकाश को ही देखना चाहिए ।"

कुछ देर के बाद दोनों चुप हो गए। पर, अंधकार में खड़े-खड़े नवीन को अच्छा न जँचा। उसने जेब से मोमबत्ती निकाल कर जलाई। कमरा प्रकाश से आलोकित हो उठा। उस प्रकाश में नवीन ने देखा—राधा अन्यमनस्क नहीं,—प्रसन्न है।

नवीन ने गट्ठर खोलकर भोजन का सामान निकाला। उसने अधिक रात हो जाने के विचार से बाजार से ही पकी-पकाई पूड़ियाँ ले ली थीं । वह दोने को टेबल पर रखते हुए बोला—"मैं तो भर पेट खाना खा चुका हूँ राधा ! तुम यहीं बैठ कर खा लो ! हाँ, मुझे कुछ जल ला दो, पैर भी धोने हैं और कुछ पिऊँगा भी ।"

राधा बिना कुछ कहे बाहर चली गई।

नवीन ने पैर-हाथ धोए और धोती की कोर से उन्हें पोंछते हुए राधा से खाना खाने को कहा। पर, राधा के लिए यह कठिन था। उसने कहा—"मैं कैसे जानूं कि आप भोजन करके आ रहे हैं?

पानी पीना ही है तो क्यों नहीं कुछ लेकर खा भी लेते ?"

नवीन हँस पड़ा। वह जान गया कि, बिना उसके खाए राधा न खायगी। कभी उसने ऐसा किया नहीं है तो आज वह क्यों ऐसा करने लगी ? इसलिए नवीन बोल उठा—"कभी कभी तुम्हारी जिद्द तो बड़ी भली लगती है और कभी बड़ी कष्टदायक। तुम्हें मालूम नहीं, मैं अघा कर खा आया हूं। भूखा रहने पर तो मैं स्वयं पहले ही हाथ उठाता। अगर तुम चाहती हो कि मैं खाकर ही बीमार पड़ जाऊँ और फिर खाने की जरूरत ही न पड़े तो लाओ, मैं सभी कुछ खा लेता हूँ।"

राधा मानो कुम्हला-सी उठी। उसने अपनी गर्दन नीची कर ली और बोली—"आप नहीं जानते हैं नवीन बाबू! मेरे दिल की हालत। स्वभाव ही ऐसा है तो मैं क्या करूँ ?"

नवीन को ठेस लगी, वह बोल उठा—"लो राधा! दो पूड़ियाँ तो मैं जरूर खाऊँगा, शेष तुम्हारा हिस्सा है, खा लो! अब तो राजी हुई ?"—और नवीन ने दोने में से दो पूड़ियाँ निकाल लीं और वहीं कुर्सी पर बैठ कर खाने लगा।

राधा दोना लेकर बाहर चली गई।

नवीन खा चुकने के बाद बाहर आया। कुछ देर तक आंगन में अकेला ही टहलता रहा; इतने में राधा का खाना भी शेष हुआ। नवीन कुछ देर तक और टहलने के बाद बोल उठा—"राधा! जाओ, सो रहो! मुझे तो अभी लेख खतम करना है। कल बारह बजे तक लेख संपादक को मिल जाना चाहिए—वादा कर

आया हूँ। मैं अभी जाकर लिखूंगा—जब तक खत्म न होगा, लिखूंगा। तुम खूब सबेरे उठ कर उसकी साफ़ कापी तैयार कर देना—अच्छा ?"

नवीन कमरे की ओर चल पड़ा। राधा स्वीकृति की सूचना देकर सोने को चली गई।

नवीन जमकर लिखने को बैठ गया और साढ़े तीन बजे तक उसी धुन के साथ, बिना हिले-डुले, लिखता ही रहा। उसके बाद लिखे हुए पर्चों पर नंबर बैठा कर उसने शांति की सांस ली। बाहर आया, जरा आंगन में फिर से टहला, उसके बाद बत्ती गुल कर बिछावन पर पड़ रहा। दर्वाजा ज्यों का त्यों खुला ही था।

सबेरा हुआ। राधा नित्य के कामों से फ़ुर्सत पाकर नवीन के कमरे में गई। उसने उन पर्चों को उठा लिया और लिखने का कागज और दावात-कलम लेकर अपने कमरे में आ प्रेस कापी तैयार करने लगी।

भोर को सोने के कारण नवीन सूरज निकले तक सोता ही रहा। जब सूर्य की किरणें खिड़की की राह उसके मुंह पर पड़ने लगीं और उसने कुछ गर्मी का अनुभव किया, तो वह उठ बैठा; अंगड़ाइयाँ लीं और नित्य-कार्य के लिए बाहर निकल पड़ा।

आध घंटे में उसकी नित्य-क्रिया संपन्न हुई। उसने राधा की खोज की, पुकारा और अपने टेबल के पास पहुँच कर अपने लिखे हुए पर्चे ढूँढ़ने लगा। पर वे पर्चे वहाँ थे कहाँ ? वह

आश्चर्य-चकित होकर ढूँढ़ ही रहा था कि राधा बिजली के समान आई और बोल उठी—"क्या ढूँढ़ रहे थे ? लेख ? उसे तो मैं आधा से अधिक लिख चुकी। देखिए, मैं लिए आती हूँ।"

नवीन उसकी ओर चकित होकर देख ही रहा था कि इतने में वह साफ की हुई कापियाँ लेकर आ पहुँची। नवीन को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह प्रसन्नता के मारे बोल उठा—"शाबाश ! शाबाश राधा ! फड़क उठेंगे, संपादक जी तुम्हारे हर्फों को देख कर !"

"हर्फों को देख कर तो नहीं;—हाँ, यह लेख पढ़ कर जरूर फड़क उठेंगे वे ! इसमें क्या शक !"

वह बिना कुछ और सुने वहाँ से अपने कमरे में चली गई।

नवीन राधा की कार्य-तत्परता पर बड़ा प्रसन्न था। वह बिछावन पर लेट गया और अपनी काल्पनिक दुनिया की सैर करने लगा। उसकी आकृति में आज पहले से अधिक आकर्षण था और इसलिए कि, आज वर्षों के संचित भावों की लड़ियाँ गूँथने में वह समर्थ हो सका है।

नवीन बारह बजे तक भोजनादि से निवृत्त हो, राधा द्वारा प्रस्तुत प्रेस कापी लेकर 'बीसवीं सदी' कार्य्यालय की ओर चल पड़ा। आज उसे अपने-आप पर बड़ी प्रसन्नता हुई और कुछ स्वाभिमान भी।

संपादक जी उस लेख को पाकर नवीन के प्रति कृतज्ञ हुए। आज उन्होंने देखा—लेख बहुत सुंदर अक्षरों में लिखा गया है। उन्हें आश्चर्य हुआ—पहला लेख जैसे गंदे अक्षरों में था, यह

उतना ही सुंदर और सुस्पष्ट अक्षरों में है। वह बड़ी देर तक उन अक्षरों को देखते रहे, इसके बाद बोल उठे—"इसबार तो देखता हूँ, आपने लिखने में आश्चर्यजनक परिवर्त्तन कर डाला है! इतने सुंदर आपके अक्षर बनते हैं?"

नवीन लजाकर बोल उठा—"मेरी लिखावट तो बहुत ही गंदी होती है धीरेन बाबू! जिसका परिचय आपको पहले वाले लेख से ही मिल गया था। यह तो राधा देवी ने लिखा है!"

धीरेन बाबू असमंजस में पड़ गए। उस दिन उन्होंने नवीन से परिचय पूछने पर जाना था कि, वह अकेला है; पर आज—राधा देवी कौन है?—जानने की उत्कंठा प्रबल हो उठी। वह अपने भाव को छिपा न सके, बोल उठे—"क्या मैं इनका परिचय पा सकता हूँ? मालूम होता है, वे बड़ी सुलेखिका हैं। क्या ये आपके साथ····?"

"हाँ, मेरे साथ ही रहती है!"—नवीन उत्कंठित होकर परिचय देने लगा,—"आपको आश्चर्य होगा, किसी जमाने में यह रास्ते की भिखारिन थी! मुझे दया आई, मैंने उसका कुछ उपकार किया था। संयोगवश माँ से अपमानित और लांछित होने पर वह मेरे आश्रय में आ गई। क्या करता? मानवता का तकाज़ा था, रख लिया। लिखना-पढ़ना सिखाया और आज वह मेरी मुसीबतों में मेरा साथ दे रही है। उसी ने यह प्रेस कापी तैयार की है। यही उसका छोटा सा इतिहास है।"

धीरेन बाबू को आज पता लगा कि नवीन केवल लौह लेखनी का ही धनी नहीं है, किंतु मानवता का सच्चा प्रेमी भी है। उन्हें उस

पर श्रद्धा हो आई। वह गद्गद् होकर बोल उठे—"ऐसे बहुत कम आदमी हैं, नवीन बाबू! जो घृणा को प्रेम से जीतें। आपने हम लोगों के सामने एक सुंदर आदर्श उपस्थित किया है। हमारे कंगाल देश में ऐसों की संख्या कम नहीं—सीमा से कहीं अधिक है। यदि उन्हें इस तरह का सुयोग दिया जाय तो कितनी राधा देवियाँ उनमें निकल सकती हैं। आपके सदुद्योग की मैं मुक्तकंठ से प्रशंसा करता हूँ, और आपकी यदि आज्ञा हो तो मैं संपादकीय वक्तव्य में इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ। क्या आप इतना-सा सुयोग दे सकेंगे ? हाँ, मैं आपसे यह भी निवेदन करूँगा कि, आप उनका फोटो मुझे दें और मैं उसे उनके परिचय के साथ अपने पत्र में छपवाऊँ। क्यों, क्या विचार है ?"

नवीन जरा भीरु प्रकृति का व्यक्ति था। वह ऐसों में नहीं था जो काम तो बहुत थोड़ा करते और विज्ञापन ही अधिक! और यही कारण था कि, प्रतिभा-संपन्न होते हुए भी, अपने को सदा लोगों से छिपाता रहा। यदि ऐसा न होता तो आज के विज्ञापन-युग में उसे अच्छी ख्याति मिल गई होती, साथ ही उसके दुःख का निवारण भी हो गया होता। पर आज वह पकड़ा गया है। वह जानता है—संपादक से अपने को बचाना उसके लिए असंभव है। फिर भी उसकी आत्मा राजी न हो सकी। वह बोल उठा—"ऐसा मैंने कौन सा आदर्श का काम किया धीरेन बाबू! जिसके विषय में आप मेरी प्रशंसा का पुल बाँध रहे हैं ? संसार में मेरे जैसे लोगों की कमी नहीं—अधिक-से-अधिक परोपकारी हैं! अवश्य

मैं धनी होने पर एक ऐसी संस्था ही चलता और ऐसी बहनों को योग्य बनाने में अपनी सेवा समर्पित करता। इतना तो मेरे ख्याल से, मानव-प्राणी का धर्म ही होना चाहिए। इससे अधिक मैं क्या कर सका हूं ?"

नवीन ने अपनी गर्दन नीचे झुका ली। उसे सचमुच अपने आप पर क्षोभ हो रहा था—क्यों उसने राधा की बात संपादक के सामने कह डाली ? नवीन और न जाने क्या सोच ही रहा था कि, इसने में धीरेन बाबू बोल उठे—"मैं समझ गया, नवीन बाबू ! यह अपने को छिपाने का उद्योग कर रहे हैं। भगवान को अनेक धन्यवाद है कि, उन्होंने आपको प्रेरणा देकर मुझसे मिलाया। आज आपके सच्चे रूप का मुझे दर्शन मिला है। अब चाहे आप अपने को छिपाएँ, पर दुर्भाग्य है, आप इसमें सफल न होंगे। मैं पहले आपकी प्रतिभा का कायल था ; आज आपकी कर्म्मठता का कायल हूँ। यह खुशी की बात है कि, आप यदि धनी होते तो न जाने कितनी आत्माएँ आपसे परितृप्त होतीं। आपने अभी स्वीकार किया है कि, दरिद्रनारायणों को अपनी सेवा अर्पित कर सकते हैं। मैं भी आपसे यही आशा रखता हूँ। पर, क्या आप एक निवेदन स्वीकार करेंगे ?"

"कहिए, स्वीकार है !"

"मैं यथाशक्ति द्रव्य-संग्रह का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। मेरे ख्याल में दरिद्रनारायणों की सेवा ही सच्ची तपस्या है। मैं इस कार्य में पूरा हाथ बटाने को तैयार हूँ। द्रव्य की चिंता मैं आपको

न होने दूँगा। हाँ, सारी जिम्मेवारी आप पर रहेगी। पर अभी तो मुझे ऐसा सुयोग अवश्य दें कि मैं श्रीमती राधा देवी का सचित्र परिचय देकर लोकमत इकट्ठा कर सकूँ। जनता तो अपने सामने आदर्श चाहती है! यदि वह आदर्श सुंदर हुआ तो उसमें वह हाथ बँटाती है। अवश्य उसमें भी ऐसे लोग होते हैं जिनका काम छिद्रान्वेषण करना होता है; पर, भय की बात नहीं। समाज में आलोचक रहेंगे ही और प्रशंसक भी। अब कहिए, आपकी क्या आज्ञा है ?"

इसबार नवीन को उन्होंने मूक कर डाला। नवीन सिर झुकाए बड़ी देर तक सोचता रहा अंत में वह बोल उठा—"जैसा आप आवश्यक समझें, मुझे स्वीकार है।"

धीरेन बाबू आनन्द से उछल पड़े। उनकी सजीव आंखें चमक उठीं। वह उल्लास में बोल उठे—"तो मुझे कल ही फोटो मिल जाना चाहिए। आज मैं संपादकीय वक्तव्य में एक वृहत लेख लिखूँगा, उसमें राधा देवी का आदर्श रखते हुए आपका परिचय रहेगा।"

"कल कैसे हो सकेगा ?"—नवीन बोल उठा,—"राधा का फोटो है नहीं, और न कभी ऐसा अवसर ही..................।"

"कोई बात नहीं, कल मैं सबेरे आपके यहाँ कैमरा लेकर आऊंगा। मैं स्वयं एक फोटोग्राफर भी हूं—आसानी से हो जायगा। साथ ही आपका फोटो भी ले लूँगा।"

नवीन के लिए अब दूसरी विपत्ति आई। वह धीरेन को क्या

सड़ी गली गुदड़ी पर बैठाने को कभी सम्मत हो सकेगा ? दीनता का नग्न प्रदर्शन! नवीन के लिए क्या यह कभी संभव है ? वह विना कुछ सोचे-समझे, विना किसी हिचकिचाहट के बोल उठा—"नहीं-नहीं, आपको कष्ट नहीं करना पड़ेगा। राधा देवी आपसे स्वयं मिलना चाहती है, मैं कल सबेरे उसे यहीं लेते आऊंगा।"

"अच्छा, अच्छा, मुझे स्वीकार है—ऐसा ही हो!" धीरेन बाबू विना कुछ आपत्ति किए बोल उठे।

नवीन के हृदय का कंपन दूर हुआ। बड़ी आसानी से वह अपनी दीनता के प्रदर्शन से बच गया। उसकी ग्लानि दूर हुई।

नवीन को संपादक जी से बातें करने में बहु समय लग गया। उसे स्मरण हुआ, ललित से भी आज ही मिलना है इसलिए उसकी दृष्टि सहसा दीवाल पर लटकती घड़ी पर गयी। यह क्या ? चार बजने में कुछ ही देर है! वह चंचल होकर उठ खड़ा हुआ और संपादक महोदय से कल फिर राधा के साथ मिलने की बात करते हुए आज के लिए विदा ली। नवीन नमस्कार जता कर बाहर की ओर चल पड़ा। उसने देखा, चार-साढ़े चार के बीच उनसे मिलना है और यहां से उनका घर सात मील से कम नहीं होगा। इसलिए वह ट्राम की प्रतीक्षा करने लगा; पर पाँच मिनट भी नहीं बीता कि भवानीपुर वाली ट्राम आई और वह उस पर जा बैठा। ट्राम अपने पथ पर दौड़ पड़ी।

——:०:——

—इकतीस—

नवीन ट्राम से उतर कर पैदल ही चल पड़ा। पैदल चलने के सिवा और कोई उपाय भी तो नहीं था। शहर से बाहर—बहुत बाहर छोटे-छोटे दो झुके हुए मकान थे, वहीं ललित रहता था। एक में उसका बैठकखाना था और दूसरे में उसके बाल बच्चे रहते थे। नवीन बैठकखाने में जाकर हाजिर हुआ।

बैठकखाने में एक आदमी मानो उसकी प्रतीक्षा में ही नियुक्त था। उसने नवीन को देखते हुए पूछा—"क्या आपका नाम ही नवीन बाबू............!"

"हाँ, मैं ही हूँ।"

"अच्छा तो चलिए मेरे साथ। बाबू बड़ी देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

नवीन उसके साथ हो लिया। वह उस बैठकखाने में गया।

उसमें जाकर भीतर जाने को रास्ता था। उसके मुँह पर लोहे का ढक्कन था, जिस पर पुआल बिछा हुआ था और ऊपर से दरी बिछी हुई थी। उसने दरी को हटाया, पुआल अलग किया और लोहे के ढक्कन को ऊपर उठाते हुए कहा—"नवीन बाबू! चले जाइए इस राह से; मैं यहीं रहूँगा।"

नवीन को आज ही पता लगा कि, ललित का असल बैठक-खाना तहखाने के भीतर है। उसे आश्चर्य भी हो रहा था ललित का अद्भुत उद्योग देख कर। वह सीढ़ी से नीचे उतर रहा था, वहाँ काफी अंधकार था, फिर भी वह टटोलते हुए अंधकार को भेद कर आगे बढ़ चला। कुछ दूर जाने पर उसे प्रकाश की क्षीण रेखा दीख पड़ी। नवीन उसके सहारे आगे बढ़ता गया और ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों प्रकाश उसे अधिक मिलता गया। कुछ दूर जाने पर उसे जन-रव सुन पड़ा। उसने अनुभव किया, बहुत से आदमी किसी विषय पर विचार कर रहे हैं। नवीन जन-रव और प्रकाश के सहारे उपयुक्त स्थान पर पहुँच गया।

यह क्या? नवीन आज कहाँ पहुँच गया है? क्या देख रहा है वह? वह विस्फारित नेत्रों से वहाँ का दृश्य देखने लगा। ललित ने उसे देखा—वह उठ कर आया और उसे बड़े तपाक के साथ लिवा कर आसन पर बैठाया। उसने देखा—कोई पचास-साठ आदमी वहाँ बैठे हुए हैं। कुछ देर पहले सभी बातों में व्यस्त थे, पर नवीन के आने पर वहाँ सन्नाटा था। कुछ देर तक यहाँ सन्नाटा ही रहा।

नवीन को अचंभित देख कर ललित बोल उठा—"तुम आज जिस दुनिया में आगए हो नवीन! वह एक अलग दुनिया है। ये लोग इस दुनिया की प्रजा हैं। आश्चर्य की कोई बात नहीं, तुमको मैं अपने से भिन्न नहीं समझता। हम लोगों के सिवा आज तुम पहले आदमी हो जिसे इस दुनिया में पहुँचने का अवसर मिला है। यहाँ हम लोगों की पार्लामेंट बैठती है और यहीं का आदेश लेकर हमारे वीर बाहर में अपना कौशल दिखलाते हैं। आज केवल तुम से परिचय कराने को इनलोगों को यहीं रख छोड़ा था, पर अब ये सब यहाँ से अभी रवाना होंगे। हमलोगों की यही दुनिया है—यही सब कुछ है!"

नवीन को पता लगा कि ललित अपने काम में कितना प्रयत्नशील है। इतनी बड़ी जन-संख्या को लेकर आधिपत्य करना अवश्य ललित की कार्य-चातुरी का पुष्ट प्रमाण है। नवीन ने देखा—दीवाल से न जाने कितने हथियार लटक रहे हैं, कितनी तलवारें, कितनी बंदूकें, कितने पिस्तौल, कितने बर्छे और न जाने क्या-क्या! ललित ने नवीन को विस्फारित नेत्रों से इन चीजों को देखते हुए कहा—"अच्छा तो नवीन! उठो—चलो, मैं दूसरा तहखाना दिखाऊँ।"

ललित इतना कह कर भीतर गया—दूसरे तहखाने में। वहाँ का दृश्य देख कर नवीन और भी स्तंभित हो उठा उसने देखा—वहाँ बारूदों का ढेर-का-ढेर पड़ा है और बेल की तरह न जाने कितने बम बने हुए करीने से रखे हैं।

नवीन ने यह सब देख कर जिज्ञासा भरे शब्दों में पूछा—"मैं नहीं जानता था कि, आपने इतना बड़ा कारखाना खोल रखा है। पर, मुझे समझ में नहीं आता कि, आखिर इन सबों की आप को क्या जरूरत है ?"

ललित ठहाका मार कर हँस पड़ा, बोला—"जरूरत ? जरूरत आखिर किसकी नहीं है इस दुनिया में ? चाहे औरों को न हो, मगर हमलोग इनकी जरूरत समझते हैं। इनसे समय आने पर हमलोग काम ले सकते हैं। हमलोगों का उद्देश्य और कुछ है, पर अभी उसके लिए समय नहीं आया।"

ललित के मुंह पर एक अपूर्व आभा थिरक रही थी—उसकी आँखें खिल रही थीं। नवीन ने उसकी आकृति पर दृष्टि डाली, उसकी उत्कंठा बोल उठी। वह उल्लसित होकर बोल उठा—ललित 'दा ! मैं नहीं जानता था कि, तुम्हारे दिल में इस तरह की आग सुलग रही है।"

सहसा नवीन ने देखा—ललित की आकृति गंभीर हो गई, उसकी भवों पर सिकुड़ने पड़ गईं, आँखें अंगारे के समान लाल हो उठीं; वह आवेश में आकर बोल उठा—"आग सुलगने की बात कहते हो ? नवीन ! तुम्हें दुनिया का अभी पता ही क्या है ? तुम तो ठहरे कवि ! दूसरों का दुख-दर्द भला तुम क्या समझो ? नृशंस.......... ...!"

ललित के नथुने फूलने लगे, वह जो कुछ बोलना चाहता था, बोल न सका। उसकी आकृति भयंकर हो उठी।

दोनों चुप थे।

कुछ देर के बाद ललित झड़ी की तरह फूट पड़ा, उसने गले पर जोर डाल कर कहना शुरू किया—"असह्य हो उठा है मेरे लिए अपमान का बोझ संभालना! पद-दलि होकर जीने से मरना लाख दर्जा अच्छा है, नवीन! हम किस-किस को सोचें? लात खाकर भी हमारे होश ठिकाने नहीं आते! बहू-बेटियों पर आफत तो है ही, जो चाहता है लूटता है! हमारे कानून हमें सिकंजे में कसे हुए हैं! हमारा समाज हमीं पर छुरी चलाने को तैयार बैठा है! हमारे धनी हमारा ही गला घोंट रहे हैं! और हमारी सरकार..............!"

वह कहते-कहते और भी आवेश में आ गया। उसका गला रुँध गया था। वह कहना चाहता था पर रोष के मारे उसके गले से आवाज ही न निकलती थी। वह अपने को संभालने का प्रयत्न कर रहा था; इसलिए वह दम साधे हुए चुप रहा। नवीन उसकी ओर टकटकी बाँध कर देखता रहा। कुछ क्षण के बाद ललित का रोष उबल पड़ा—"मैंने अपनी शक्ति इकट्ठी कर ली है, सिर्फ अवसर आने की देर है! समझा नवीन! केवल अवसर की ताक में हूँ—हमारा दल सब तरह से तैयार है! गो, उसकी संख्या बहुत कम है, पर मैं उतने से ही काम निकाल लूंगा। विस्फोटक जल्द ही फटने वाला है। मैं जला कर राख कर दूंगा! अन्याय को सह लेना मानो अन्याय को प्रश्रय देना है। अब मैं इन बातों को नहीं सह सकता। क्या तुम मेरे दल में शरीक़ हो सकते हो?"

नवीन मानो आकाश से गिर पड़ा। वह नहीं समझ सका कि, वह कहाँ है और क्या सुन रहा है ? उसका भाव-प्रवण हृदय थर्रा उठा। उसका सरल और कोमल हृदय इस प्रस्ताव से रो उठा। उसने ललित को अपने सामने विध्वंसक रूप में पाया। वह रूप उसका बड़ा भी भयावह था ! नवीन भय से कांप रहा था। उसकी आकृति पर करुणा कांप रही थी। बोध हो रहा था, नवीन वध्यभूमि में बध करने को अभी उपस्थित किया गया है।

ललित ने नवीन को कांपते हुए देखा और भय से विह्वल। वह ठहाका मार कर हँस पड़ा और नवीन के मुंह पर एक मीठी चपत लगाते हुए बोल उठा—"वाह मेरे कवि जी ! इतने डरपोक हो ? क्यों रो रहे हो ? ऐसे डरपोक से हमलोगों का काम नहीं निकल सकता। मैं जानता था, तुम सरल हो, कोमल हो, भावुक हो। यह तो केवल तुम्हारी एक हल्की सी जाँच है। अब और तुम्हारी जाँच न लूँगा।"

ललित ने उसकी पीठ पर थपकियाँ लगाकर उसे आश्वासित किया। नवीन ने देखा—उसका सपना टूट रहा है और वह वास्तविक स्थिति में उतर रहा है। कुछ देर के बाद उसे शांति मिली। उसने लज्जा का अनुभव किया—उसकी गर्दन झुक गई।

ललित का रौद्र रूप जाता रहा। उसके ओठों पर मुस्किराहट दौड़ गई। वह नवीन को प्रोत्साहित करते हुए बोल उठा—"नहीं नवीन ! तुम्हारे लिए ऐसा नृशंस व्यापार शोभा की बात नहीं हो सकता। तुम जैसे भावुक हो, उसके लिए कुछ और ही काम होना

चाहिए। मैं भी यही कहूँगा कि तुम अपने जीवन को अधिक सुंदर, अधिक महत्वपूर्ण और अधिक सेवामय बनाओ। अवश्य मैं तुम्हारा शुभचिंतक हूँ और रहूँगा। तुम अपने लिए कोई पथ निर्द्धारित कर लो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। तुम्हारे साथ मेरा पहले से जैसा व्यवहार रहा है, वैसा ही सदा के लिए रहेगा—विश्वास है! तुम अभी मुझे जैसा नृशंस समझ रहे हो, कदाचित मैं अवश्य वैसा हूँ, फिर भी मुझ में मनुष्योचित दया-ममता भी पाओगे। आज मैं तुम्हें उसी ममता का पात्र समझ रहा हूं। मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ और सदा के लिए रहूँगा। क्या तुम अपना निर्णय मुझे सुना सकते हो?"

नवीन सोचने लगा। उसकी आकृति में क्षण-क्षण पर परिवर्त्तन हो रहा था। पर, सहसा उसने अपने लिए राह चुन ली और नम्र स्वर में बोल उठा—आपके शील और सौजन्य पर मैं मुग्ध हूं। अवश्य मैं आपको बड़े भाई के रूप में पाकर धन्य हुआ हूं। मुझे खेद है कि मैं आपके सिद्धांत पर नहीं चल सकता, पर आपका आश्वासन पाकर मैंने अपने लिए जो राह तजबीज की है; वह है अभागों के लिए एक आश्रम का प्रतिष्ठान। और मेरे लिए इससे उत्तम और कोई रहा नहीं दीख पड़ता। यदि आप मेरी सहायता कर सकें तो ऐसा कर सकते हैं।"

ललित नवीन के प्रस्ताव पर खिल उठा। वह हँसते-हँसते बोल उठा—"शाबाश! शाबाश नवीन! मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूं। यह तुमने अपने अनुरूप ही काम चुना। मैं जरूर मदद

करूँगा और सब तरह से करूँगा । क्या तुमने इसके लिए कोई योजना भी तैयार की है ?"

"नहीं तो ! अभी तो केवल विचार ही उठा है। मुझे चिंता थी तो इतनी ही कि यह कार्य द्रव्यसाध्य है और जबतक द्रव्य संचय न हो ले......... ।"

ललित प्रसन्नता के मारे उसकी बात काट कर बोल उठा— "अब इसकी चिंता न करो नवीन ! मुझे हर्ष है कि मेरे पाप के कमाए हुए धन' का अब सुन्दर उपयोग हो सकेगा। अब देर करने की आवश्यकता नहीं; जितना शीघ्र हो सके, काम में लग जाओ !"

ललित का प्रोत्साहन-वाक्य सुन कर नवीन का हृदय खिल उठा। कुछ देर पहले उसे वहाँ आने का जो क्षोभ हुआ था और भय—वह आप-से-आप दूर हो गया। उसने ललित को बड़ी श्रद्धापूर्ण दृष्टि से देखा। उसका कृतज्ञ हृदय मन ही मन उसकी प्रशंसा कर रहा था। वह शांत था—नीरव था।

बातों ही बातों में काफी समय निकल गया। उसके बाद नवीन को घर लौटने का विचार सजग हुआ। वह चंचल हो उठा; उसने ललित से घर जाने की आज्ञा मांगी।

ललित उसे लेकर पहले वाले तहखाने में आया। वहाँ उन दोनों के भोजन के लिए सभी सामान ठीक थे। ललित ने नवीन से खाने को कहा, पर नवीन चाहता था वह घर जाकर ही खाये; फिर भी ललित के अनुरोध को वह टाल नहीं सका। वह ललित के साथ भोजन करने को बैठ गया।

ललित ने आज भोजन का विशेष प्रबंध किया था। नवीन ने जी भरकर भोजन किया। अवश्य आज ललित के साथ भोजन करने में उसे परितृप्ति मिली।

भोजनादि के बाद ललित ने अपने दल के विशिष्ट व्यक्तियों से नवीन का परिचय कराया। नवीन ने देखा—सब-के-सब पढ़े लिखे योग्य और विद्वान हैं। कुछ देर पहले नवीन को उन लोगों के प्रति जो एक दूषित धारणा थी, अब वह आप-से-आप दूर हो गई। नवीन ने उनलोगों से हाथ मिला कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

ललित नवीन को लेकर बाहर निकला। उसने अंधकार में देखा। मानो वहाँ नीरवता का साम्राज्य छाया हुआ है। भला उस नीरवता को देख कर कौन अनुमान कर सकेगा कि इसके भीतर विध्वंसकों का दल खुशियाँ मना रहा है ?

ललित टॉर्च के सहारे उसके साथ कुछ दूर तक आया, उसके बाद वह बोल उठा—"यह टॉर्च लो नवीन! और जाओ—फिर कभी मैं मिलूँगा। तुम अपनी योजना तैयार कर लो और जितना शीघ्र हो आश्रम की स्थापना में लग जाओ!"

नवीन ने कहा—"हाँ ऐसा ही होगा, ललित दा!"

ललित ने अपनी जेब से नोटों का बंडल निकाल कर नवीन के हाथ पर रखते हुए कहा—"इसे ठीक से जेब में रख लो, नवीन! मैं समझता हूँ, आश्रम की स्थापना में इससे काफी सहायता मिलेगी। समय पर फिर मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। आज जो कुछ था, तुम्हारे सामने है।"

नवीन विस्मय-विमुग्ध होकर उसकी ओर देखता रहा, पर, उसकी आवाज गले से न निकल सकी—यहाँ तक कि वह उसे धन्यवाद भी न दे सका।

नवीन वहाँ से अपने घर की ओर चल पड़ा।

—बत्तीस—

नवीन दस बजे रात को घर पहुँचा। राधा प्रतीक्षा में रसोई बना कर बैठी थी। उसने नवीन को देख कर बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा—"आज क्या कर आए, नवीन बाबू! इतनी रात कैसे हो गई?"

राधा नवीन की बातें सुनने को उत्कंठित हो बैठी। उसने देखा—नवीन का मुख-मंडल पूर्णचंद्र-जैसा खिला हुआ है—उसकी आँखें मदिरा में डूबी हुई हैं। ऐसा प्रसन्न मुख-मंडल राधा ने कभी नहीं देखा था। वह नवीन से सविस्तार हाल जानने को व्यग्र हो उठी। उसे ख्याल तक न हुआ कि, नवीन के मुंह-हाथ धोने को वह जल ले आवे। नवीन बरंडे की चौकी पर लेट गया, राधा जमीन पर बैठ गई।

नवीन को सहसा संपादक की फोटो लेने की बात स्मरण हो आई। वह मुस्किराते हुए बोल उठा—"तुम्हारी लिखावट पर संपादक महोदय मुग्ध हैं, राधा! वह कल फोटो लेने को अपने यहाँ आने वाले थे, पर मैंने उनसे कह दिया है कि मैं ही तुम्हें लेकर उनके पास पहुँचूंगा। क्यों? राधा, तुम्हें कुछ आपत्ति तो नहीं?"

राधा को यह भी मालूम नहीं था कि, फोटो किस तरह से लिया जाता है। वह नहीं समझ सकी, फोटो के लिए उसे जाने की क्यों आवश्यकता है? वह उधेड़बुन में थी कि, नवीन फिर से बोल उठा—"संपादक महोदय तुम्हारा परिचय, तुम्हारे चित्र के साथ अपने पत्र में निकालेंगे। उन्हें तुम्हारे विषय में मैं सविस्तर कह आया हूँ। कल तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा। कदाचित् तुम्हें उनके सामने उपस्थित होने में संकोच हो सकता है; पर संकोच की कोई बात नहीं; वे हमारे मित्र हैं और शुभचिंतक।"

राधा नवीन की बातों से प्रसन्न-सी न दीख पड़ी। उसे हुआ—नवीन ने संपादक से उसका परिचय देकर मानो उसे नग्न कर दिया है। वह नहीं चाहती थी कि उसका पूर्व रूप नवीन के भिन्न और कोई देखे। पर, वहाँ तो नवीन ने संपादक पर प्रकट ही नहीं कर दिया है, वरन् वह डंके की चोट से समस्त पठित समाज पर प्रकट कर देना चाहता है। अवश्य इन विचारों से राधा का चेहरा तमतमा आया, उसकी उत्फुल्लता नष्ट हो गई, वह क्षोभ और ग्लानि से मर्म्माहत होकर नीचे की ओर देखने लगी। उससे कुछ कहा न गया।

पर, नवीन से वह अपने को न छिपा सकी। नवीन समझ गया—राधा अपना परिचय दूसरों को नहीं देना चाहती और वह उसका परिचय संपादक से दे चुका है। वह इस विचार से बड़ा खिन्न हो उठा। उसने समझा—अवश्य उसने भारी भूल की है और जानबूझ कर की है। वह सोचने लगा—उसे क्या अधिकार था कि राधा का वह रूप किसी अन्य के समक्ष पेश करे? क्या वह उसे आश्रय देकर अपमानित करने का भी अधिकार पा गया है? नवीन चिंता में पड़ गया। वह समझने लगा—राधा के प्रति उसने जो अन्याय किया है, वह बड़ा गुरुतर है।

नवीन ने एक गहरी आह ली और वह टकटकी बांध कर छत की ओर देखने लगा।

राधा सरल थी, पर समझदार थी। वह नवीन को—अपने आश्रय-स्थल को—अपनी अमूल्य निधि देकर भी प्रसन्न देखना चाहती थी। वह नहीं समझ सकी कि नवीन में क्यों इतना शीघ्र परिवर्त्तन हो गया। उसे अपने आपका स्मरण हो आया। वह आप पर बड़ी क्षुब्ध हुई। वह जोर डाल कर अपने मुंह पर मुस्किराहट लाकर बोल उठी—"कल किस समय चलना होगा, नवीन बाबू?"

नवीन सहसा चौंक उठा। उसे ऐसा उत्तर पाने का अनुमान तक न था। वह जरा रुक कर बोल उठा—"अब तुम्हें मैं न ले जाऊँगा राधा! कदाचित् जीवन में इससे अधिक भूल की है

वा नहीं—मुझे नहीं मालूम। क्षमा करो, राधा! अब तुम्हें ऐसा कष्ट न दूँगा।"

राधा ऐसा सुनने को तैयार न थी और न उनका हृदय ऐसा मानने को तैयार था। वह इन उत्तरों को पाकर रोष से काँप उठी और बिगड़ कर बोल उठी—"क्षमा मांग कर मुझे आप लज्जा की कीचड़ में क्यों डाल रहे हैं, नवीन बाबू! आपका क्या मेरे प्रति विश्वास उठ गया? आपको यदि मुझ से किसी प्रकार का खेद हो तो मैं एक घड़ी भी आपको कष्ट देना नहीं चाहती, और नहीं तो गंगा की गोद तो मुझे शांति देगी ही! आपने ऐसी कौन सी भूल की है जिसके लिये आप इतना दुखी हो रहे हैं?"

"भूल? हाँ, भूल की है"—नवीन बोल उठा—"मैंने विना तुमसे अनुमति लिए तुम्हारा परिचय उन्हें दे दिया। मैं नहीं जानता था कि, इससे तुम्हें इतना कष्ट होगा..........!"

नवीन चुप होकर मानो कुछ सोचने लगा। राधा को अपनी भूल मालूम पड़ी। उसे हुआ—मानो नवीन ने उसका हृदय पढ़ लिया है। वह बड़ी विचलित-सी हो उठी। उसे इस अनजाने अपराध पर रुलाई आ गई और वह रोते-रोते ही बोल उठी—"मेरी बुद्धि ही कितनी नवीन बाबू! पर आपने अबतक कदाचित् मुझे अच्छी तरह पहचान नहीं पाया, इसका खेद है। अवश्य मैंने पहले ऐसा ही समझा था, पर अब मुझे जरा भी दुःख नहीं है। मैं पहले चाहे जैसी रही होऊँ, उस संबंध में यदि कोई जान ही ले तो इसमें कौन-सी खेद की बात? मनुष्य में कमजोरियाँ न रहें;

तो वह अवश्य अपूर्ण ही कहलायगा। उसकी पूर्णता उसकी कमजोरियों में ही है। मैं भी मनुष्य हूँ। एक जमाना था, मैं वैसी थी—नीच कुल में, नीच संसर्ग से पैदा हुई, राह-राह की भीख मांगने वाली, अपनी अस्मत-इज्जत..............!"

इसके आगे वह बोल न सकी। उसका गला रुद्ध हो गया, सिसकियाँ बंध गईं और वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

नवीन बड़ा चक्कर में पड़ा। मालूम हुआ जैसे उसके क्षत स्थान को खुरच दिया है, जैसे उसने जले घाव पर नमक छिड़क दिया है, जैसे उसने उसके कोमल तंतुओं को पैरों से रौंद डाला है। वह मन-ही-मन पश्चात्ताप की आग में झुलसने लगा। उसने हठात् आवेग में आकर राधा का हाथ पकड़ लिया, बोला—"राधा ! राधा !"

राधा के आँसू मानो रुक-से गए; उसका मन शांत हो गया। मानो कुछ हुआ ही न हो, ऐसा नवीन को जान पड़ा। वह बोल उठा—"और अधिक नहीं सुना चाहता, राधा! अवश्य मैं तुम्हें पहचान न सका था!"

कुछ देर तक दोनों चुप-से रहे। मानो दोनों अपनी-अपनी भूलों की आप समीक्षा कर रहे हों। कुछ क्षण तक दोनों की यही दशा रही, उसके बाद निस्तब्धता को भंग करते हुए राधा बोल उठी—"रात अधिक हो गई है, नवीन बाबू! चल कर भोजन कर लें।"

यद्यपि नवीन भोजन कर के ही वापस आया था, पर आज राधा को प्रसन्न करना था, इसलिए वह छूटते हुए ही बोल उठा—

"हाँ, तैयार हूं राधा! ले आओ यहीं—और अपने लिये भी। दोनों भोजन कर लें।"

राधा उठी और क्षण भर में भोजन का सामान लेकर पहुँच गई। दोनों ने साथ-ही-साथ भोजन किया।

दोनों में और किसी तरह की बात न हुई। दोनों अपनी अपनी जगह पर जाकर सो गये।

सबेरे बहुत तड़के उठ कर राधा नहा-धोकर तैयार हो गई। उसने नवीन को जगाते हुए कहा—"मैं तैयार हो गई, नवीन बाबू! आप भी जल्द तैयार हो लें। चलना जो है?"

नवीन को राधा के अंतिम वाक्य से स्मरण हो आया कि आज सबेरे ही उसे साथ लेकर संपादक के बंगले पर जाना है। नवीन हड़बड़ा कर उठ बैठा, अंगड़ाइयाँ भरीं और बोला—"धन्यवाद है राधा! जरा जलपान तैयार कर लो! मैं तबतक तैयार होता हूँ।"

और वह नित्यकर्म करने को बाहर चल पड़ा।

ठीक समय पर दोनों संपादक के पास जा पहुँचे। वे इन दोनों की प्रतीक्षा में कैमरा फिट कर प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि दोनों उनके सामने उपस्थित हुए। संपादकजी से नवीन ने राधा का परिचय कराया। राधा ने बड़े भक्तिभाव से दोनों हाथ उठा सिर झुका कर प्रणाम किया। उन्होंने राधा से मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।

संपादकजी ने दोनों का अलग-अलग फोटो लिया। राधा फोटो लेने के समय बड़ी 'नरभस' हो रही थी। उसे बोध हो रहा था,

जैसे फोटो लैंस के साथ उसकी आत्मा ही खींची जा रही हो। बहुत थोड़ी देर में यह क्रिया संपन्न हुई।

संपादक नेगेटिव को काले कपड़े से लपेट कर आफिस रूम में आए ; साथ ही साथ नवीन और राधा भी। दोनों को उपयुक्त आसन पर बिठाया। संपादक महोदय बैठते हुए धन्यवाद के स्वर में बोल उठे—"नवीन बाबू ! मैं आपका अतिशय अनुगृहीत हूं। आज आपने राधा देवी के साथ परिचय कराकर मेरा बड़ा उपकार किया है। अवश्य आपलोगों का सचित्र परिचय देकर मैं अपने को अतिशय उपकृत समझूंगा।"

राधा देवी लज्जा से संकुचित हो रही थी। नवीन ने उनके उत्तर में कहा—"अनुगृहीत होने की आवश्यकता नहीं धीरेन बाबू! हमलोगों को आपकी कृपा पाकर सेवा का उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है। वास्तव में आप ही हमलोगों के धन्यवाद के पात्र हैं।"

संपादक महोदय के मुख-प्रदेश पर गौरव की आभा थिरक कर रह गई पर, स्वयं कुछ न बोल सके।

थोड़ी देर तक इधर उधर की बातें होती रहीं। राधा उनके सामने लज्जा से संकुचित हो, चुपचाप बैठी रही। उसका सिर नीचे झुका ही रहा, वह मुंह एक शब्द तक न बोल सकी। नवीन ने उसे इस रूप में अधिक देर न रख कर उनसे विदा मांगी। दोनों ने नमस्कार जता कर अपने घर की ओर चलने को कदम बढ़ाए।

संपादक महोदय ने चलने के समय राधा को लेकर मित्र के यहाँ पार्टी में उपस्थित होने का नवीन से अनुरोध किया, पर नवीन

उत्तर में मुस्किराते हुए बोल उठा—"कदाचित् राधा को आने में आपत्ति हो, धीरेन बाबू! आप देख ही रहे हैं, यह लज्जा के भार से कितनी झुकी-सी जा रही है।"

धीरेन बाबू नवीन की बात पर हँस पड़े। बोले—"मैं श्रीमती राधा देवी से भी अनुरोध कर रहा हूं। आशा है, वे भी आने की कृपा करेंगी। क्यों देवीजी?"

राधा के ओठ हिलकर रह गए, पर मुंह से वह कुछ भी बोल न सकी।

दोनों घर की ओर चल पड़े।

रास्ते में राधा बोली—"संपादकजी बड़े सहृदय व्यक्ति हैं। मैं उनका अनुरोध मान लेती, पर मैं तो निमंत्रित की नहीं गई थी, फिर चलती तो कैसे?"

नवीन ने समझा—राधा साधारण हाड़-चाम का पुतला नहीं है, वरन् कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भी इसे पूरा ध्यान है। उसे इन बातों को सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह बोल उठा—"कहना सत्य है राधा! मगर जब वह अपने मित्र की ओर से तुम से अनुरोध कर रहे थे तो तुम्हें अवश्य उसकी रक्षा करनी चाहिए थी। पर, यह तो कहो राधा! गूंगी-जैसी क्यों बनी बैठी थी? क्या उनके साथ बातें करने में इतने संकोच से काम लेना चाहिए था?"

"अवश्य मुझे अपने आप पर रंज है, नवीन बाबू!"—राधा ने उत्तर में कहा,—"पर आपको यह भी तो सोचना चाहिए था, जिसने कभी आपके सहवास में आकर, घर से बाहर कदम नहीं

बढ़ाया, जिसे अब तक किसी अन्य के साथ मिलने-जुलने, बातें करने का सुयोग न मिला, वह यदि दूसरे के सामने कहने में संकोच कर बैठी तो क्या यह अस्वाभाविक कहा जायगा ? आप ही विचारें, मैं किस परिस्थिति में थी। क्या मुझे गूंगी के रूप में रहने में परिस्थिति का विशेष हाथ न था ?"

राधा बोल कर चुप हो रही। नवीन ने उसकी सच्ची किंतु खरी बातें सुनकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—"अवश्य ! अवश्य राधा ! पर, मुझे आशा है, भविष्य तुम्हारे गूंगेपन को दूर करेगा—और अवश्य करेगा।"

"खैर, भविष्य की बात तो मैं भी नहीं कह रही हूँ। समय पड़ने पर कौन क्या नहीं करता ? उस समय भी, मैं समझूंगी परिस्थिति का ही हाथ है।

बातों-ही-बातों में दोनों घर पहुँच गए। नवीन ने दर्वाजा खोला। दोनों भीतर गए। नवीन कपड़े उतार कर कुर्सी पर बैठ गया; राधा रसोई का प्रबंध करने को चल पड़ी।

संध्या के पाँच बजे नवीन चलने को तैयार हो ही रहा था कि राधा ने कमरे में प्रवेश किया। नवीन उसे देखते ही छूटते हुए बोल उठा—"क्यों राधा ! सच ही तुम नहीं चलोगी पार्टी में ?"

"माफ कीजिए, नवीन बाबू ! इस बार आप जाएँ, अभी मुझे दिल को पक्का तो कर लेने दें, तब देखिएगा मैं किस तरह पार्टी और सभा में सम्मिलित होती हूं !"

राधा के ओठों पर मुस्किराहट दौड़ पड़ी। नवीन ने यह लक्ष्य किया। उसे प्रसन्नता हुई यह जानकर कि, राधा अपने को सभा सोसाइटी के योग्य बना रही है। वह उसकी बातों का समर्थन करते हुए बोल उठा—"हाँ, राधा ! तुमसे ऐसी ही आशा रखता हूं।"

राधा हँस पड़ी, नवीन भी हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही घर से बाहर की ओर चल पड़ा।

ठीक छः बजे धीरेन बाबू के साथ नवीन अपने मित्र की पार्टी में जा मिला। मिसेज़ वर्मा वेशकीमती कपड़ों से लैस हो आगंतुकों का स्वागत कर रही थी। उसने उन दोनों को आते हुए देखा, अगवानी की और सेकहैंड कर दोनों को योग्य आसनों पर ला बिठाया। पार्टी में करीब-करीब सभी निमंत्रित व्यक्ति एक दूसरे से परिचित ही थे। हाँ, केवल नवीन ही ऐसा था जिससे एक-दो को छोड़ औरों का परिचय न था। मिसेज वर्मा ने सबसे पहले उन सबों से नवीन का परिचय कराया। अवश्य अन्य उपस्थित व्यक्ति उससे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। इस सुयोग के लिए उनलोगों ने मिसेज़ वर्मा को जी खोलकर धन्यवाद दिया।

पार्टी में चुने-चुनाए व्यक्ति सम्मिलित किए गए थे—सभी अपने फ़न में उस्ताद। अधिक तो विद्वान, गुणज्ञ और सहृदय थे और शेष कवि एवं लेखक। मिसेज़ वर्म्मा के इस चुनाव को देख कर नवीन को बड़ा आनंद हुआ।

यथासमय भोज्य पदार्थों से टेबुल सजाया गया। सभी अपनी-अपनी सीट पर आ बैठे। हंसी का फौवारा छूट रहा था,

गप्पें चल रही थीं और इधर खाना हो रहा था। मिसेज वर्म्मा सभी से मुस्किराती हुई बातें कर लेतीं। किसी को पता नहीं लगा, मिसेज वर्म्मा किसे अधिक चाहती हैं।

पार्टी अच्छी जमी। सारा दिन थक कर, खड़ी रह कर, मिसेज़ वर्मा ने तरह-तरह की चीजें बनवाई थीं। मित्रों ने बड़े चाव से, मांग-मांग कर, उनकी प्रशंसा करते हुए चीजें उड़ाईं। बड़ा मजा रहा। यद्यपि मिसेज़ वर्म्मा इन कामों में व्यस्त रहीं सही, किंतु उनकी मंद-मंद मुस्कान, तितली की तरह फुदकना, उल्लास भरी चितवन और अमायिक स्नेह, अवश्य कुछ ऐसे अनोखे थे कि सभी को एक-सा रस मिला, सभी को परितृप्ति और आनंद उपलब्ध हुए।

करीब डेढ़-पौने दो घंटों के बाद भोजन शेष हुआ। पान लायची सिगरेट आए। सभी जमकर बैठ गए, मिसेज वर्म्मा भी कुछ क्षण के लिए बैठ गईं।

धीरेन बाबू ने पहले तो पार्टी की ओर से मिस्टर वर्म्मा को धन्यवाद दिया, विशेषतः मिसेज वर्म्मा को। और प्रत्युत्तर में मिसेज वर्म्मा ने सब किसी को, विशेषतः धीरेन बाबू को।

मिसेज वर्म्मा के धन्यवाद को पाकर सभी खिलखिला कर हँस पड़े, अवश्य मिसेज वर्म्मा ने भी उन लोगों के हँसने में योग दिया। रंग अच्छा रहा, सब-के-सब प्रसन्न थे।

अंत में, मिसेज वर्म्मा ने, हारमोनियम लेकर, अपनी स्वर-लहरी से सभी पर जादू डाल दिया। विदा-गान इतना भाव-

व्यंजक था कि नवीन तो उसे सुन कर लोटपोट हो उठा। केवल यही क्यों, उनमें ऐसा कोई नहीं बचा जिस पर मिसेज वर्म्मा का प्रभाव काम न कर गया हो।

खैर, सही-सलामत सभी अपने-अपने घर की ओर अग्रसर हुए। नवीन धीरेन बाबू के साथ, उन सबों से मिलकर अपने गंतव्य पथ पर चल पड़ा।

—तैंतीस—

एक-डेढ़ सप्ताह के बाद 'बींसवी सदी' का विशेषांक प्रकाशित हुआ। साथ ही 'आलोक' साप्ताहिक में नवीन के आश्रम की पूरी स्कीम। पाठकों ने विशेषांक के लेखों और संपादकीय वक्तव्य से नवीन का परिचय पाया और लगे हाथ 'आलोक' में प्रकाशित स्कीम से उसकी लगन और तत्परता। धीरेन बाबू ने लगातार कई अंकों तक इस तरह के आश्रम की आवश्यकता समझाते हुए, उसकी संस्थापना के लिए अपील निकाली। कहना नहीं होगा कि जनता में, विशेषतः पठित समाज में, इसकी जोरों की चर्चा चल पड़ी।

इसी बीच नवीन के कहे जानेवाले मित्रों का उसके घर मानो ताँता सा बँध गया। ब्रजेंद्र, मुरारी, शंकर और न जाने कितने नवीन से मिलने, उसके लेखों की सराहना करने, उसकी स्कीम पर दाद देने को आने लगे। जिसे भी उससे घृणा थी आज उसमें अभावनीय परिवर्त्तन समझकर उसके साथ मित्रता अक्षुण्ण रखने को, उसके पास आकर उससे हँस-हँस कर बातें करते, उसकी प्रशंसा के पुल बांधते—उसे दाद देते।

नवीन समझता था, ये सब कैसे मित्र हैं। फिर भी उनके प्रति नवीन ने कभी अभिमान नहीं प्रकट किया, न कभी उदासीनता ही। पर इनमें बहुत तो ऐसे थे जिन्हें नवीन पर ईर्ष्या ही नहीं थी वरन् कुटिलता थी जो चाहते थे, नवीन को अवसर आने पर छोटा दिखाया जाय। उसके काम में अड़चन डाली जाय और संभव हो तो जनता की दृष्टि से उसे नीचे गिराया जाय।

पर धीरेन बाबू, उनके मित्र सुधीर वर्मा और सुधीर वर्मा की पत्नी श्रीमती उषा वर्म्मा का सहयोग पाकर नवीन जनता का स्नेह-भाजन और विश्वास-पात्र हो चुका था। जनता ने अपील पर ध्यान दिया, कुछ ने दान-स्वरूप रुपए भेंट किए और कुछ ने धन्यवाद-सूचक पत्र, तार और संदेश भेजे।

एक-डेढ़ महीने के अर्से में आश्रम के लिए जगह तजबीज की गई। कलकत्ते से सात मील दूर, भागीरथी के किनारे, खुले मैदान में आश्रम के लिए पचीस बीघे जमीन, नवीगंज के जमींदार की ओर से दान-स्वरूप मिली। आश्रम-फंड में करीब साढ़े सात

हजार रुपए इकट्ठे हो चुके थे और ललित के गुप्त-दान में दिए हुए नवीन के पास तीन हजार रुपए जमा थे। मिस्टर वर्म्मा स्वयं एक प्रसिद्ध इंजीनियर थे। आपने ही आश्रम-भवन तैयार करने का नकशा बनाया और अपनी देखरेख में भवन-निर्माण का भार लिया। आश्रम-भवन की ईंटें गिरीं और कलकत्ता कार्पोरेशन के अध्यक्ष के हाथों, एक वृहत् सभा के बाद, भवन की नीव डाली गई। दो महीने के भीतर भवन, काम चलाने के विचार से, बन कर तैयार हो गया।

इधर इतने दिन के भीतर 'आलोक' में इस आशय का विज्ञापन निकलता रहा—"दीनबंधु आश्रम दलित, दुःखी तथा तिरस्कृत बहनों और भाइयों को आमंत्रित करता है। २५वीं मई को आश्रम का उद्घाटन होगा। उस अवसर पर उनसे सादर अनुरोध है, कार्यकर्त्ताओं को सेवा करने का सुयोग दें।"

उक्त आशय का पर्चा भी कई दिनों तक सारे शहर में बाँटा गया।

२५वीं मई की जनता ने अधीरता पूर्वक प्रतीक्षा की।

पर, इन दिनों नवीन, धीरेन बाबू, सुधीर बाबू और श्रीमती उषा वर्म्मा काफी बेचैन रहे। रुपए संग्रह करना, आश्रम में प्रविष्ट होने वाले भाई-बहनों को समझाना, उन्हें ढाढ़स बंधाना, उनके आए हुए पत्रों का उचित उत्तर देना, लोगों की आलोचनाओं का जबाब देना, भवन-निर्माण के कार्यों की देखभाल, और उद्घाटन के अवसर पर अधिक-से-अधिक संख्या में दर्शकों के पहुंचने,

आदि के प्रबंधों में वे सब इतने व्यस्त रहे कि उन्हें अपने खाने पीने, आराम करने का भी अवसर न मिला। पर, इस परेशानी और व्यस्तता में उन्हें एक प्रकार का रस मिलता था जो अन्यत्र संभव न था।

उद्घाटन के पाँच दिन पहले ही वे सभी रात-दिन वहीं आश्रम में ही—रहकर सभा के आयोजन में लगे रहे। आश्रम के हाते में एक बहुत ही बड़ा आलीशान पंडाल तैयार किया गया। उसमें सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए बैठने का बहुत ही बड़ा सुंदर प्रबंध था। पंडाल आदर्श वाक्यों से, बंदनवार और फूल-पत्तियों से, बहुत ही सफलता पूर्वक सजाया गया था। इन कार्यों में स्वयं मिस्टर वर्म्मा और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती उषा वर्म्मा का एकमात्र हाथ था।

उद्घाटन के दो दिन पहले से—शहर के महावीर दल, स्काउट ऐसोसियेशन के स्काउट्स और नवयुग सेवा-मंडल के सदस्य अपनी सेवा से सभा को सफल करने को आ जुटे। सभी को सभी तरह के सेवा-भार सौंपे गए। उनकी देखरेख सुधीर बाबू के जिम्मे रही।

इसी अवसर पर ललित भी चुने-चुनाए अपने दल के कर्मचारियों को लेकर पहुंच गया।

पच्चीसवीं मई के उषाकाल में मंगल-भेरी बज उठी। स्वयंसेवक-दल अपने नित्य-नैमेत्तिक कर्त्तव्यों से छुट्टी पाकर अपने अपने काम में आरूढ़ हुए।

दो बजे दिन से दूर-दूर के निमंत्रित व्यक्तियों का आगमन प्रारंभ हुआ। मोटर, लौरियाँ, बसों और घोड़ा-गाड़ियों से आश्रम का मैदान भर गया। चार बजे तक दर्शकों और निमंत्रित व्यक्तियों से पंडाल ठसाठस भर गया।

व्याख्याताओं की वेदी ऊँचे स्थान में बनाई गई थी और उस से भी ऊँचा रंगमंच था, जहाँ से चारों ओर लाउड स्पीकरों के तार लगे हुए थे। रात्रिकाल के लिए पंडाल में बिजली की बत्तियाँ फिट की गई थीं।

ठीक साढ़े चार बजे सभापति का आगमन हुआ। सभी दर्शकों ने उठकर उनकी अभ्यर्थना प्रकट की। पौने पाँच बजे सभा का कार्य प्रारंभ हुआ। मंगलगान के लिए दलित दलों की पाँच मासूम बालिकाएँ पहले से तैयार कर ली गई थीं। उन सबों ने सम्मिलित गान गाया। उसके बाद स्वयं राधा देवी ने अपने मर्म-स्पर्शी गान से श्रोताओं को करुणासिंधु में आह्लादित कर दिया। उसके बाद नियमित रूप से सभापति का निर्वाचन हुआ। आश्रम के मंत्री सुधीर बाबू ने अपना लिखित भाषण पढ़कर सुनाया। उसके बाद नवीन ने अपनी सारगर्भित वक्तृता दी। उसने अपनी वक्तृता में राधा देवी का आदर्श श्रोताओं के समक्ष रखा। उसकी वक्तृता शेष होते ही तालियाँ बजाकर दर्शक-मंडली ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की, साथ ही यह भी निवेदन किया कि श्रीमती राधा देवी स्वयं हमलोगों को कुछ सुनाएँ। सभी के आग्रह और अनुरोध पर राधा देवी बोलने को उठ खड़ी हुईं। पौन घंटा तक सरल

और मधुर भाषा में अपनी राम-कहानी, अपने जन्म से वर्त्तमान काल तक, कह सुनाई। श्रोताओं पर उसके व्याख्यान का बड़ा ही सुंदर—सजीव प्रभाव पड़ा। श्रोता मंत्र-मुग्ध होकर नवीन की प्रशंसा मुक्तकंठ से करने लगे।

अंत में सभापति का बड़ा ही ललित, बड़ा ही मर्मस्पर्शी और बड़ा ही अनुभूतिपूर्ण व्याख्यान हुआ। इतना सुंदर, इतना प्रभावशाली व्याख्यान श्रोताओं को वहुत कम सुनने का अवसर मिला होगा। श्रोताओं पर इन व्याख्यानों से एक विचार-धारा बह गई। सभी उसमें डूबने-उतराने लगे।

अंत में सुधीर बाबू ने आश्रम की उपयोगिता को बतलाते हुए दान के लिए अपील की। उस अवसर पर, जब कि दर्शक-मंडली प्रभावित हो चुकी थी—दान करने को उल्लसित हो उठी। पुरुष वर्ग की बात कौन कहे, स्त्री दर्शकों में से कितनों ने बेशकीमती आभूषणों को उतार-उतार कर फेंकना प्रारंभ किया और कितनों ने रुपए पैसे और दामी कपड़े। सब मिलाकर पैंतीस हजार चार सौ साठ रुपए और बारह हजार के आभूषण एवं कपड़े दान-स्वरूप मिले।

उस दिन आश्रम के लिए स्थायी समिति के सदस्यों का निर्वाचन हुआ। उनमें पाँच व्यक्ति आश्रम की ट्रस्टी कमिटी के लिए भी चुन लिये गए।

अंत में विदा-गान के लिए वे ही पाँचों बालिकाएँ उठीं। बड़ा ही करुणोत्पादक गान गाकर उन्होंने उपस्थित सज्जनों को विस्मय-विमुग्ध कर दिया।

सभा का कार्य सफलतापूर्वक संपन्न हो गया।

सब के अंत में सभापति के द्वारा 'दीनबंधु आश्रम' के सिंह-द्वार का उद्घाटन कराया गया। आश्रम के सभी कमरे खोल दिए गए। दर्शकों ने देखा—आश्रम के सेनिटोरियम डिपार्टमेंट में लगभग पचास व्यक्ति ऐसे थे जो सर्वथा दया के पात्र थे। कोई कराह रहा था, कोई हाय-हाय कर रहा था! उस दयनीय दशा को देख दर्शकों में एक बार सन्नाटा छा गया। उफ्! बोध होता था—नरक नाम की वस्तु साक्षात् दर्शकों की आँखों के सामने भूल रही है।

उसके बाद दर्शक-मंडली दूसरी दिशा को बढ़ी। वहाँ पर सभी ने देखा—उन बहनों को जो अपनी अस्मत को बेचने के लिए लाचार की गई थीं। उनकी मुखाकृति पर आभा न थी, सौंदर्य न था; थी नैराश्य की क्षीण रेखा और था ग्लानि एवं घृणा का सम्मिश्रण। उनमें बालिकाओं की संख्या भी कुछ कम न थी जो एक दिन..........। सभी के अंत में दर्शकों ने देखा—नवजात शिशुओं को; शायद उनकी संख्या पचीस रही होगी, जिन्हें समाज के आतंक से, उनके कहलाने वाले माता-पिता ने, अपना कलेजा मसल कर, रास्ते पर, नदी के किनारे, मेले में, केवल मरने को फेंक दिया था।

आश्रम के सभा-भवन में पाँच मिनट तक सभापति के आदेश से दर्शक-मंडली खड़ी हुई। सभी ने मौन होकर, पतितात्माओं के उद्धारार्थ परमात्मा से प्रार्थना की।

दर्शक-मंडली हृदय पर दारुण बोझ लेकर स्वस्थान को चल पड़ी।

नवीन, धीरेन बाबू, मिस्टर वर्मा और श्रीमती वर्मा सब के सब आगंतुक निमंत्रित व्यक्तियों को आदर-संवर्द्धना के साथ विदा कराने में व्यस्त रहे। किसी से दो मीठी बातें कर, किसी से हाथ मिला, किसी से केवल मुस्किरा कर! समय ही इतना कम था कि अच्छी तरह सभी से मिला नहीं जा सकता। पर, ऐसे अवसर पर और किया ही क्या जा सकता था? सारा भार इन्हीं चारो व्यक्तियों पर था, फिर ये चारो अपने को अलग ही कैसे रख सकते थे?

विदा कराने के समय, जब कि नवीन बड़ा ही व्यस्त हो रहा था, अपनी मां के साथ मणि उससे आ मिली। बहुत दिनों के बाद मणि को देखकर नवीन एक तरह से भौंचक-सा हो रहा। पहले तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ, पर मणि ने उसे सचेत करते हुए कहा—"नवीन बाबू! आपको अनेकानेक धन्यवाद है! आपने ऐसा सुंदर काम किया, इसकी तो आशा ही मुझे न थी!"

नवीन लजाकर काठ हो गया। वह कहे तो क्या कहे? संकोच के मारे वह इतना ही बोल सका—"मैं किस लायक हूँ, मणि! तुम तो मेरी असमर्थताओं को अच्छी तरह जानती हो। परमात्मा को धन्यवाद है कि, मैं सेवा के योग्य अपने को बनाने में लगा हूँ।...हाँ, सकुशल हो मणि? कहाँ थी इतने दिनों से? कब आई?"

मणि को हुआ, जैसे उसका मर्मस्थल किसी ने छू लिया हो, मानो उसके फोड़े पर किसी ने नस्तर लगा दी हो। उसे भय हुआ—कहीं नवीन पुरी से भागने की बात तो न जान गया? वह वेदना से मर्म्मोहत हो उठी। वह लज्जा के भार से सिकुड़ी जा रही थी कि उसकी मां बोल उठी—"पागल लड़की का क्या पूछते हो? सकुशल है; परसों ही पुरी से आई है।"

नवीन ने देखा—मणि के संबंध में, उसकी माँ जो कुछ बोल गई, उसमें उसे (नवीन को) कुछ रस न मिला। समझा, मणि पर उसकी माँ की झुंझलाहट है। नवीन ने परिस्थिति को संभालते हुए कहा—"हाँ, माँ! आप तो अच्छी रहीं?"

"अरे, नवीन! तुम मेरी पूछ कर क्या करोगे? तुम्हें मणि से बिगाड़ थी तो रहे, पर मुझ से क्यों जुदा रहे? क्या मैं तुम्हें नहीं मानती? एकाध घंटे के लिए भी तो भूले भटके आते। खैर, तुम्हारा दोष नहीं, तुम तो स्वाधीन नहीं हो। तुम ने अपने ऊपर ऐसा भार उठाया है कि उसी में तो तुम व्यस्त रहे होगे। खैर, फिर कभी मिलूंगी—अभी इजाजत दो!"

नवीन क्या कहे उत्तर में? आखिर बोलना ही पड़ा—"अभी तो इजाजत ही समझो मां! पर मैं तुमसे एक दिन खुलकर लडूंगा। बिगाड़ कैसी मणि से? मणि भले ही बिगड़े, पर मैं क्यों बिगड़ने लगा?"

मणि लजाकर काठ हो गई, उससे कुछ बोला न गया।

आखिर नवीन इन दोनों को मोटर पर चढ़ाकर वापस लौटने

को हुआ। लौटने के समय माँ बोल उठी—"जाओ, नवीन ! तुम पर अभी बोझ है, संभालो ! लड़ने के लिए एक दिन तै कर लो और उसकी खबर मेरे पास भेजो। अच्छा ?"

नवीन प्रणाम कहकर लौट पड़ा।

उस दिन रात भर सब-के-सब व्यस्त ही रहे।

दूसरे दिन नाश्ता-पानी कर चुकने के बाद नवीन, सुधीर बाबू, उषा, धीरेन बाबू और ललित आगे के कार्य्य-संचालन की समस्या लेकर बैठे। आश्रम के प्रत्येक विभाग के लिए सेवकों की नियुक्ति पर विचार हुआ। सेनिटोरियम के लिए अनुभवी डाक्टरों और ट्रेंड सेविकाओं, धाइयों के लिए विचार हुआ कि, अखबार में इस आशय का विज्ञापन निकाला जाय; और तबतक के लिए कार्पोरेशन के मेयर से अनुरोध किया जाय कि केंद्रीय अस्पताल से कुछ डाक्टर और ट्रेंड नर्स दी जायँ।

प्रस्ताव कार्य्य-रूप में लाए गए। चार-पाँच दिन के लिए, कार्य को गति देने के विचार से पांचो व्यक्तियों का आश्रम में रह जाना आवश्यक समझा गया। फलतः सभी उक्त अवसर के लिए आश्रम में ही रह गए।

———

—चौंतीस—

यथासमय आश्रम के योग्य कार्यकर्त्ताओं का चुनाव हो गया और वे सब अपने काम पर आ भी गए। इतने दिनों तक सभी को नवीन का साथ देना पड़ा।

आश्रम अपनी दिशा में अग्रसर हुआ। वहाँ की कार्य-पद्धति इतनी सुसंगठित रूप में तैयार की गई थी और उसके अनुसार आश्रम-निवासियों को चलने का ऐसा आदेश था कि उपयुक्त समय पर सब काम अनायास ही संपन्न हो जाते थे। पता नहीं लगता था कि, वे काम इतनी आसानी के साथ कैसे संपन्न हो सके।

नवीन के आग्रह से सभी को अपने काम छोड़कर, उसकी सहायता के लिए रह जाना पड़ा था, पर एक दिन आया जब नवीन के मित्र अपने-अपने घर जाने को तत्पर हो उठे। उस दिन वह व्याकुल हो उठा और घबड़ाकर रोते-रोते बोल उठा—"आपलोगों को धन्यवाद है! आपलोगों के बल पर मेरी संचित आकांक्षा पूर्ण तो हुई, पर मैं आपलोगों के बिना इस गुरुतर भार का संचालन कैसे कर सकूंगा? आपलोग मुझे निरवलंब छोड़कर...............।"

मिस्टर वर्म्मा नवीन के सूधेपन पर हँस पड़े, बोले—"नवीन! घबराने की बात नहीं। हमलोग जानते हैं कि, जिस बलवती आकांक्षा के फल-स्वरूप, हमलोग इस प्रतिष्ठान का सृजन कर सके हैं, वही आकांक्षा तुम्हें इस कार्य में सदैव प्रेरणा देती रहेगी। अवश्य समय-समय पर हमलोग आवेंगे और तुम्हें देख जायँगे। घबराओ मत! तुम्हारी छत्रच्छाया में रहकर यदि एक भी आत्मा का कल्याण-साधन हो सका तो तुम्हारा परिश्रम सार्थक हुआ। इससे बढ़कर आनन्द की बात हो ही क्या सकती है?"

धीरेन बाबू ने मिस्टर वर्म्मा का समर्थन करते हुए कहा—"नवीन बाबू! आपका भाव-प्रवण हृदय इन पतितों के लिए ही तैयार किया गया है। आपने जननी-जन्मभूमि के कल्याणार्थ अपनी अनुपम सेवा समर्पित कर जिस आत्मत्याग का परिचय दिया है, वह इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्णांकित रहेगा। आपका धैर्य, आपका साहस, आपकी लगन, आपका त्याग और क्या

कहें—आप मनसा-वाचा-कर्मणा सेवा के लिए तत्पर हैं। आप की साँस-साँस से सेवा-भाव प्रकट हो रहा है। इस पर हमलोग क्या, परमात्मा आपको राह बतलाएगा। अवश्य आपसे हम लोग गौरवान्वित हुए हैं। फिर भी हमलोग आपका आदेश पालन करने को सदैव तैयार हैं। अवसर आने पर, आप देखेंगे, हम लोग आपके पास ही कटिवद्ध मिलेंगे।"

नवीन न जाने किस उत्ताल तरंग-मालाओं में बहा जा रहा था। वह मानो आज विदेह बना हुआ हो। उसकी आँखों से प्रेम-प्रवाह अबाध गति से बह रहा था। पता नहीं, वह प्रवाह कब तक प्रवाहित होता रहा। श्रीमती उषा से रहा न गया। कोमल नारी-हृदय रो उठा। उनकी आँखों से आँसू मानो फूट पड़े। करुणा मानो साकार रूप लिए खड़ी हो। वियोग कितना कष्टकर होता है!

थोड़ी देर के बाद सभी शांत हुए। धीरेन, मिस्टर वर्म्मा और उषा देवी चलने को तैयार हुए। नवीन कुछ दूर तक पहुँचाने आया। वे सब मोटर पर जा बैठे। नवीन ने सभी को पाँव छूकर प्रणाम किया। मोटर चल पड़ी। नवीन कुछ देर तक मोटर को देखता रह गया और जब वह आँख से ओझल हो गयी तो वह अपने बँगले में लौट आया। उसने देखा—बँगला में आज वह चहल-पहल नहीं, जो पहले थी। उसने अपने को अकेला पाया। उसका मन अस्थिर हो चला और वह शांत होकर बिछावन पर सो गया।

इन दिनों व्यस्तता के कारण नवीन खिन्न हो गया था, उस की आँखें धँस गई थीं, उसका चेहरा फीका पड़ गया था। लगातार कई रात और दिन जगे-अधजगे खटना पड़ा था उसे। ऊपर से नये काम का बोझ। पहले एक को मनुष्य बनाने में वह व्यस्त था और आज तो उसके सामने अनेकों हैं। इतना गुरुतर भार! वह सोचते-सोचते घबरा उठा, वह बिछावन पर भी शांत न रह सका। वह बरंडे पर आकर चुपचाप टहलने लगा।

थोड़ी देर टहलते-टहलते ही देखा—मातृ-मंदिर के बरंडे पर बच्चों की टोली आ पहुँची। कोई हँस रहा था, कोई तुतला-तुतला कर बोल रहा था, और कोई ऊधम मचा रहा था। नवीन का ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। वह वहाँ से मातृ-मंदिर की ओर लपक पड़ा। बच्चों से नवीन को स्वाभाविक स्नेह था, और यही कारण था कि सभी बच्चे उसके लिए आतुर रहते थे। नवीन बाल-क्रीड़ा में इतना तल्लीन हो गया कि उसे अपने आपकी भी सुधि न रह गई। वह वियोग कालीन विषाद भूल गया। उसकी आँखें विहँस पड़ीं। वह बच्चों के साथ आप भी क्रीड़ा करने लगा।

नवीन का आश्रम-जीवन बड़ा ही सुखद रहा।

नवीन की व्यवस्था से आश्रम-निवासी और कर्मचारी सभी प्रसन्न थे। किसी को किसी प्रकार का दुःख या खेद न था।

राधा इन दिनों बालिकाओं को पढ़ाने में अपने आप को भूली बैठी थी। युवतियों के लिए अध्यापिकाएँ नियुक्त थीं, उन्हें

शिक्षा के साथ-साथ दस्तकारी के काम भी सिखाने का समुचित प्रबंध था।

सेनिटोरिम के रोगियों की सेवा-सुश्रूषा बड़ी तल्लीनता के के साथ हो रही थी। क्या डाक्टर, क्या सेविकाएँ सभी अपने काम को बड़ी मुस्तैदी और स्नेह के साथ कर रही थीं। असाध्य और गलित रोगों का इलाज इतनी खूबी के साथ हो रहा था कि, मानो रोगियों को नवजीवन प्रदान किया जा रहा हो। इतना बड़ा आयोजन सफलतापूर्वक संपन्न होना अवश्य कार्य-कुशल, सदाशय व्यक्तियों की शुभेच्छा का फल ही कहा जायगा।

नित्यप्रति एक-न-एक रोगी आश्रम में प्रविष्ट होते; ऐसे रोगी जिन्हें दुनियां में न अपना था और न कोई आसरा ही। वे आश्रम को दैवी बरदान समझते। आए दिन समाज से तिरस्कृत एवं बहिष्कृत विधवाएँ आश्रम की शरण में जा पहुँचतीं। उन अभागिनी सद्गृहस्थ बहनों के लिए आश्रम सब प्रकार की सुविधाएँ देता।

आश्रम कुछ ही दिनों में अपनी सेवा के लिए प्रसिद्ध हो गया। 'बीसवीं सदी' और 'आलोक' में आश्रम की सेवाएँ, मासिक और साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होतीं। संपादक समय-समय पर अग्रलेख लिखते और कभी-कभी टिप्पनियाँ।

और स्वयं संपादक महोदय, मिस्टर वर्म्मा, श्रीमती वर्म्मा और ललित, समय-समय पर आश्रम में आश्रम-निवासियों को अपनी सहानुभूति और अनुकंपा से सनाथ कर जाते।

इस तरह आश्रम का आधा वर्ष शांतिपूर्वक बीत गया।

नवीन का प्रबंध इतना सुंदर और इतना सुगठित था कि उसकी अनुपस्थिति में भी आश्रम में किसी प्रकार की अशांति नहीं पाई जाती। नवीन इन दिनों लेखन-कार्य में व्यस्त रहा। इसके लिए उसे कभी शहर भी जाना पड़ता और कभी रात को भी वहीं रह जाना पड़ता, फिर भी आश्रम अपनी गति में चलता ही होता।

छः महीने तक नवीन को आश्रम छोड़कर एक घड़ी के लिए भी बाहर नहीं जाना पड़ा था। उन दिनों मणि अपनी मां के साथ आश्रम में ही आती और आश्रम-निवासिनी बहनों के साथ मिल कर, उनसे बातें कर, आनंदित होती। नवीन उसे पाकर आनंदित होता, उससे खुलकर बातें करता। पर, मणि में वह बात न रह गई थी जो पहले थी। वह सदैव उदास ही दीख पड़ती। नवीन समझ नहीं पाता कि आखिर मणि में इतना परिवर्त्तन कैसे हो गया? पर, उसने कभी मणि से यह जानने की उत्कंठा प्रकट न की।

उस दिन नवीन शहर गया था, रास्ते में ही मणि से भेंट हो गई। वह बड़ी प्रसन्नतापूर्वक मिली और कहा—"मां इधर अस्वस्थ हो गई हैं, बराबर आपको याद करती हैं। मुझे अवकाश ही न था कि मैं आपसे जाकर मिलती। क्या एक बार चलकर उन्हें न देखिएगा?"

बोलते-बोलते मणि का गला रुद्ध हो आया, उसकी आँखें छलछला आईं। उसने आँसुओं को रोकने का भरसक प्रयत्न

किया, पर उन्हें वह रोक न सकी। दो कतरे मोती-जैसे उसकी गालों पर ढलक ही गए। मणि ने उन्हें छिपाने को मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

नवीन से यह छिपा न रह सका। मणि आज इतनी उदास क्यों है ?—नवीन सोचने लगा। उसने छूटते ही कहा—"कब से बीमार हैं वे ? हुआ क्या है ?..........खैर चलो, देख ही आता हूं। तुमने कोई खबर भी तो दी नहीं मणि !"

मणि ने कुछ जबाब न दिया। दोनों चल पड़े। रास्ते में कोई बात न चली। कुछ ही देर के बाद दोनों मां के कमरे में पहुंच गए थे।

मां पाँच दिनों से रोगग्रस्त दशा में बिछावन पर पड़ी थीं। रह-रहकर प्रबल वेग से खाँसी का दौरा आता और उसके साथ-ही-साथ खून निकल पड़ते। उस समय वह बिलकुल अचेत-सी हो जातीं। बड़ी देर तक दम रोक रखने के बाद उन्हें शांति मिलती। कुछ देर तक वह शांत पड़ी रहतीं, फिर वही दौरा, वही खून, वही बेहोशी ! उपचार हो रहे थे—डाक्टरों-वैद्यों का क्या पूछना ? रोग सांघातिक प्रतीत होता, दवा दी जाती, पर मां ने मानो विश्वास खो दिया था, वह दवा तक नहीं पीतीं। उन्हें होता था, वह बच नहीं सकेंगी—दवा-दारू बेकार है। पर, मणि ऐसे अवसर पर रुपए को पानी जैसे बहा रही थी। वह चाहती थी, यदि मां के बराबर धन लेकर कोई उन्हें बचा दे तो वह ऐसा करने को तैयार है। जब यह बात मां को मालूम होती तो वह कह देतीं—"मुझे

तो कष्ट झेलने हैं, फिर रुपए खर्च करने की जरूरत ही क्या है, बेटी !"

मणि कमरे में पहुंचते ही नवीन बाबू को बैठने का संकेत कर मां के पायताने बैठ गई। कुछ क्षण के बाद मां ने आँखें खोलीं, मणि की ओर देखा। इतने में मणि बोल उठी—"नवीन बाबू आए हैं, मां! रास्ते में मिले।"

नवीन ने उनके पैर छू कर प्रणाम जताया। मां ने उसके सिर पर हाथ बढ़ा कर आशीष दी। उनकी आँखों से स्नेह के आँसू उमड़ आए और बेचैन-सी होकर बोल उठीं—"जुग-जुग जियो, बेटा! बड़े अच्छे आए!"

मां और न जाने क्या कुछ बोलने जा रही थीं, पर उसी समय उनका दम फूलने लगा। कुछ ही क्षण तक यह हालत रही, फिर जोर से दौरा हो आया और साथ ही खून का ढेर लग गया। नवीन गंभीरतापूर्वक देख रहा था। उनकी अवस्था देखकर वह निश्चिंत न बैठ सका। वह मणि से बोल उठा—"हालत इतनी नाजुक है, मणि! दवा नहीं की जाती, इस तरह से इन्हें कष्ट-ही-कष्ट होगा।"

"दवा तो रखी है, पर मां खाना ही तो नहीं चाहतीं। आज सबेरे डाक्टर कह गए हैं कि, दवा बड़ी तेज है जल्द फायदा होगा; पर, मां मानती ही नहीं हैं—इन्हें जिद्द है। आप आए हुए हैं, मां को कहकर देखिए, यदि आपकी बात काम कर जाय।"

मणि अपने हाथों पंखा झल रही थी और नवीन उठकर उन्हें

दबा रहा था। कुछ देर के बाद उन्हें होश हुआ। मणि ने उन्हें मुंह धुलाया, पानी पिलाया। मां चित्त होकर सो रहीं।

थोड़ी देर के बाद मन शांत हुआ। नवीन को ऐसा जान पड़ा, मानो कोई बात वह सोच रही हों। नवीन कुछ बोलना ही चाहता था कि, मां बोल उठीं—"बेटा! जीवन सचमुच सपना है। सपना जिस तरह एक अपनी माया छोड़ जाता है, उसी तरह यह जीवन भी! मनुष्य इसी सपने को पकड़ कर रहना चाहता है, पर क्या सपना पकड़ने की चीज है भला? खैर, इन बातों में तुम्हें मैं भुलाना नहीं चाहती। कहना तो यह है कि मैं अपनी साध लेकर बहुत जल्द जाना चाहती हूं। मेरे लिए बिटिया ने बहुत कुछ किया, और करती कैसे नहीं? मेरे सिवा दूसरे का सहारा ही क्या है? पर, मैं मणि को बीरान छोड़े जा रही हूं। आह! मेरी लाड़िली मणि!............।"

मां की आँखों से अजस्र अश्रु-प्रवाह फूट पड़ा। नवीन जो कुछ कहना चाहता था, वह मानो उसी प्रवाह में वह चला। नवीन ने उनके हृदय में पहुँच कर देखा—कैसी मर्माहत वेदना है, कितना संताप, कैसी उद्विग्नता! आह कितनी ममता! नवीन का हृदय भर आया। वह मां को सांत्वना देना चाहता था, पर वह स्वयं अधीर हो उठा। कहे तो क्या कहे? वह चुप था, मणि चुप थी, मां चुप थीं!

थोड़ी देर के बाद निस्तब्धता भंग करते हुए मां बोल उठीं—"तुम्हें मालूम होगा, नवीन! मैं तुम्हें मणि-जैसा प्यार करती थी

और अब भी कर रही हूँ। तुम्हारे साथ न जाने कैसी आत्मीयता मुझे प्रतीत होती है, मैं नहीं जानती। मुझे विश्वास है, मणि तुम्हें पाकर ही प्रसन्न रह सकती है। पर, मेरे लिए यह कठिन समस्या है कि, मैं तुम्हें मणि को सौंप सकूं। मैं तुम्हारे सेवा-भाव से अधिक प्रभावित हुई हूँ और मुझे विश्वास-सा बंध गया है कि, तुमको मणि से घृणा नहीं हो सकती। पर, विना अपना परिचय दिए तुम्हें अंधकार में नहीं रखना चाहती। संभव है, और यह अधिक संभव है, मेरे मरने के बाद किसी तरह से, यदि तुम्हें मेरे असली रूप का पता लग गया तो तुम मणि को आँखों से दूर कर सकते हो, घृणा कर सकते हो। तुम्हें आत्म-ग्लानि हो सकती है और कदाचित् ऐसी हालत में तुम शोक-विह्वल भी हो सकते हो। इस अवस्था में, मुझे मरने के बाद भी चैन नहीं मिलेगा। शायद मैं नरक में भी जगह नहीं पा सकूंगी।"

मां एक साँस में इतना बोल कर चुप हो गईं। उनके मन में ग्लानि, क्षोभ और संताप की विविध धाराएं बड़े वेग से प्रवाहित होकर उन्हें बेचैन कर रही थीं। नवीन ने भावुकतावश, उन्हें शांत करने के विचार से कहा—"जो बात कहने जा रही हो, मां! न ही कहो, वही अच्छा! मैं मणि को प्रेम करता हूं, स्नेह की आँखों से देखता हूं, यह कदाचित् तुमसे भी छिपा नहीं। फिर मणि से घृणा का प्रश्न ही नहीं उठ सकता है—मणि घृणा की वस्तु हो नहीं सकती है। तुम्हें विश्वास होना चाहिए, मां! मणि की देख-भाल में मेरा विशेष हाथ रहेगा। इसके लिए तुम अधीर

न हो ! मणि मेरी बहन है, मणि................!"

"यही तो तुमसे सुना चाहती थी—यही तो तुमसे सुना चाहती थी"—बीच ही में बात काटकर मां बोल उठी—"पर, मैं अपनी तुमसे कहूंगी ही,देखती हूँ, जब तक मैं तुमसे न कह लूंगी, तब तक दिल मेरा हलका नहीं हो सकता। इस पर—मेरे दिल पर वह बोझ-सा हो उठा है। बोझ हलका कर लेने दो बेटा !"

नवीन इस वार कुछ बोल न सका। उसे कुतूहल हो रहा था, माँ क्या कहने को बेचैन-जैसी हुईं जा रही है ? वह शांत होकर मां की ओर प्रतीक्षा भरी दृष्टि से देखने लगा।

माँ कुछ देर दम लेने के बाद मणि की ओर देखकर बोल उठी—"बेटी! क्या देख रही है ? बेटा कब से बैठे हैं, जा कुछ जल-पान बना ले ! दोनों जने कुछ खा-पी ! बातें तो होती ही रहेंगी ! अभी जी अच्छा है, शांति है मुझे ! जा, कुछ नाश्ता-पानी !"

मणि ने भी देखा—दिन अधिक चढ़ आया है, नवीन को खिलाने-पिलाने का बंदोवस्त करना ही चाहिए। अबतक वह चुपचाप बैठी थी। उसे खेद भी हुआ—अबतक क्यों वह बैठी रह गई ? क्यों नहीं माँ के कहने के पूर्व वह भोजन के प्रबंध में लगी ? उसे कुछ लज्जा भी बोध हुआ, वह बिजली जैसी चमक कर भीतर की ओर चली गई।

माँ के दिल से एक बोझ-सा उतर गया। उन्होंने शांति की साँस ली। नवीन की ओर आलुलायित दृष्टि से देख कर वह कहने लगीं—"मैंने जिस बात को दुनियाँ से छिपाया, मणि से छिपाया,

वह आज तुमसे कहने जा रही हूं। तुमसे मुझे कहना ही पड़ेगा—इसके सिवा मेरे लिए शांति की कोई राह नहीं दिखाई पड़ रही है। पर, यह मणि पर कभी प्रकट न हो—यही तुमसे अनुरोध है। जानती हूँ मणि के हृदय को—कितना कोमल, कितना भावुक, कितना सरल! इसीलिए मैं उसे टूक-टूक नहीं करना चाहती। औरस संतान है, माँ होकर कैसे उसे दुखी करूँ? पर तुम्हें कहे विना मुझे शांति नहीं मिल सकती, इसलिए कहने को तैयार हुई हूँ!"

और वह इस तरह से कहने लगीं—

"जवानी किसे पागल नहीं बनाती बेटा! जीवन में एक झोंका आता है और उत्पात मचा कर चल देता है! मेरे जीवन में भी एक झोंका आया था और मुझे बर्बाद कर चला गया। मैं पागल हो चुकी थी। कैसे कहूं कि मेरा ज्ञान, मेरा विवेक, मेरी बुद्धि कितनी मूक थी! कैसी गूँगी! उस समय मैं विधवा थी! शायद मैं उस समय १६-१७ की रही होऊं। कुछ दिन तक तो लज्जा ने मेरी रक्षा की, पर जवानी का वह पागलपन! पड़ोस के मनचले युवक से एक दिन आँखें चार हुईं। मैं सचमुच उसे पाने को पागल हो उठी। फल!........हमल! घरवाले को मालूम हुआ—मार पड़ी, गालियाँ सहीं, तिरस्कार पाकर विष खाने का उपक्रम हुआ, पर मैं मर न सकी। जान कितनी प्यारी चीज है! उफ़्! अपमानित होकर भी मर नहीं सकी! मरती ही कैसे? आखिर, अपने करतब का फल भी तो भोगना था! मैं निकाल दी गई।

मैं अल्हड़ थी—पागल थी ! कहीं मेरे लिए कूल-किनारा न मिला। मुझे एक वेश्या ने शरण दी—वह मेरी अम्मा बनी ।"

माँ कुछ देर तक शांत रहीं, मानो वह कुछ सोच रही थीं। उसके बाद वह कहने लगीं—

"हाँ, वह मेरी अम्मा थी। उसने मेरी आवभगत में कसर नहीं की। उम्दा-से-उम्दा माल खिलाती, उम्दा-से-उम्दा कपड़े पहनाती—सजाती। वह तो दूकान सजने जा रही थी। मुझे क्या पता कि वह मेरे शरीर को लेकर ही दूकान सजायगी? पीछे, मालूम हुआ कि वह वेश्या थी! तब तक मैं पतन में डूब चुकी थी! उफ्! पतन! पतन!!·······क्या वह अम्मा थी? राक्षसी!! खैर, अब उसे मैं क्यों कोसूँ? मैं तन कर दूकान सजाने में बड़ी चालाक निकली। उस समय, लोगों से सुना, मैं बड़ी हसीन थी, शायद लाखों में एक! कितने आते, पर मैं बात तक नहीं करती। मुझे अभिमान था। जो हो, और न कहूँगी, पर इतना जरूर कहूँगी कि मैंने पाप में डूब कर लाखों से अधिक इकट्ठा किया। बेटा! पाप से घृणा करो, पर पापियों से नहीं। यह मेरे जीवन का एक पहलू था।·······उसके बाद मेरा पागलपन दूर हुआ; देखा—मैं बहुत दूर दोजख में आ पड़ी हूँ। जी घबरा उठा, मैं अपने को लाख-लाख धिक्कारने लगी! मैं वहाँ से निकल भागी। मैं दुनियाँ की आँखों से अपने को छिपाना चाहती थी। मैं गृहस्थ की स्त्री-जैसी यहीं पर किराए का मकान लेकर रहने लगी। पांच महीने के बाद मणि का जन्म हुआ।"

माँ ने शांति की एक गहरी साँस ली। वह छत की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगीं।

नवीन ने सारी बातें कान खोल कर सुनीं। आज मणि को उसने पहचाना और पहचाना उसकी माँ को। पर नवीन को मणि के प्रति घृणा के बदले दया ही अधिक हुई। वह माँ के प्रति सोचने लगा और सोचने लगा उस समाज के प्रति जिसके चलते उनके जीवन में इतना परिवर्तन संघटित हुआ। मां शांत न रह सकीं, वह नवीन की आकृति पर दृष्टि गड़ाए देख रही थीं, शायद इसलिए कि, उसके भाव में घृणा तो छिपी नहीं है ? पर, उन्होंने जो कुछ देख पाया, उससे उन्हें संतोष ही हुआ। वह फिर जिज्ञासा के स्वर में बोल उठीं—

"यही मेरी कहानी है। तब से मैं जिस रूप में रही, तुम स्वयं देख रहे हो। एक साध थी—मणि को विदुषी बनाऊँ; और वह साध भी पूरी हुई। अब दूसरी साध है—और वह यह कि वह एक सच्चरित्र गृहस्थ की पत्नी होकर रहे और जिसके लिए मैं तुमसे अनुरोध करने जा रही हूँ। क्या कहते हो बेटा! अब तो तुम्हारे उत्तर पर ही मेरी साध टिकी है ! क्या कहते हो नवीन ?"

मां नवीन के मुंह की ओर देखने लगीं और नवीन सिर झुका कर सोचने लगा। पर, उसके सामने एक बड़ी समस्या थी और वह यह कि, वह अविवाहित जीवन बिताना चाहता था। उसे भय था, कहीं बंधन में फँसकर आश्रम की सेवा में विघ्न उपस्थित न हो। पर, इधर मां से यह भी मालूम हुआ कि कदा-

चित् वह मणि को घृणा की दृष्टि से न देखने लग जाय। सचमुच यदि नवीन मणि को अस्वीकार कर दे तो मां समझेंगी—मणि से घृणा के कारण ही वह अविवाहित रहने का झूठा ढोंग रच रहा है। वह बड़ी देर तक इस उलझन में फँसा रहा, पर सहसा मणि ने वहाँ पहुंच कर उसका रास्ता साफ कर दिया। उसकी उदास आकृति पर मुस्कान की एक हल्की रेखा दौड़ गई। उसे सोचने का और भी अवसर हाथ लगा।

मणि नौकरों के हाथ खाने की चीजें लिए ड्राइंग रूम में नवीन को लिवा गई। नौकरों ने खाने की रिकाबियाँ टेबुल पर सजा दीं। मणि और नवीन—दोनों खाने को बैठ गए।

नवीन ने मणि की ओर एक बार दृष्टि डाली। उसे हो रहा था—आह! सरल-कोमल हृदया मणि को क्या पता कि वह क्या है? उसका रूप कैसा है? क्या उसे अपने असली रूप का पता लगेगा? यदि हाँ, तो उसे अपने आप पर कितनी घृणा होगी? वह अपने को कितना धिक्कारेगी? क्या वह त्यागने की वस्तु है? मणि के साथ उसका कैसा सुंदर-सदय व्यवहार रहा है! मणि की आँखों में वह कितना उच्च है—कितना महान् है! पर, इन चिंता-धाराओं के बीच किशोर का रूप भाँसता-उतराता-सा दीख पड़ा। शायद मणि उसी के साथ प्रवास-जीवन बिताकर ही तो वापस आई है। वह तो मुझ से सभी बातों में पूर्ण है, फिर यह संघर्षण की बात कैसी? उसे एक कौतूहल-सा बोध हुआ, और विना कुछ उस पर विचार किये वह बोल उठा—

"इधर मैं तुम्हें उदास ही देखता आ रहा हूँ, मणि! पहली बार भी, आश्रम में मिलने के समय, तुम्हें उदास ही देखा था। ऐसी तो तुम थीं नहीं ? क्या मैं जान सकता हूं कि, वह कौन सा कारण है ?"

मणि मानो चमक-सी उठी। पर, तुरत उसने अपने को सावधान किया और बोल उठी—"यह तो मैं कभी की आप से कहना चाहती थी, पर मैं यह कैसे आप पर प्रकट करती ? कभी ऐसा सुयोग मुझे नहीं मिला। आज आपने ऐसा सुयोग दिया है। पहले मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ। क्या क्षमा करेंगे ?"

नवीन हँस पड़ा, बोला—"क्या क्षमा भी करना होगा, मणि? पर, मुझे पता भी तो हो कि आखिर वह कौन सा अपराध था ?"

"हाँ, अपराध किया है—पहले क्षमा तो कर दें !"

"खैर, उस क्षमा में धरा ही क्या है, लो क्षमा करता हूं, पर अपराध भी तो जना दो ?"

"हाँ, मैंने अपराध किया है, नवीन बाबू ! आपको कदाचित् याद होगा—मैंने आपकी कई बार उपेक्षा की है। आप मेरे चलते एक अभद्र पुरुष से अपमानित..........।"

"क्या तुम उस युवक की बात कह रही हो, मणि ?"

"हाँ, तो और किसकी ?..........खेद है, मैं धोखे में फँस गई थी।"

"जाने दो उन बातों को, मुझे तो उसका जरा भी रंज नहीं। मनुष्य से भूल होती ही है और..........!"

"नहीं, भूल न थी। मैंने आपकी उपेक्षा की थी, पर नहीं, कह सकती—ऐसा मैंने क्यों किया था ? आज क्षोभ होता है! मनुष्य दूसरों को पहचानने में कितना अपटु है!"

मणि उससे अधिक न बोल सकी। वह बड़ी खिन्न हो उठी। लज्जा से मानो वह दबी जा रही थी। उसे अपने कर्त्तव्य का अधिक क्षोभ था।

दोनों भोजन के बाद मां के कमरे में आए। उस समय मां को झपकी-सी आ रही थी। नवीन ने देखा—यहां अधिक देर तक रहने से इन्हें नींद आने में बाधा होगी। इसलिए उसने क्षमा मांगते हुए उनसे निवेदन किया कि, अभी मुझे कई काम पूरा कर आश्रम लौटना आवश्यक है, इसलिए मैं आपके प्रश्न का उत्तर फिर कभी दूँगा। अभी आज्ञा हो!"

मणि नहीं समझ सकी कि वह कौन-सा प्रश्न था और उसका उत्तर नवीन क्या देना चाहते हैं ?

नवीन मां की पद-धूलि सिर पर लगा बाहर की ओर चल पड़ा।

—पैंतीस—

धीरेन बाबू, मिस्टर वर्मा, श्रीमती वर्मा और ललित के बीच नवीन के विवाह के संबंध में कई बार चर्चा चल चुकी थी, और जब-जब चर्चा हुई, तब-तब नवीन ने विवाह से अनिच्छा ही प्रकट की परंतु इस बार नवीन अपने सिद्धांत की रक्षा करने में समर्थ न हो सका। उसका हृदय आंदोलित हो चुका था। उसके सामने जो समस्या उपस्थित थी, उसका पूर्ण होना एकमात्र नवीन की स्वीकृति में ही सन्निहित था। इसलिए वह अपनी इच्छा अपने बंधुओं के बीच प्रकट करने को मानो बेचैन-सा हो उठा। उसे मणि की माँ को भी उत्तर देना था। कदाचित् उस उत्तर से उनकी अशांत आत्मा को कुछ शांति उपलब्ध हो जाय—इसका भी उसे ध्यान था। वह उस दिन आश्रम में आकर इस विचार में तल्लीन रहा। रह-रह कर मणि का स्मरण उसे अधीर किए देता था।

दूसरे दिन प्रातःकाल आश्रम-कार्य्यालय में नवीन ने अपने मित्रों को बुलाया। आवश्यक कार्य समझ सब-के-सब उपस्थित हुए। नवीन ने आश्रम-संबंधी कामों पर उन सबों की सम्मति चाही। सभी ने अपनी-अपनी सम्मति दे डाली। आश्रम संबंधी कार्य शेष हो गया। अब वे सब चलने को उद्यत हुए, पर नवीन ने खास कर जिस उद्देश्य से उन लोगों को बुलाया था, उसे प्रकट करने को वह कुंठित था। यह बात कैसे उठाई जाय, यही एक बड़ी समस्या थी नवीन के लिए! पर उसे तो आज तय करना ही पड़ेगा और स्वीकृति वा अस्वीकृति सूचक उत्तर भी मणि की माँ को देना ही होगा। पर, कई वार उन लोगों के जिस प्रस्ताव पर उसने अस्वीकृति दे दी थी, आज वही प्रस्ताव स्वयं उन लोगों के सामने कैसे पेश किया जाय?—इस विचार से नवीन मर्माहत-सा हो उठा। उसकी मुखाकृति फीकी पड़ गई। कदाचित् इस भाव को सब से पहले श्रीमती वर्मा ने ही पहचाना।

वह उत्कंठित होकर बोल उठी—"क्या और कुछ कहा चाहते हैं, नवीन बाबू! कहिए?"

नवीन को आश्वासन मिला और कुछ स्फूर्त्ति भी। वह अपने मन पर जोर देकर बोल उठा—"हाँ कुछ कहा तो अवश्य चाहता हूँ, पर जो कुछ कहूँगा, देखता हूं, वह आपलोगों की हँसी का ही कारण होगा। फिर भी मुझे कहना ही पड़ेगा। कारण है, आप लोग स्वयं जानते हैं कि कभी कभी मनुष्य के जीवन में ऐसा भी समय आता है जब वह अपनी इच्छा के विरुद्ध कामों को करने के

लिए अपने को तैयार पाता है। अवश्य इसमें परिस्थिति का गहरा हाथ है। हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। परिस्थिति नवीनता लाती है और उस नवीनता में जीवन का तथ्य सन्निहित है। उस दिन, श्रीमती वर्मा शायद आपको याद होगा—आपसे जिस विषय पर खासी बहस हुई थी, और मैं जिसे अस्वीकार ही करता रहा, आज वही विषय मेरे सामने है और उसे मैं स्वीकार कर रहा हूं।"

श्रीमती वर्मा ठहाका मार कर हँस पड़ी पर और व्यक्ति इस पहेली को सुलझाने में ही व्यस्त रहे। श्रीमती वर्मा ने हँसते हुए धीरेन बाबू की ओर देख कर कहा—"धीरेन बाबू! समझा? समझा आपने? आज मुझे अपनी विजय पर गर्व है। मैंने आज नवीन बाबू को पछाड़ा है—बड़े बीर बनने चले थे! देखी आपकी बहादुरी! खैर, यह तो आप फर्माइए, किस देवी को आज आप सनाथ करने जा रहे हैं?"

सभी उत्सुक हो उठे। पहेली कुछ सुलझाई-सी जान पड़ने लगी। सभी के चेहरे पर मस्ती-सी छा गई—सभी उल्लसित होकर नवीन की ओर देखने लगे। पर नवीन? वह बेचारा बेतरह पकड़ा गया; उसे मानो काठ मार गया। उसकी दृष्टि हठात् श्रीमती वर्मा पर पड़ी। उसे स्फूर्त्ति का अनुभव हुआ और वह लजाते हुए बोल उठा—"श्रीमती मणि देवी................!"

मणि कई वार आश्रम में आ चुकी थी। सभी से उसका परिचय हो गया था, श्रीमती वर्मा ने तो उससे कई वार घुल-मिल कर बातें भी की थीं। अभी मणि की बातें सुन कर सभी उत्फुल्ल

हो उठे। ललित आनंद के मारे बोल उठा—"तभी तो..........
तभी तो..........!"

धीरेन बाबू बोल उठे—"खैर, श्रीमती वर्मा! रात का भटका यदि सबेरे मिल जाय तो उसे भटका हुआ नहीं समझना चाहिए।"

और सुधीर बाबू ने योग दिया—"मणि जैसी देवियों की आश्रम को अतीव आवश्यकता थी, सो नवीन बाबू की कृपा से अनायास ही मिल गई। विद्वान व्यवस्थापक-व्यवस्थापिका की हमें आवश्यकता ही थी!"

श्रीमती वर्मा को विशेष आनन्द इसलिए था कि उसने नवीन पर विजय प्राप्त की थी। आखिर वह बोल उठी—"तो नवीन बाबू! कब गठजोड़े का रस्म अदा होगा?"

नवीन को भी हँसी की सूझी, वह बोल उठा—"जब आप अपने गठजोड़े के साथ हम लोगों के बीच दिखाई देंगी।"

"हाँ, ऐसी बात?"—हँसती हुई श्रीमती बोली—"तो अभी हमलोग गांठ जोड़ते हैं!"

वह उठ कर मिस्टर वर्म्मा के पास जाकर बैठ गई।

सभी आनन्द से फट पड़े। बड़ा अच्छा विनोद रहा।

अंत में सभी ने नवीन के प्रस्ताव का अभिनंदन किया। सभा समाप्त हुई। सभी वहां से अपने घर की ओर चल पड़े।

संध्या के समय मणि का आदमी एक पत्र लेकर आश्रम में पहुँचा। नवीन ने उस पत्र को पढ़ा, मणि ने लिखा था—

"माँ की अवस्था आज बड़ी नाजुक हो गई है। आशा नहीं

कि वह अधिक समय तक ठहर सकेंगी। उन्हें बस, एक ही रट है—एक ही धुन है—बस, नवीन—नवीन ! कृपया शीघ्र आइए। मोटर सेवा में है।"

नवीन भीतर गया, पत्र को डेस्क के अन्दर रख कपड़े पहने और तैयार होकर मोटर पर आ बैठा। मोटर शहर की ओर दौड़ पड़ी।

नवीन ने आकर देखा—माँ अंतिम घड़ियाँ गिन रही हैं। नवीन को देख कर मणि फूट-फूट कर रो पड़ी। नवीन ने उसे ढाढ़स बंधाया। माँ ने आंखें खोलीं, देखा—नवीन उसके सामने खड़ा है।

माँ बोल उठीं—"बेटा! अब नहीं..........अब नहीं.......! आखिर मेरा उत्तर ?"

माँ अधीर आंखों से नवीन की ओर देखने लगीं।

नवीन ने छूटते हुए कहा—"स्वीकार है माँ !"

"बेटा !"

"माँ !"

"बेटी !"

"माँ !"

"इधर आ, बेटी ! सामने आ !"

मणि सामने आई।

माँ ने मणि की ओर लक्ष्य कर कहा—"मणि ! बेटी मेरी! आज से तुम नवीन की हुई। यही साध थी, बेटी ! आज पूरी हुई !

बेटी, निकाल अपना हाथ और बेटा ! तू भी अपना निकाल ।"

नवीन ने मणि का हाथ पकड़ा, माँ ने अपनी आँखों देखा। उसकी आँखों पर एक वार आनंद का उत्स प्रवाहित हो गया, उसके ओठों पर मुस्किराहट की एक हल्की-सी रेखा दौड़ गई।

माँ बोल उठी—"नवीन! आज अपनी संपत्ति का तीन भाग मैं आश्रम को दान देती हूँ और उसका एक भाग तुम दोनों के लिए है।"

नवीन आनंदातिरेक से बोल उठा—"आश्रम की ओर से आपको इस दान के लिए धन्यवाद है! पर, मेरा संकल्प है, मुझे वैयक्तिक संपत्ति रखने का अधिकार नहीं। हाँ, उस भाग पर मणि देवी का ही अधिकार रहेगा।"

मणि को यह घटना एक स्वप्न-सी बोध हुई। इतना शीघ्र यह कार्य संपन्न होगा, मणि को जरा भी विश्वास न था। पर मां के सामने ही, मां के अभिभावकत्व में, पाणिग्रहण हो गया। मणि पर आप-से-आप लज्जा का आवरण छा गया। उसने स्त्रियोचित लज्जावश सिर की साड़ी आगे को सरका ली।

आध घंटे के बाद मां सदा के लिये शांत हो गईं।

दूसरे दिन प्रातःकाल एक विशालजन संख्या के बीच मां की अर्थी निकली। बड़ी धूमधाम से अग्नि-संस्कार का कार्य नवीन के हाथों संपन्न हुआ। धीरेन बाबू ने उस विशाल जन-समूह के बीच, श्मशान भूमि में, उनकी वदान्यता का परिचय देते हुए उनकी घोषणा कह सुनाई। उपस्थित व्यक्तियों को ज्ञात हुआ

कि, आश्रम को डेढ़ लाख रुपए दान-स्वरूप प्राप्त हुए । सभी ने मृतात्मा की शांति के लिए, परमात्मा से मौन प्रार्थना की।

निश्चित समय पर नवीन ने मृतात्मा की सद्गति के निमित्त श्राद्ध-क्रिया की। इन दिनों मणि को मातृ-स्मृति रह-रह कर अस्थिर किए देती थी। ऐसे समय में नवीन उसे सांत्वना देता—ढाढ़स बंधाता।

इस कार्य में नवीन को मणि के घर पर ही रह जाना पड़ा था। पर, श्राद्ध-क्रिया से निश्चिन्त हो जाने के बाद नवीन ने मणि से आश्रम में जाने का अनुरोध किया। नवीन वहां की देख-रेख का भार विश्वस्त नौकरों पर छोड़ मणि के साथ आश्रम में आ पहुंचा।

मणि को पाकर आश्रम-निवासिनी देवियों को असीम आनंद हुआ। मणि का अधिकांश समय उन देवियों के शिक्षा-सहवास में ही व्यतीत होता।

संध्या के समय मणि नवीन के साथ कुछ दूर तक भागीरथी के किनारे-किनारे टहलने को निकल पड़ती। उसे आश्रम का सहज-सरल जीवन बड़ा ही आकर्षक जान पड़ा। उसके मन में अतीत की वे स्मृतियाँ, जिन्हें वह अपने जीवन के लिए कलंक समझ रही थी, आप-से-आप विलीन हो गईं। किशोर उसके स्मृति-पट से सदा के लिए ओझल हो गया। उसने अपने सामने नवीन को—अपने आराध्य देव को, विहँसते हुए पाया। उसका अभिमान फूट पड़ा – उसने गौरव का अनुभव किया।

और नवीन ?

हाँ, नवीन को एक अनुपम सहायक, सच्चा मित्र और कर्त्तव्य-परायणा पत्नी पाने पर जितनी प्रसन्नता होनी चाहिए, उतनी उसे प्राप्त हुई। नवीन में अभिनव स्फूर्त्ति आई, अद्भुत शक्ति मिली। आज वह पूर्ण हुआ—परिपूर्ण हुआ।

नवीन ने अपनी छत पर रजत-चाँदनी में, एक बार मणि को देखा, वह मानो आलस्य-भार से शिथिल-सी पड़ी सो रही थी, उसके मुख-प्रदेश पर चंद्रमा की शुभ्र शांतिमयी छाया पड़ कर उसे और भी सुंदर बना रही थी, मंद पवन का झोंका खाकर उसकी अन्मुक्त अलकें उड़ उड़ कर और ही छवि उत्पन्न कर रही थीं। इसके पहले नवीन ने इतना खुल कर मणि को देखने का अवसर न प्राप्त कर पाया था। पर, आज उसने देखा—मणि कितनी सुंदर—कितनी मनोरम है! उसका प्रणय सजग हुआ, क्षण भर के लिए वासना उसके अंग-अंग में पुलक भर गई। वह खड़े-खड़े उसके सौंदर्य का पान करता रहा। उसका तरंगित हृदय स्पर्श के लिए आलुलायित हो उठा। उसने बहुत धीरे से, उसके अधर-प्रदेश पर प्रणय की छाप अंकित कर दी।

वह स्पर्श कैसा मादक था! उसने मणि को पागल कर दिया। मणि सजग हुई। और अधखुली आँखों से देखा—उसका पति उसके पास खड़ा है। मणि का शरीर रोमाञ्चित हो रहा था, उसकी कुंतलराजि प्रहसित हो उठी थी, उसकी आँखों में नशा उतर आया था। आह! वह स्पर्श! कितना मादक, कितना शाश्वत, कितना मधुमय !!

मणि की अतीत-स्मृति एक क्षण के लिए उभर आई। एक दिन किशोर को उसने ठीक इसी रूप में देखा था जिस रूप में आज वह नवीन को – अपने प्रियतम को—देख रही है। पर, उस दिन वह घृणा से, ग्लानि से, पागल हो उठी थी और आज वह सात्विक प्रेम से, अभिनव अनुराग से पागल हो उठी है। उसने मानस पर जोर डाला, उस स्मृति को भुलाने की चेष्टा की और·······और कुछ ही क्षण के बाद, नवीन ने देखा – वह उसकी भुजा-पाश में—प्रेम-रज्जु में आबद्ध पड़ा है। मणि ने अनुभव किया—यही उसकी फूल-शय्या है, यही उसके सुहाग का मंगल मुहूर्त्त है! वह प्रणय-लीला में बेसुध थी—विभोर थी!

—छत्तीस—

आनंदी मणि को विदा कर वापस आई। उस समय सूरज पूरब दिशा में उग रहा था, उसकी लालिमा संसार को आलोकित कर रही थी। आनंदी ने घर के भीतर प्रवेश करते हुए देखा—उमाशंकर—उसके पति—बड़ी तन्मयता के साथ दातून कर रहे हैं। उन्हें यह भी पता न था कि आनंदी उठी है वा नहीं। एका-एक उसे बाहर से आते हुए देख कर वे बोल उठे—"कहाँ से आ रही हो आनंदी? कभी तो तुम्हें इतने तड़के बाहर से आते हुए नहीं देखा, फिर आज तुम्हारे मन में टहलने की बात कैसे पैदा हुई?"

वह जिज्ञासु भाव से आनंदी की ओर देखने लगे। आनंदी चाहती थी—टहलने का बहाना ही कर लिया जाय; पर, उसने न जाने ऐसा क्यों नहीं कहा। कदाचित् उसे किशोर की अवस्था का ज्ञान हो गया हो। इसलिए विना कुछ सोचे-समझे, विना कुछ बात बनाए, वह बोल उठी—"मर्द कितने बदमाश होते हैं, भगवान ही जाने! इन मर्दों से स्त्रियों का त्राण नहीं। मैं तो स्त्रियों की एक सभा करना चाहती हूँ और उस सभा में यह प्रस्ताव पास करवाना चाहती हूं कि जिस तरह पुरुष इतने दिनों से स्त्रियों पर आधिपत्य करते आ रहे हैं, उसी तरह स्त्रियाँ उन पर आधिपत्य करें! और दूसरा प्रस्ताव यह होगा कि, मर्दों से कुछ दिन के लिए संबंध-विच्छेद कर रखें! इससे यह होगा कि उनकी अक्ल ठिकाने आएगी और स्त्रियों को वे खिलौना समझ कर मनमाना अत्याचार करने से बाज आएँगे। कहिए, आपकी इस पर क्या सम्मति है?"

आनंदी के ओठों पर मुस्कुराहट दौड़ गई, उसने बरबस अपने ओठों को दाँतों तले दबाने का आयोजन किया।

उमाशंकर ने इसे दिल्लगी समझा और उत्तर में व्यंग के रूप में बोले—"प्रस्ताव तो बड़े अच्छे हैं! पर, देखता हूँ, तुमलोग मर्दों की दुर्दशा ही करके दम लोगी! पर, भई, भगवान के नाम पर, मेरी रक्षा करना! तुम्हारे विना··········।"

"नहीं-नहीं, यह नहीं होने का! बाज आई आपके अनुरोध-रक्षा करने से।"

"नहीं, मेरी सरकार, इसकी रक्षा तो तुम्हें करनी ही पड़ेगी। पर, यह तो कहो, रात को सपने में किसी पुरुष ने तुम्हें तंग तो नहीं किया है? क्या किसी मनचले की सपने में आँख तो नहीं लड़ गई है? क्या कहती हो, आनंदी!"

"सपने की बात तो दूर रहे, कोई मर्दुआ जगे हुए दिन-दोपहर को मुझ पर आँख तो मार जाय, देखूँ उसके बाप को! वह बच्चा छठी का दूध नहीं उगल गया तो मेरा नाम क्या! मैं ऐसी-वैसी थोड़े ही हूं! वह तो बच्ची थी जिसने अपना अपमान सह लिया, जान लेकर भाग खड़ी हुई। मैं अगर उसकी जगह होती तो उसका खून पीती। आखिर, अपमान करने का नतीजा वह हाथों-हाथ पा लिया होता। जिसे अपने आप पर दबाव नहीं है उसे दूसरे की बहू-बेटी को साथ लेकर घूमने का क्या अधिकार?"

आनंदी के प्रसन्न मुख-मंडल पर रोष उतर आया, उसके नथुने फूलने लगे, कान तक लाली दौड़ गई, उसकी साँस जोर-जोर से चल रही थी, वह मूक थी।

उमाशंकर उसकी बातों से प्रभावित हुआ। वह सोचने लगा, अवश्य ऐसी बात घटी है जिसका उल्लेख वह इन शब्दों में कर रही है। उसकी बातों से उसे एक धुंधला प्रकाश-सा दीख पड़ा, पर उसने इन्हें स्पष्ट करने के अभिप्राय से प्रश्न किया—"क्या मैं जान सकता हूं, वह बच्ची कौन है और कौन है उसको अपमानित करनेवाला?"

"सुनिएगा? वह है, मणि, और अत्याचारी है आपका सुबंधु—किशोर! समझ गए आप?"

"उफ् ! ऐसी बात ? क्या कहती हो, क्या स्वप्न तो नहीं देखा है ? वा किसी कहानी का प्लाट तो नहीं गढ़ रही हो ?"

आनंदी का रोष थमा नहीं, वह बिगड़कर बोल उठी—"अजी साहब, गढ़िए प्लाट आपलोग, हम औरतें इसे क्या जानें ? रात को मगर-जैसे सोए रहते हैं, पता कैसे चले ? आखिर कहिए तो रात को यहां कुछ हुआ भी है ?"

उमाशंकर विस्मय-विमुग्ध होकर उसकी ओर ताकने लगे। उसने अचरज भरी आवाज में कहा—"नहीं तो !"

"वाह ! क्या कहते हैं ? यहाँ तो अगर रात को आपकी खाट उठाकर ले भागे तो आपको मुतलक ख्याल ही न हो, मालूम हो, जैसे सरग के लिए विमान भेज दिया हो। जनाब, इसी अक्ल से आप मर्द बने हैं ? आपको याद रखना चाहिए—रात को मणि यहाँ रोती बिलखती आई, उसका दुखड़ा सुना, उसके आँसू पोंछे, सांत्वना दी, वह चल पड़ने को तैयार हुई, मैंने रोका, पर वह रुक नहीं सकी। उसके पास कपड़े, पैसे-कौड़ी न थे। मैंने उसे कपड़े दिये, राह खर्च के लिए रुपए निकाले, उसे स्टेशन पर पहुँचा कर गाड़ी पर चढ़ा दिया और अभी वहीं से वापस आ रही हूँ। कहिए, इतना काम एक मिनट का नहीं हो सकता ! कुछ घंटे लगे होंगे। पर, आप तो खर्राटे भरते हैं, पता कैसे चले ? जाइए, आप अपने हजरत से मिलिए। देखिये, कहीं वह जहर तो नहीं खा गए, कितनी देर से दतून की साधना कर रहे हैं ? यह साधना तो पीछे भी हो सकती है। अभी नाश्ता ही कौन बनाता है जो इतना

रच-रच कर दाँतों को तकलीफ दे रहे हैं ?"—एक साँस में आनंदी बोल कर चुप हो गई।

कमलाशंकर बाबू हतप्रभ-से आनंदी के मुंह की ओर देखते रहे। वह सोच रहे थे—इतनी बातें हो गईं, पर मुझे इसका पता तक न चला। उनके मुँह पर लज्जा की लाली दौड़ गई, वह सिर झुकाए बड़ी देर तक जाने क्या-क्या सोचते रहे। उसके बाद वह बोल उठे—"आश्चर्य है, आनंदी! इन बातों को सुनकर मुझे तो ऐसा भान होता है कि, मैं खासा सपना देख रहा हूं, पर नहीं; अब मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य कुछ ऐसी बातें हो सकती हैं। मगर मुझे तो उस चांडाल पर रोष आता है! पर कैसे कहा जाय, वह इस कार्य में कहां तक दोषी है ? संभव है, मणि देवी तैश में आकर उसे जलील करने की भाग खड़ी हो........।"

आनंदी से सहा न गया। वह जितनी हँसोड़ थी उतनी ही गंभीर भी। वह बिगड़ कर बोल उठी—"कहिएगा क्यों नहीं, मणि ही तैश में आकर, आप-से-आप निकल भागी ? क्या खूब ! उतनी रात को, अकेली, रोती-कलपती, घर से निकल कर बाहर आना क्या आप ऐसी बात समझ रहे हैं जो शौक़ के लिए की जा सकती है ?"

कमलाशंकर मुँह-हाथ धोकर उठे और खड़े-खड़े ही मुँह पोंछते हुए गंभीर होकर कुछ क्षण तक सोचते रहे। आनंदी कुछ क्षण पहले पुरुष-समाज पर जो चार्ज लगा चुकी थी और जिसके विपक्ष में कमलाशंकर ने अपनी सम्मति दी, अब उसी बात को

लेकर उन्होंने लज्जा का अनुभव किया। उनका हृदय इस अमानुषिक व्यवहार से काँप-सा उठा! उन्होंने कपड़े पहने और बाहर की ओर चल पड़े।

कमलाशंकर को इसके पहले कई वार किशोर के घर सवेरे जाने का अवसर मिला था और जब-जब वह उससे मिलने को गए, तब-तब उसे अपने नित्य-कर्म से निश्चिंत होकर पढ़ते या कुछ करते हुए पाया। पर, आज कमलाशंकर ने बंगले में जाकर देखा—किशोर अचेत-जैसा बिछावन पर पड़ा है। उन्हें कुछ संदेह हुआ, वह कुछ क्षण तक उसके जगने की प्रतीक्षा में चुपचाप शांत होकर उसके पास बैठे रहे। उससे उनके दिल की बेकली दूर न हुई। उन्होंने बहुत धीरे से उसकी छाती पर हाथ रखा—अनुभव किया—धड़कन जोर से हो रही है!

कमलाशंकर के हाथ का स्पर्श पाकर किशोर सजग हुआ, उसने आंखें खोलीं, देखा—सामने कमलाशंकर बैठे हैं। उसने अंगड़ाइयाँ भरीं, और उठ बैठा। कमलाशंकर ने देखा—उसकी आंखें अंगारे के समान लाल हो रही हैं।

किशोर अपने सामने अपने दोस्त कमलाशंकर को पाकर झेंप उठा। उसे रात की घटना याद हो आई, उसने यह भी अनुभव किया कि कमलाशंकर को मणि से रात की घटना मालूम हो चुकी होगी। स्मरणमात्र से उसका सारा शरीर सिहर उठा, आंखों पर लज्जा छा गई। कमलाशंकर से यह छिपा न रह सका। उन्होंने ऐसा प्रयत्न किया जैसे उन्हें कुछ मालूम ही न

हो। वे इस मूड में आकर बोल उठे—"कहीं सिनेमा देखने में देर तो नहीं होगई किशोर! तुम तो बहुत तड़के उठ जाते थे! देखता हूँ, तुम्हारी आंखें अब भी लाल हैं! तबीयत अच्छी है न?"

किशोर की लज्जा कुछ-कुछ दूर हुई, उसका संशय भाग चला। वह मुस्किराते हुए बोल उठा—"अधिक रात गए नींद आई, इसलिए नींद पूरी न होने के कारण आँखें लाल दीखती होंगी!"

"तबीयत अच्छी है न?"

"हां अच्छी है!"

"अच्छी बात है; पर, इतनी रात तक जगे रहना उचित नहीं। नींद पूरी न होने के कारण तबीयत खराब हो जाने की संभावना रहती है!"

"पर बराबर तो नहीं जगता!"

किशोर इतना कहकर चौंक पड़ा। शायद इसके आगे कहीं कमलाशंकर जगने का कारण जानने को उत्कंठित न हो उठें, इसलिए अपने को संभालते हुए, बातों में भुलाने के विचार से वह बोल उठा—'इतने तड़के तुम कैसे आ गए, भाई?"

कमलाशंकर उसे ताड़ गये इसलिए वे भी बात बनाते हुए बोल उठे—"आज कल तड़के टहला करता हूं, किशोर! टहलते टहलते विचार उठा—देखता चलूँ तुम्हें। इसीलिए चला आया।"

किशोर को उनकी बातों से संतोष नहीं हुआ। उसका हृदय धड़क रहा था, रह-रह कर उसकी आकृति बदल रही थी।

कमलाशंकर सोच रहे थे, किस तरह से बात उठाई जाय।

संभव है, किशोर यह समझ ले कि उसे लज्जित करने को ही मैं आ गया हूँ। कदाचित् मेरा आना इसे अखर रहा हो, इसलिए, वह बोल उठे—"अभी जाता हूं, किशोर! देखता हूं, यहां अब अधिक समय रह नहीं सकूंगा। आनंदी घर जाने को तंग कर रही है। उसका मन यहां से ऊब उठा है। उसकी जिद है, घर वह जायेगी ही! मेरा ख्याल था, कुछ दिन और रहता, पर अब संभव नहीं दीखता!"

कमलाशंकर इतनी बातें केवल इसलिए कह गए कि संभव है; इससे किशोर का अभिप्राय वह जान सकें। निशाना अच्छा था। किशोर अपने को रोक न सका। वह बोल उठा—"कब जाने का विचार है? मेरा भी यही विचार है, क्या आपने जाने के दिन का निश्चय कर लिया है?"

"ऐसा कुछ निश्चय तो अभी नहीं है, पर तुरंत निश्चय करना ही होगा, इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। हां, तुम क्यों इतनी जल्दी जा रहे हो?"

इस वार किशोर असमंजस में पड़ा। वह अप्रतिभ हो उठा—वह कुछ सोचने लगा। कमलाशंकर उसकी ओर देख रहे थे। किशोर ने पहले अपने को संभालने का यत्न किया उसके बाद वह बोल उठा—"यहां ऐसा कुछ चार्म नहीं रह गया है भाई! तुम जानते ही हो, यहां रह कर स्टडी नहीं हो सकती। बी० एल० का लेक्चर कंप्लीट है, इस साल इम्तहान में बैठना भी जरूरी है। अब कलकत्ते में ही पढ़ूँगा।"

वह बोल कर चुप हो गया। उसे अपनी बात ही उखड़ी जैसी जान पड़ी। वह फिर से बोल उठा—"क्या अच्छा हो, यदि हमलोग साथ-साथ ही चलें।"

"हाँ, ठीक तो है। मैं आनंदी से सलाह कर तुम से कहूंगा। पर, अभी इजाजत दो। जरूरी काम करना है।"

कमलाशंकर जानबूझ कर चल पड़ने को तैयार हो उठे। उन्हें जो कुछ जानने के लिए आना पड़ा था, उनकी चर्चा तक न की। उन्होंने ऐसा मूड दिखलाया कि किशोर का संदेह आप-से-आप मिट गया। कमलाशंकर वहां से विदा हो घर की ओर चल पड़े।

किशोर बिछावन से उठा, बाहर आया, उसकी दृष्टि मणि के कमरे की ओर गई। देखा, द्वार ज्यों-का-त्यों खुला है—कमरा उदास है! वह क्षुब्ध हो उठा। उसका हृदय धड़क रहा था, फिर भी उसे आशा बंध रही थी—मणि कदाचित् दूसरे कमरे में सोई हो—आखिर, उसे इतनी हिम्मत कहाँ कि मुझे अकेले छोड़, इतनी बड़ी रात को, वह चली जाय।

उसे कुछ हिम्मत बंधी, कुछ बल का संचार हो आया। वह मणि के कमरे में घुसा, दृष्टि दौड़ाई, देखा—उसके बक्स एक-पर-एक, ज्यों-के-त्यों, करीने से रखे हुए हैं। उसे विश्वास हुआ—वह गई नहीं है, अवश्य दूसरे कमरे में होगी। वह दूसरे कमरे में गया, वह न थी। वहां से निकल कर स्टोर रूम की ओर बढ़ा, पर उसने उसके दरवाजे पर ज्यों का त्यों ताला जड़ा देखा। अब

उसे कुछ संदेह हुआ। वह नौकर के कमरे की ओर चल पड़ा, पर बीच ही में नौकर से भेंट हुई, नौकर बोल उठा—"मालकिन का कमरा सुबह से ही खाली पड़ा है, उन्हें देख नहीं रहा हूँ !"

नौकर की दृष्टि किशोर के मुँह पर पड़ी। देखा—चेहरा स्याह हो रहा है। वह मन-ही-मन काँप उठा और अपनी बात पर आप शर्मा गया और झेंपते हुए बोल उठा—"चाय और नाश्ता तैयार है, बाबू !"

किशोर नौकर की बातें सुन कर डर गया। उसकी नसें शिथिल पड़ गईं, मालूम हुआ—रक्त का संचालन बंद हुआ जा रहा है। पर, तुरत उसने अपने को संभाला, और चेहरे पर जबर्दस्ती मुस्किराहट लाकर बोल उठा—"नाश्ता तैयार है ?"

"सरकार !"

"ठहरो, मैं तैयार होता हूँ !"

किशोर थोड़ी देर में नित्य-नैमित्तिक कामों से छुटकारा पाकर तैयार हो गया। नौकर ने नाश्ता और चाय उसके टेबुल पर सजा दी।"

किशोर खाने को बैठ तो गया, पर आज उसे नाश्ता जैसे रूखा-सा जान पड़ा, उसे कोई स्वाद ही नहीं आ रहा था ! उसने अनमना होकर नाश्ता किया, पर वह अच्छी तरह खा नहीं सका। चाय उठाई, पर चाय जैसे पानी जान पड़ी। प्याला ओठ से लगाया, पर दोबारा उसे न लगा सका। वह उठ खड़ा हुआ, कपड़े पहने और कमरे से बाहर हो गया।

किशोर ने सारी जगह छान डाली, कमलाशंकर के घर की राह छोड़ कर, सभी जगह घूम गया, पर मणि की टोह न लगी। वह पागल-जैसा—विक्षिप्त-जैसा सड़कों पर घूम रहा था, पर रह-रह कर वह चौंक उठता और चौंक उठता इसलिए कि, कहीं कमाशंकर तो इस राह से नहीं गुजर रहा है, कहीं आनंदी तो नहीं किसी ओर से झांक रही है!

दिन-भर घूमते-घूमते किशोर काफी परेशान हो चुका था, उसकी बुरी गत हो रही थी, ओठ सूख गए थे, शरीर अवसन्न हो रहा था—मस्तिष्क में तूफान मचा था, वह अस्थिर हो रहा था! फिर भी उसकी आँखों के सामने मणि नाच रही थी। उसका वह विकराल रूप! उसकी रोषपूर्ण लाल-लाल आँखें! उसके भीतर का राक्षस निकल चुका था, और उस रिक्त स्थान पर पहुँच चुका था उसका देवता!

वह संध्या के समय समुद्र के किनारे—उत्तुंग सैकत-राशि पर जा बैठा। कल भी यहीं आकर बैठा था, यही उसके बैठने की जगह थी, यहीं से उसने समुद्र का नर्त्तन देखा था, यहीं से उसके कलगान सुने थे! पर, आज उसे न तो वह नर्त्तन ही स्फूर्ति-दायक जान पड़ा और न वे कलगान ही उसे मुग्ध कर सके! यहां भी उसका जी न भरा, उसने गहरी आह ली, फिर वह लेट गया। उसकी आँखें उन्मुक्त आकाश की ओर जा लगीं। आज चाँद ऐसा दीख पड़ रहा था मानो वह उस पर व्यंग की हँसी हँस रहा है!

वह चंचल हो उठा, उसका मस्तिष्क झल्ला रहा था, उसके हृदय में वेदना थी, पीड़ा थी, टीस थी, कसक थी ! वह किस-किस को संभाले ! उसने अपने को धिकारा—लाख-लाख कोसा ! उसे अपने आप पर रंज हो रहा था । उसे हो रहा था—क्यों न पिस्तौल दाग दूँ ? वह आत्म-ग्लानि से विकल था—विह्वल था—बेचैन था ! आह, यदि मणि उसे एक बार इस रूप में—हाँ, इस रूप में ही देख लेती ! मणि सहृदया थी, अवश्य इसे वह क्षमा कर देती । पर, आज मणि वहां थी कहाँ ? वह मस्तिष्क में पीड़ा और हृदय पर बोझ लाद कर उठ खड़ा हुआ और घर की ओर, आँखें बचाकर चल पड़ा ।

बंगले में आकर देखा—मणि और किशोर के कमरे में लैंप जल रहे हैं, और सामने के फाटक पर नौकर बैठा-बैठा ऊँघ रहा है ।

मणि के कमरे में प्रकाश देख कर उसे आशा बंधी—अवश्य मणि कहीं से लौट कर आ गई है । प्रसन्नता से उसका मुख-मंडल खिल उठा, वह जोर से लपक पड़ा, कमरे के दरवाजे पर । देखा—कमरा ज्यों-का त्यों खाली है, पर लैंप जल रहा है । उसे हुआ—कदाचित् आकर वह कहीं छिपी बैठी हो । उसने नौकर को जगाया ।

नौकर चौंक उठा, हाथ बांधकर वह खड़ा हुआ । बोला—"सरकार···· !"

"कोई आया भी था ?"—किशोर बोल उठा ।

"नहीं !"

"और तुम्हारी मालकिन ?"—धड़कते हुए पूछा !

"नहीं तो···· !"

"तुम्हें मालूम है, वह गई कहां हैं ? क्या कुछ तुम से कहा भी था ?"

"नहीं तो····नहीं सरकार ! मुझे क्या पता, वह कहां गई हैं, कब लौटेंगी ?····हुक्मी बंदा हूँ सरकार !····मैं क्या जानूँ !"

"कुछ अनुमान कर सकते हो ?"

"नहीं !"

किशोर झल्ला उठा—खुदा मियां की गाय जो ठहरा ! जो कुछ पूछो—नहीं; जो कुछ कहो—नहीं ! साले ! तूने सिर्फ नहीं ही पढ़ा है या और कुछ ?····पाजी····बदमाश !"

नौकर काँप उठा, काटो तो खून नहीं ! मानो वज्र गिर पड़ा हो, मानो बिजली छू गई हो । वह दीन था, असहाय था, सूधा था !

पर, किशोर ने अनुभव किया—उसने कहीं गल्ती कर दी है । उसे समझ पड़ा—इसे डांटना ठीक न हुआ । उसने अपने को संयत किया और संयत भाषा में बोल उठा—"खाना बना है बीरू ?"

"हाँ !"

"चलो, तैयार करो !"

बीरू रसोई घर की ओर लपका ।

किशोर अपने कमरे में आ बिछावन पर लेट गया। उसे काफी भूख लगी थी, गला सूख रहा था ।

थोड़ी देर के बाद नौकर खाने का सामान टेबुल पर रख गया। किशोर ने हाथ-पैर धोए, सिर को अच्छी तरह धोया। वह टेबुल पर बैठ गया। वह दिन भर का भूखा था। उसने खाने के समय यह भी अनुभव न किया कि, खाना रुचिकर पका है या अरुचिकर। वह इस तरह खा रहा था जैसे भूखे को, बहुत दिनों के बाद, स्वादिष्ट भोजन मिला हो।

वह निश्चिंत हो, दरवाजा बंद कर बिछावन पर लेट गया। कुछ ही क्षण के बाद उसे गहरी नींद हो आई।

—सँतोस—

कई सप्ताह बीत गए। धीरे-धीरे किशोर स्वस्थ हो चला, पर कमलाशंकर से वह मिल नहीं सका, यद्यपि कमलाशंकर कई बार जिज्ञासा करने को, उसके बंगले पर आ चुके थे; पर, उन्हें मुलाकात न होती। बात यह थी कि, वह दिन भर घर से बाहर ही रहता। उसे मणि के बिना घर श्मशान-जैसा जान पड़ता। वह बड़ी रात को बाहर से लौटता, कभी खाए—कभी बिना खाए ही सो रहता, फिर तड़के उठता और चल देता। वह समझ नहीं रहा था—उसे क्या करना चाहिए ? कभी वह कलकत्ता लौट चलने की बात सोचता, पर उसका विचार टिक नहीं सकता। उसे होता था—वहाँ निश्चिंत होकर रह सकेगा वह कैसे ? कहीं मणि से भेंट हो गई तो ? क्या वह समझेगी ? उसकी नजरों में मेरा क्या मूल्य रहा होगा ? वह राक्षस समझती होगी मुझे ! हाँ, मैं राक्षस ही तो था उस दिन—उसके सामने !

किशोर बड़ी देर तक बिछावन पर पड़े-पड़े सोचता रहा। पश्चात्ताप से उसका हृदय शांत हो चला था। उठते-बैठते, सोते-जागते उसके सामने मणि का सौम्य मुख-मंडल प्रकाश की तरह घूम जाता था। वह आँखें मूँद लेता और न जाने इस रूप में वह कब तक ध्यानस्थ रहता? उसके हृदय की कालिमा मिट चुकी थी। वह अपने को इस योग्य बना पाया था कि वह एक बार मणि की सुधि ले। वह मणि को पत्र लिखे और संभव हो तो मणि के समक्ष उपस्थित हो, उससे क्षमा की याचना करे।

समय की दूरी चिंता को दूर करती है; और हृदय के आँसू मस्तिष्क को शांत करते हैं।

किशोर ठीक इस अवस्था में पहुंच चुका था।

अब वह मुंह छिपाने को बंगले से बाहर नहीं निकला करता। वह बंगले में ही सारा दिन रहता और वहीं शांति के साथ अपनी स्टडी करता। फिर भी उसमें जो उत्फुल्लता पहले थी, आज वह नहीं दीख पड़ती। वह शरीर से खिन्न हो गया था।

इन दिनों वह तड़के उठ कर किनारे की ओर चला जाता और जी भर कर स्नान करता।

एक दिन वह स्नान करके लौट रहा था कि कमलाशंकर से सड़क की मोड़ पर भेंट हो गई। कमलाशंकर बहुत दिनों के बाद किशोर को पकड़ने में समर्थ हो सके थे, फिर वे कब छोड़ने वाले! वह उसे देखते ही बोल उठे—"किशोर! खुशी की बात है कि आज अनायास ही तुम से भेंट हो गई। बड़ा अच्छा रहा! तुम्हारी

भाभी तुमसे मिलने को आतुर हो रही हैं। क्या यह तुम्हारे लिए उचित था कि तुम उन्हें इस तरह से भूल जाओ ?"

किशोर को आनंदी का सरल सहास्य वदन आँखों के सामने नाच उठा। उसे मन-ही-मन खेद हो रहा था कि क्यों नहीं वह अब तक उनसे मिल सका। वह संकोच के स्वर में बोल उठा—"अवश्य यह अनुचित हुआ है—मैं उनसे क्षमा चाहता हूं।"

"क्षमा करना न करना उनका काम है; पर, तुम एक बार चल कर मिल क्यों नहीं लेते ?"

"मिलूंगा, पर अभी नहीं—आजकल पढ़ रहा हूं।"

"ठीक है, पढ़ा करो, पर एकाध घंटे के लिए क्या होना जाना ? चलो, नाश्ता-पानी तो कर लो।"

किशोर कुछ देर तक अन्यमनस्क होकर सोचता रहा, फिर आप-ही-आप बोल उठा—"तो चलो भाई, उनसे मिलता ही चलूं !"

दोनों चल पड़े। कमलाशंकर किशोर को ड्राइंग रूम में बिठा कर भीतर गए—आनंदी को किशोर के आने का समाचार कहा। आनंदी नाश्ता बना कर चाय के लिए पानी गर्म कर रही थी।

किशोर का नाम सुनकर आनंदी का संचित रोष उबल पड़ा। वह अपने को रोक न सकी, बोली—"आया है तो आने दो। तुम्हारा दोस्त है तो तुम मिलो। मुझे उससे क्या ? कमलाशंकर उसकी तीखी बातों से विचलित न हुए। उन्होंने हँसते हुए कहा—"इतनी निष्ठुर क्यों होती हो आनंदी ! तुम्हें क्या उठा कर

ले भागेंगे? मैं पहरे में रहूंगा। घबराओ मत! सत्कार तुम न करोगी तो कौन करेगा?"

आनंदी चुप रही, बोली नहीं। कमलाशंकर कुछ देर तक उसकी प्रतीक्षा में खड़े रहे, वह चुपचाप बाहर की ओर चल पड़े।

आनंदी ने उन्हें जाते हुए देख कर कहा—"कहाँ है किशोर? भेज दो उन्हें यहाँ पर!"

कमलाशंकर खुश हुए और वह बाहर की ओर चले गये।

क्षण भर के बाद किशोर ने भीतर आकर आनंदी के पैर छुए। आनंदी विस्मय-विमुग्ध हो—'यह क्या—यह क्या' कहती ही रह गई।

आनंदी का सारा रोष करुणा में परिवर्त्तित हो गया जब उसने किशोर पर दृष्टि डाली, उस किशोर पर जो प्रायश्चित्त की अग्नि में घुल-घुल कर पीला पड़ गया है। आनंदी ने किशोर का हाथ पकड़ कर अपने पास के आसन पर बैठाते हुए कहा—"क्यों किशोर बाबू, मुझ पर क्यों खफ़ा थे? भूल कर भी तो आते! आप इतने सूख क्यों गए हैं?"

आनंदी ने उसकी ओर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि डाली। किशोर सिर झुकाए, बंदी के रूप में, उसके सामने बैठा था। आनंदी का स्नेह उमड़ पड़ा, उसके हृदय में करुणा तरंगित हो उठी। तब तक किशोर ने अपने को संभाल लिया था, वह बोल उठा—"भाभी, मैं आज तुमसे क्षमा मांगने आया हूँ, मैंने जीवन में एक ऐसा गुनाह किया है जिसका प्रायश्चित्त मुझे करना ही पड़ेगा। अभी मैं अपने को प्रायश्चित्त के योग्य बना रहा हूं।"

किशोर की आँखें बरबस छलछला आईं, गला रुद्ध हो गया, उसने अपना सिर दूसरी ओर को घुमा लिया।

आनंदी का हृदय मोम-जैसा पिघल गया। वह सांत्वना के स्वर में बोल उठी—"जीवन में किससे भूल नहीं होती किशोर बाबू! और खास करके जवानी में? उसके लिए चिंता करने की कोई बात नहीं। अगर आप अपने करतब पर पछता रहे हैं और सच्चे दिल से पछता रहे हैं तो समझिए कि आपने प्रायश्चित्त कर लिया। पर, देखती हूँ, आप इतने दुबले-पतले पड़ गए हैं कि पहचान में भी नहीं आते। आपके भाई साहब आपकी खोज में लगातार जाते रहे हैं, पर आप न जाने कहाँ निकल जाते थे? आज आप पकड़े गए हैं। उन्हें तो बराबर आपकी चिंता ही लगी रहती है—बराबर आपके बारे में ही सोचा करते हैं।"

चाय का पानी तैयार हो गया था। उसने उसमें चाय छोड़ी। तब तक उसने नाश्ते का सामान एक तश्तरी में सजाया। पैर धोने को जलपात्र सामने लाकर रखते हुए कहा—"किशोर बाबू! नाश्ता कर लें। जल लेकर पाँव धो डालें।"

किशोर ने मसीन की तरह उठ कर पैर धोए, आसन पर आ बैठा। तश्तरी उसके सामने पड़ी। आनंदी चाय तैयार करने लगी।

आनंदी ने प्याले में चाय उढेलते हुए कहा—"परसों मणि की चिट्ठी आई है, वह अच्छी तरह पहुंच गई है। पर, उसकी मां बेतरह बीमार हैं। वह लिखती है कि, इस बार वह बच नहीं सकेंगी। आपने तो उन्हें देखा होगा—क्या वह ज्यादा कमजोर थीं?"

किशोर मणि की बात सुन कर लजा सा गया, पर उसे जान कर खुशी ही हुई कि, वह सकुशल घर पहुंच गई है। वह अधिक और न सोच कर बोल उठा—"ऐसी कमजोर तो न थीं, पर, शरीर का क्या ठिकाना ? कच्चा घड़ा ठहरा, ठेस लगी और खतम !"

"वह अकेली लड़की ! बीमारी से घबरा उठी है ! उसके प्रत्येक अक्षर से घबराहट टपकती है। सांत्वना के लिए एक-दो शब्द लिख दीजिए, किशोर बाबू ! कुछ तो ढाढ़स हो जाय !"

आनंदी बोल कर चुप हो गई। किशोर के सामने मणि का सरल-सदय हृदय तस्वीर की तरह उतर आया। कैसी उस पर बीतती होगी ? कौन उसकी देखभाल करता होगा ? कैसी कोमल ! कैसी सुकुमार !! किशोर बोल उठा—"मणि के प्रति मैंने जो अपराध किया है, उससे मुझ में इतना भी साहस नहीं होता कि, मैं उससे क्षमा की याचना तक कर सकूँ। क्षमा करना या न करना उसके हाथ की बात है, पर मैं कौन-सा मुंह लेकर उससे क्षमा की भीख मांगूँ ?"

किशोर ने पीड़ा का अनुभव किया। उससे और न बोला गया। उसकी दृष्टि आनंदी पर अटकी थी; मानो आनंदी से ही वह क्षमा की भीख मांग रहा हो।

आनंदी बोल उठी—"जब आप सच्चे हृदय से उससे अनुनय करेंगे और सच्चे हृदय से क्षमा की याचना करेंगे तो संभव नहीं कि, मणि आपको क्षमा न करेगी। मणि वैसी है भी नहीं। जानते नहीं हैं आप स्त्रियों का हृदय ! कोमल-से-कोमल ! और कठोर-से-

कठोर !! आप जरा पत्र लिखकर क्षमा माँगें। विश्वास है, आप इसमें सफल होंगे।"

"पर, आप भी मेरी ओर से अपने पत्र में कुछ लिख दें भाभी! आपके लिखने से मेरे पत्र में बल मिलेगा।"

आनंदी के मुंह पर हँसी की रेखा दौड़ आई। वह हँसी को दबाने का व्यर्थ प्रयास करती हुई बोली—"खैर, यही सही, मैं आपकी ओर से वकालत कर दूँगी। और कुछ ?"

"यही बहुत है, भाभी!"

आनंदी अब हँसी पर उतर आई। वह हास्य-प्रिय प्रकृति को इतनी देर तक रोक न सकी, वह हँसती हुई बोल उठी—"आप, जान पड़ता है, प्रणय-लीला में बिलकुल अपटु हैं, किशोर बाबू! आपको पहले, इस फ़न के उस्ताद से, सबक सीखना चाहता था। आपने तो सेक्स-साइकलौजी पर कितनी पुस्तकें देखी होंगी, फिर भी भूल कर दी? बड़े वैसे हैं आप!"

आनंदी खिलखिला कर हँस पड़ी। किशोर भी अपने को रोक न सका। वह हँसते हुए किंतु लजा कर बोल उठा—"उस्ताद से भेंट ही नहीं हुई भाभी! नहीं तो ऐसी गलती कर सकता? और सेक्स-साइकलौजी की बात कहती हो? चाहे जो दोष दो मुझे, अब तो अपनी गलती ही कहूँगा। पर, उसकी भावभंगी…… स्त्रियों का चरित्र बड़ा ही गहन है, भाभी……बड़ा ही गहन!"

"वाह! साहब, अच्छा कहा! जबर्दस्ती आप करेंगे और दूसरा आपका सपोर्ट करेगा। आपको जानना चाहिए—प्रेम

जबर्दस्ती की चीज नहीं। पहले उसका हृदय अपनाना चाहिए था। गलती तो आपने की, और चले हैं स्त्रियों के चरित्र की गहनता में प्रवेश करने!"

आनंदी फिर से हँस पड़ी, वह उठ कर नाश्ता का सामान कमलाशंकर को देने के लिए चली गई। एक मिनट के बाद ही उसने लौटते हुए किशोर से कहा—"तो अब अकेले दम बंगले में क्या करते हैं? आप हमलोगों के बीच चले न आइए! व्यर्थ तकलीफ उठाने से लाभ?........तो आप कब आते हैं?"

किशोर क्षण भर चुप रहने के बाद बोला—"आपलोग तो जाने वाले थे न? फिर रुक क्यों गए? भाई साहब ने कहा था—आप जाने को उतावली हो रही हैं। क्या उन्होंने भूठ ही कहा था?"

"उसके सच-भूठ की तो मैं क्या कहूं। जरूर मैं उतावली हूँ, पर वे टस-से-मस नहीं होते। वे आज तैयार हो जाएँ तो मैं अभी कदम बढ़ाए तैयार हूँ। पूछिए, अपने भाई साहब से।"

"अच्छा, मैं उनसे पूछूँगा। यदि वे जाने को तैयार हो जाएँ तो मैं भी आपलोगों के साथ ही चल दूँगा।"

किशोर ड्राइंग रूम में आया। कमलाशंकर नाश्ता कर चुके थे। वे किशोर को देख कर मुस्किराते हुए बोल उठे—"यह क्या, किशोर! तुम आते ही न थे, पर आए तो तुम दोनों मक्खन-मिश्री हो गए!"

आनंदी दीवाल के पास खड़ी थी। वह वहीं से बोल उठी—"कैसे नहीं मक्खन-मिश्री बनें? आखिर जवानी ही तो ठहरी!"

सभी उसकी बातों पर हँस पड़े।

तीनों के परामर्श से तय हुआ कि रथ-यात्रा देख कर ही यहां से चला जाय और तब तक किशोर भी यहीं आकर रहे।

———

—अड़तीस—

उस दिन मरभूखों रोगियों के बीच आश्रम के सेनिटोरियम विभाग में काफी हो-हल्ला मच गया।

बात यह थी कि उन सब के बीच, दो पहर का खाना खा चुकने के बाद, पुराना किस्सा चल रहा था। इसी सिलसिले में एक, जिसकी गंजी आँख थी और जो सिफलिस के रोग में अपने अंगों को सड़ा चुका था, अपने निकट के रोगी को यह कह कर चिढ़ा रहा था कि, तुम्हारे बाप पर ताड़ीखाने में गहरी मार पड़ी थी क्योंकि उसने ताड़ीखाने की एक अल्पवयस्क लड़की के साथ छेड़खानी की थी। यह बात मेरे सामने गुजरी—मैं भी वहीं था। इस पर वह बिगड़ कर बोल उठा—"सरासर झूठ! ऐसा वह हर्गिज नहीं था।"

"तुम झूठे ! मैं अपनी आँखों देखी बातें कैसे झूठी मान लूँ ?" गंजी आँख वाले ने आँखें मटका कर कहा।

इतने में उसका गुस्सा भड़का। वह तैश में आकर बोल उठा— "झूठा-सच्चा मत बको, जरा अपनी जबान संभाल कर बका करो। झूठा और दग़ाबाज़ तो वह है जिसने गुलरू रंडी के जूते खाए। बच्चा चला था रंडीबाजी करने ! गांठ में दाम नहीं, बनेंगे धनपत ! भीख माँगेंगे, शराब पिएँगे और चलेंगे रंडी के साथ छेड़खानी करने ! और हमारे सामने हेंकड़ी भर रहे हैं !"—जगई बोल उठा।

"और वह कौन था, जगई ?"—एक दूसरा रोगी मजा लेते हुए बोल उठा।

"कौन था ?"—जगई बोल उठा—"वह थे हमारे नवाब साहब !" उसने इशारा करते हुए कहा—"देखो न ! शरीर पर रोग फूट उठा है, कितने घर को तबाह किया होगा ! तिस पर चला है बात बनाने !.........पाजी !"

पाजी सुनना था कि उसका क्रोध भड़का, वह इतना तैश में आ गया था कि, अपने को रोक न सका। वह झपट कर उस पर टूट पड़ा, उसने जोर से कई तमाचे उस पर कस दिए। जगई भी अपने को रोक न सका। दोनों में खूब गुत्थम-गुत्थी हुई। इतने में कई रोगी बीच-बचाव में कूद पड़े। गंजी आँखवाले ने, जिसका नाम सुमरा था, सभी को मारना शुरू किया; पर उतने लोगों के बीच अकेला सुमरा का क्या चलता ? एक ने उसे जमीन पर ले पटका और दूसरे ने उसके गाल पर, कान की जड़ के सामने,

कस कर थप्पड़ मारे। थप्पड़ जोर से लगे, सुमरा वहीं अचेत हो गया।

उस दिन इतना हंगामा मच गया, पर किसी ने नवीन को खबर तक न दी। यहाँ तक कि, न तो सेविकाओं को मालूम हो सका और न डाक्टरों को ही। बात यह हुई कि, मारपीट के बाद उन लोगों में यह कह कर सुलह हो गई कि अगर यह खबर यहाँ के कर्मचारियों को लगी तो हमलोग सब-के-सब निकाल दिए जाएँगे या हमलोग इस अपराध में कोई-न-कोई सजा भी भुगतेंगे। आखिर, यह आराम फिर हमलोगों को नसीब न होगा।

कुछ दिन और चले। इनलोगों के बीच और किसी तरह की बात न हुई। अवश्य किसी-न-किसी आए दिन उनलोगों में ऐसी अश्लील बातें हो जातीं जो आश्रम के लिए उपयुक्त न थीं पर उन बातों से उनलोगों को रस मिलता और आपस में वे लोग खूब हंस-हंस कर ऐसी बातों में योग देते।

पर एक रात को ऐसी घटना घटी जिस पर सभी गर्म हो उठे। बड़ा हो-हल्ला मचा—अभियुक्त पर जोर से मार पड़ी और उसे छिपाना उन लोगों के लिए कठिन हो उठा। उनके बीच जो लोग अक्लवाले समझे जाते थे—वादी-प्रतिवादी को लेकर आफिस में उठते-बैठते, लंगड़ाते हुए, पहुँच गए।

कार्यालय में मणि और नवीन को छोड़ कर और कोई न था। नवीन ने उनलोगों को आते हुए देखा, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। अब तक कभी ऐसा अवसर न आया था कि रोगी गरोह बांध

कर, इतने तड़के आफिस में आवें। आखिर कौन-सी बात हुई ? नवीन चिंता में पड़ गया। कहीं प्रबंध में कोई गड़बड़ी तो नहीं हुई वा डाक्टरों वा सेविकाओं से तो कोई बात नहीं हुई जिससे उनलोगों को इतना कष्ट सह कर, यहां आना पड़ा ! उसकी समझ में कुछ न आया। मणि भी उनलोगों को देखकर स्तंभित हो उठी। नवीन ने पूछा—"बिहारी ! कहो क्या हालचाल है ? तुमलोगों ने क्यों कष्ट किया आने का ? क्या कोई तकलीफ तो नहीं है ?"

बिहारी कुछ देर चुप रहा। उसके बाद बोल उठा—"सरकार ! आपके राज में हमलोग मजे में हैं, कोई तकलीफ काहे को होगी ? अब तो आपकी दया से हमलोग बीमारी से भी छुटकारा पा रहे हैं। ऐसा दाता कहाँ मिलेगा, राजा !"

बिहारी बोल कर चुप हो गया। सभी बैठे हुए थे, सभी के सिर नीचे झुके हुए।

नवीन को इतने से संतोष नहीं हुआ। आखिर इनलोगों के आने का कोई कारण तो होगा ही ! वह उत्सुक हो उठा, बोला—"अगर कोई कष्ट हो तो बोलो ! हमलोग तुम्हारी रक्षा के यत्न में लगे हुए हैं। कहते क्यों नहीं ? मदन ! आखिर इतने तड़के आए कैसे ?"

बिहारी और मदन सभी की अपेक्षा ज्यादा समझदार थे।

मदन ने एकबार बिहारी की ओर देखा और बिहारी ने उसकी ओर ! दोनों एक दूसरे को देख रहे थे, पर किसी के मुंह से कुछ निकलता ही न था। नवीन बड़ा भौंचक में पड़ा था। मणि भी

नहीं समझ रही थी कि इतना तड़के आकर भी कोई क्यों नहीं बोल रहा है। उसे कुछ संदेह हो आया। उसने समझा—अवश्य कुछ दाल में काला है जिसे ये लोग प्रकट करना नहीं चाहते। वह स्वयं बोल उठी—"कहते क्यों नहीं, जब तक आप लोग कुछ बोलेंगे नहीं; कैसे कोई समझ सकेगा कि आपलोग क्या चाहते हैं ? इतनी सबेर-सबेर आपलोग आए, देखती हूं, इनमें बहुत ऐसे हैं जिन्हें चलने में काफी तकलीफ हुई होगी। फिर इतनी तकलीफ उठा कर आए, आखिर आने का कुछ भी तो अभिप्राय होगा ?"

नवीन ने मणि का ही समर्थन किया।

इस वार बिहारी को कहने का कुछ साहस हुआ, पर, वह स्वयं कुछ अधिक न कह कर एक लड़के की ओर इशारा करते हुए बोल उठा—"लाज की बात है, सरकार ! क्या बोलें। एक तो उस जनम में कौन सा पाप किया था कि उसका फल आज भोग रहे हैं, पर हमलोग कितने ओछे और पापी हैं कि अब भी सुधरना नहीं चाहते ! सब कुछ हरिया ही बतायगा, हमलोग क्या कहें ?"

नवीन और मणि का ध्यान हरिया की ओर गया। हरिया की उम्र कोई १३-१४ साल की होगी। पतला-छरहरा बदन, मलेरिया का मारा हुआ ! सूधा-सीदा सा !

हरिया की ओर देखते हुए नवीन बोल उठा—"हरि ! क्या कहना चाहते हो, कहो-कहो ?"

हरिया रो पड़ा, उसकी रुलाई से नवीन दुखी हुआ और मणि की आँखें छलछला आईं।

इतने में बिहारी बोल उठा—"एकवार और वहां हो-हल्ला मचा था सरकार! पर, उस समय हमलोग बीच-बचाव में आकर उस बात को बिलकुल छिपा गए! फिर भी चेत न हुई।"

उसने एक लंबी साँस ली, फिर हरिया को सांत्वना देते हुए कहा—"रोने से क्या फायदा। हमलोगों के माँ-बाप तो बैठे हैं, जरूर तुम्हारी बातों को सुनेंगे! बोलो हरि, साँच में आँच क्या?"

हरिया रो-रो कर कहने लगा। उसकी अधूरी बातों से ही मणि काँप-सी उठी, उसका सारा शरीर सिहर उठा, वह ठहर न सकी। क्षोभ और लज्जा से वह सीढ़ियों की राह ऊपर की ओर झपट पड़ी। नवीन ने कान खोल कर सुना, वह बोल उठा—"बस चुप रहो, हरि! और उसके आगे नहीं सुना चाहता!"

नवीन को कभी आशा न थी कि, आश्रम-जीवन इतना अपवित्र हो उठा है। उसने सुमरा की ओर देखा। वह सिर झुका कर बैठा था। नवीन को रोष हो आया—उसकी आँखें रंग गईं—पर, वह चुप था। उसके मस्तिष्क में आँधी बह रही थी।

नवीन ने अपने को सोचने का मौका न देकर, संयत किया। वह बोल उठा—"सुमरू से मुझे ऐसी आशा न थी। क्यों सुमरू! क्या तुम्हारे लिए यही उचित था? तुम्हें अपने करतूत पर लज्जा आनी चाहिए! मनुष्य इतना अधम हो सकता है-मुझे तुम्हारी ज्ञात से ऐसा जरा भी विश्वास न था! तुमने मेरे विश्वास पर

आज कुल्हाड़ा चलाया है और मेरी आत्मा को रौंद डाला है। छिः! कितना बुरा किया तुमने!"

नवीन बोल कर चुप हो गया। उसकी धमनियों में जोर से रक्त प्रवाहित हो रहा था। उसने बिहारी से कहा—"जाएँ आपलोग, मैं इसका शीघ्र प्रायश्चित्त करूँगा। समझता हूं, यह मेरी कमजोरी का कारण है! मैंने सदा सब पर विश्वास किया है, पर देखता हूं, संसार पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। खैर, सुमरू! आज से तुम्हें एकांत कमरा, तुम्हारे रहने के लिए मिलेगा। तुम एकांत में, अपनी करतूत के लिए भगवान से क्षमा मांगो और अपने को इस योग्य बनाओ कि तुम आदमी कहला सको।"

नवीन ने बिहारी को एक स्लिप देकर कहा—"डाक्टर साहब जब वहां आवें तो उन्हें यह दे देना। अभी तुमलोग जाओ।"

सभी चले गए। नवीन कुछ क्षण तक सोचता रहा। वह सोचते-सोचते इतना गंभीर हो उठा कि उसके सिर में जोर से पीड़ा होने लगी। नवीन वहाँ अधिक न ठहर कर अपने कमरे में बिछावन पर पड़ रहा।

मणि ने अपने कमरे से नवीन के आने की आहट पायी थी। वह कुछ ही क्षण के बाद नवीन के कमरे में आई, उसने नवीन को बिछावन पर बहुत चिंतित दशा में पड़े हुए देखा। वह बोल उठी—"क्यों आप वहां से आकर इतने चिंतित हो गए? मैं तो वहां ठहर ही न सकी! हरि की बातों से मेरा खून खौल उठा!···· सुमरा, नरक का पुतला······! ये लोग क्या सुधरेंगे? जनम का

रोग लेकर·········कितना छिछोरा बना हुआ है ! चले हैं, आप सुधार करने !"

नवीन आप ही सिर दर्द से परेशान था। मणि की बात उसे अच्छी न लगी। उसने मणि की ओर से अपनी मुंह दूसरी ओर को फेर लिया।

मणि नवीन के व्यवहार से रुष्ट तो हुई किन्तु वह वहाँ से हटी नहीं, सोचने लगी—भावुकतावश नवीन को मेरी बातें जँची नहीं, उचित कहना इन्हें बुरा लगा। न बोलना ही अच्छा था। पर, स्त्री-पुरुष के बीच यदि ऐसी बात हो जाय तो इसके लिए इतना दुखी होना क्या उचित हुआ ? वह जहाँ तक सोच सकी, उससे यही उसने निष्कर्ष निकाला कि इसमें उसका दोष तो कम, नवीन का ही अधिक है। चाहे ये बुरा ही मानें तो मान लें, पर मैं तो मुंह देखी बातें कहूंगी नहीं। पर, इस समय वह नवीन को और दुखी करने को तैयार न थी। उसने पहलू बदलते हुए कहा—"देखती हूँ, आप मेरी बातों से असंतुष्ट हो रहे हैं। क्या मैंने इस संबंध में बोलकर अनुचित किया है ? यदि आप यह सोचते हों तो मैं अपनी बातों को वापस लेती हूं और अपनी भूल के लिए आप से क्षमा चाहती हूं।"

मणि ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और उत्तर की प्रत्याशा में न बैठ कर उठ खड़ी हुई।

नवीन असमंजस में पड़ गया। उसने परिस्थिति संभालनी चाही। वह समझ गया था कि, इन दिनों आश्रम के कामों पर

मणि की सख्त आलोचना चल रही है और आज उसने जो कुछ सुना है, इससे उसकी आलोचना का मार्ग और भी प्रशस्त हो गया। इसलिए उसने विचार किया कि मणि का समर्थन, कुछ समय के लिए कर लेना अधिक उत्तम होगा। वह जरा सोचकर बोल उठा—"मणि, क्या आई और क्या चल रही हो। तुमने मुझे इतना भी नहीं पूछा कि मेरी तबीयत कैसी है! खैर, मैं तुम्हारी आलोचना को बुरा नहीं समझता। आज के कांड से मुझे सख्त अफसोस है, पर तुम जानती हो, मैं आशावादी हूँ। इतने ही से मैं घबरा नहीं उठा, मुझे विश्वास है कि अब भी सुधार किया जा सकता है।"

मणि लौट पड़ी, नवीन घूम कर उसकी ओर देखने लगा। वह आ बैठी और बैठते हुए बोल उठी—"सुधार हो सकता है वा नहीं यह तो मेरा प्रश्न नहीं है। मैं तो यह कहा चाहती हूं कि कोयला को यदि लाख धोया जाय तो वह उजला नहीं हो सकता। बुरे बुरे ही रहेंगे और अच्छे अच्छे ही। अवश्य इसमें कुछ अपवाद भी हो सकता है, पर अधिकांश में वह ज्यों-का-त्यों ही रहेगा। आप इस विषय को निमू`ल करना चाहते हैं। मेरे और आपके विचार में यही अ`तर है। मुझे तो इसका यहाँ अच्छी तरह अनुभव हो चला है। यहाँ की लड़कियाँ जितनी अच्छी हैं और उन पर शिक्षा-दीक्षा का जैसा प्रभाव पड़ा है, वैसा उन पर नहीं जो व्यभिचार में ही पाली-पोसी जाकर अपने को नष्ट कर चुकी हैं। मुझे तो इस बात का आश्चर्य है कि, आश्रम का पवित्र

वातावरण क्यों नहीं उनलोगों के अनुकूल हो रहा है। आश्रम कहाँ पर भूल कर रहा, इसका मुझे जरा भी ज्ञान नहीं। आश्रम इससे अधिक कर ही क्या सकता है?"

नवीन को अंतिम हवाला ऐसा जान पड़ा, मानो उसे खुश करने को ही कहा गया है। नवीन को मणि की चतुरता पर हँसी आ गई, वह खिलखिला कर हँस पड़ा। पर, मणि उसकी हँसी में योग न दे सकी। वह क्षण भर के लिए असमंजस में पड़ गई। इतने में नवीन हँसते-हँसते ही बोल उठा—"धन्यवाद है मणि! तुम्हारे बहुमूल्य विचार पर। पर, खेद है, मैं पूरी तरह सहमत नहीं हो सका। यह तो सिद्धांत की बात है। तुम जिस पहलू से विचार कर रही हो, मैं उस पहलू से विचार नहीं करता। कोयला से मनुष्य की समता नहीं की जा सकती। जड़ जड़ ही है और चेतन चेतन ही। जड़ और चेतन में मेल ही कैसा? चैतन्य प्राणी भले-बुरे की पहचान कर सकता है, वह समझ सकता है कि कहाँ पर उससे भूल हो रही है और कहाँ पर वह ठीक कर रहा है। उसे अपनी भूल के लिए खेद हो सकता है और अच्छे कामों पर प्रसन्नता। तब, अपवाद सदा से रहा है और सदा रहेगा। पर, मेरे विचार से, सब का सुधार किया जा सकता है। नीच-से-नीच व्यक्तियों के लिए भी जीवन में एक ऐसा अवसर आता है जब कि वे अपने कामों पर पश्चात्ताप करते हैं। यदि उन पर कोई निशाना मारे तो अवश्य वे अपनी बुराइयों को छोड़ सकते हैं। अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए, और चेष्टा रहे,

सदैव उनके सुधार की। कौन-सा अवसर किसके लिए उपयुक्त आ रहा है, यह समझना कठिन है। पर, अच्छे उपदेश और अच्छे वातावरण का प्रभाव तो पड़ेगा ही—चाहे देर से पड़े वा शीघ्र। यहीं पर मेरे और तुम्हारे विचार में अंतर है, मणि! तुम्हें इतना औप्टिमिस्ट नहीं होना चाहिये।"

मणि ने कुछ देर तक उनकी बातों पर सोचा, फिर बोल उठी—"इतना ही तो मैं आप में कसर पा रही हूं। आपने एकबार जो कुछ सोच लिया है, दुहराकर आप उस पर विचार नहीं करना चाहते। मेरा ख्याल है, विचारों के आदान-प्रदान से मनुष्य में जो अपने पक्ष-समर्थन करने का एक प्रकार का हठ होता है, वह दूर हो जाता है, पर देख रही हूँ, आप तो इतने हठी हैं कि अपने विचार से जौ भर भी पीछे नहीं हटेंगे। पर, मैं आपको कहे देती हूँ, समय आवेगा और आपको अपने विचार छोड़ने को वाध्य होना ही पड़ेगा। मुझे तो विश्वास है, चाहे आप जो कुछ कहें, इन लोगों का सुधार नहीं हो सकता—नहीं हो सकता! कहें, तो मैं कागज पर लिख दूँ।"

दोनों में विचार का इतना संघर्ष हो रहा था कि यदि वहां राधा न आ जाती तो अभी दोनों चुप होनेवाले न थे। राधा रसोई तैयार होने की बात कहकर चल पड़ी। मणि उठकर खड़ी हो गई। नवीन भी भीतर जाने का उपक्रम करने लगा।

—उनचालीस—

मणि और नवीन—दोनों पति-पत्नी में—कलह का सूत्रपात हो गया। दोनों अपने सिद्धांत पर अटल-अचल थे। कोई एक दूसरे से जौ-भर भी कम न था।

मणि के हृदय में आश्रम के रहने वाले पुरुष-स्त्रियों से प्रति, विशेषतः स्त्रियों के प्रति, जिनके बीच उसे रहने का अवसर मिला था, जैसी धारणा उत्पन्न हुई और आए दिन वहाँ की दूषित मनोवृत्तियों से उसका जैसा विकास होता गया, मणि अपने विचार को बदलने में बिलकुल असमर्थ हो रही, कहना तो यह चाहिए कि, उसकी घृणा बढ़ चली। नवीन इन बातों को नहीं जानता था, सो बात नहीं थी। वह जानता था अवश्य, साथ ही यह भी समझता था कि, मणि सुधार होने की प्रतीक्षा में ठहर

नहीं सकती। उसकी घृणा का मैं प्रतिकार नहीं कर सकता। और कदाचित् नवीन समझ रहा था, मणि की आलोचना से खिन्न होकर वह कुछ करने में समर्थ नहीं हो रहा है। मणि से उसे बल पाने की आशा थी पर उस आशा के बदले नवीन को मिली निराशा, निस्सीम चिंता और मानसिक संताप। फलतः दोनों में ऐसे जबर्दस्त मतभेद का फल यह हुआ कि दाम्पत्य प्रेम एक दूसरे के लिए अक्षुण्ण न रह सका। दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र होने को छटपटा-से उठे।

इन दोनों में कौन अधिक दोषी था—यह बताना कठिन है।

नवीन इन दिनों आश्रम की देखरेख में अधिक व्यस्त रहता। उसे मणि की आलोचना से इतना तो अवश्य लाभ हुआ कि वह अपनी भूल को समझ गया और सुधार के कामों में अधिक समय देने लगा।

वह प्रातःकाल खूब तड़के उठता, नित्यकर्म के लिए भागी-रथी की ओर चला जाता, उधर से निश्चिंत हो लौट आने पर बीमारियों में से एक-एक को देखता, उनसे बातें करता, उनके स्वास्थ्य और सुविधाओं के संबंध में जिज्ञासा करता। फिर वह वहाँ से लौट कर महिला-आश्रम में जाता, उनसे भी से मिलकर दो बातें करता, बालिकाओं और शिशुओं से हिलमिल कर, हँस-हँस कर, किसी को पुचकार कर, किसी को दुलार कर, किसी को गोद में लेकर, किसी को चूम कर प्रसन्न करता। छोटे-छोटे बच्चों से नवीन को अकाट्य स्नेह था। वात्सल्य रस से उसका

कोमल और भाव-प्रवण हृदय स्निग्ध था। उसे उन बच्चों से इतना स्नेह था कि, उन्हें अपने हाथों से खिलाये बिना उसका हृदय शांत ही नहीं रहता। जिन छोटे सुकुमार बच्चों को देख कर विलास-प्रिय मणि के हृदय में घृणा का संचार होता, उन्हीं बच्चों के प्रति नवीन में इतना स्नेह उमड़ पड़ता कि वह अपने को जब्त नहीं रख सकता। घंटों उसे उन लोगों के सहवास में ही बीत जाते, वह अपना खाना-पीना प्रायः भूल-सा जाता। इस विभाग पर नवीन के व्यक्तिगत चरित्र का सुंदर प्रभाव पड़ा था। उसे इन बच्चों पर नाज था और उसी में अपने सारे परिश्रम को वह सार्थक समझा करता।

दोपहर को, खाने पीने से निश्चिंत होकर, वह कार्य्यालय जा कर वहाँ की व्यवस्था में रत रहता। फिर वह महिला विद्यापीठ में जाकर उनके पठन-पाठन का निरीक्षण करता और अवसर पाकर वह स्वयं पढ़ाने पर नियुक्त हो जाता। उसकी पढ़ाई और सद्व्यवहार से महिलाओं में एक बार आनंद का उत्स प्रवाहित हो जाता। नवीन को न जाने क्यों इस काम में इतनी प्रसन्नता होती कि वह समझ नहीं सकता—मणि का आक्षेप क्यों इतना उग्र है। महिला और बालिकाओं को हस्तकर्म सिखाने की भी सुंदर व्यवस्था थी। कितनी महिलाएं कपड़े बुनतीं, सिलाई का काम करतीं, तरह-तरह के कसीदे काढ़तीं, गंजी और मौजे बुनतीं। बालिकाएँ सूत कातती, पिन बनातीं और बेल-बूटे का काम करतीं। नवीन उनके कामों का निरीक्षण

करता, उन्हें दाद देता उनके कामों पर उन्हें अधिक-अधिक प्रोत्साहन देता।

संध्या के समय वह थकेमाँदे अपने घर आता। कुछ देर तक आराम करने के बाद फिर भागीरथी-तट की ओर वायु-सेवनार्थ निकल जाता। वहाँ स्नानक्रियादि संपन्न करता, और वहाँ से लौट कर सम्मिलित उपासना में सहयोग देता। रात्रि के प्रथम पहर में गीता-पाठ होता, हॉल में बालिकाएँ, महिलाएँ और रोगियों में स्वस्थ हुए व्यक्ति सम्मिलित होते। नवीन उच्चासन पर गीता-पाठ के साथ-साथ सुंदर और सुविस्तृत व्याख्या करता। कभी-कभी नैतिक कर्त्तव्य पर उसकी सुललित वक्तृता होती।

नवीन नैतिक बल को श्रेष्ठ बल समझता। उसकी समझ में नैतिक सुधार किए बिना और किसी तरह का सुधार संभव नहीं।

नवीन इन कामों में दिन से लेकर रात नौ बजे तक इतना व्यस्त रहता कि दूसरे कामों के लिए उसे अवकाश ही नहीं मिलता। रात के दस बजे वह भोजन कर सो जाता और कुछ ही क्षण के बाद उसे गहरी नींद हो आती।

मणि ने इन दिनों अध्यापन का काम एक तरह से छोड़ ही दिया था। वह अब महिला-भवन की ओर बहुत ही कम जाती और जब कभी जाती भी तो वहां से एक प्रकार का घृणा-सूचक व्यंग लेकर ही वापस आती। वह जिस समय पाती, बाहर निकल जाती, कब जाती और क्या करने जाती—नवीन इसे नहीं जानता और न जानने की आवश्यकता ही समझता। उसके

विचार में—सभी स्वतंत्र हैं और स्वतंत्रता का उपभोग करना सभी के लिए एक-सा अपेक्षित है।

नवीन और मणि—दोनों को एक-दूसरे के साथ बातें करने का बहुत ही कम अवसर मिलता और जब कभी मिलता भी तो वे उसका या तो उपयोग ही नहीं करना चाहते या उसकी उपेक्षा ही कर दिया करते।

मणि और नवीन के बीच एक ऐसी दीवाल खड़ी हो गई कि, दोनों के लिए उसका मिटाना असंभव-सा हो उठा। मन-ही-मन दोनों चिंतित हुए—व्यथित हुए सही, पर किसी से इतना साहस न हुआ कि, आपस में समझौता कर लिया जाय।

सहसा एक दिन मणि बड़ी चंचल हो उठी। संभवतः उसका कोई निजी पत्र कहीं खो गया था। वह बड़ी देर तक व्यस्त होकर खोजती रही। आलमारी के एक-एक पुस्तक के पन्ने उल्टा गई, टेबुल के दराज और बक्स को ढूंढ़ डाला, पर उसे वह पत्र न मिल सका। आखिर वह गया कहाँ ?—वह थककर बैठ गई और सोचने लगी।

उसके कमरे में बहुत कम आदमी का प्रवेश था। राधा और नवीन को छोड़कर दूसरा जा ही नहीं सकता था। उस दिन राधा पर भी डाँट पड़ी। पर, फल सिवा असंतोष के और न मिला। राधा रोती-रोती रसोई घर में गई और वहाँ कब तक रोती रही—कौन कह सकेगा।

मणि अनुमान कर रही थी—पत्र अवश्य नवीन के हाथ लग

गया। पर उन्हें दूसरे का प्राइवेट लेटर पढ़ने का अधिकार ही क्या ? क्या यह उनकी ज्यादती नहीं ? मैं क्या दूसरे के साथ पत्र-व्यवहार तक नहीं कर सकती ? इतनी मैं परतंत्र हूं ? वह गुस्से में सोच रही थी। वह ज्यों-ज्यों सोचती, त्यों-त्यों उसका गुस्सा बढ़ता ही जाता। वह एक तरह से इतनी उत्तेजित हो गई कि नवीन के कमरे में आ धमकी और कर्कश स्वर में बोल उठी—"आपने मेरा पत्र लिया है ?"

"नहीं तो !"—नवीन चौंक कर बोल उठा।

"नहीं तो ! कहने से काम न चलेगा"—मणि रुखाई से बोल उठी—"आखिर वह पत्र गया कहाँ ? रधिया कहती कि, मैंने नहीं देखा है और आप भी फर्माते हैं, कि 'नहीं तो !' आखिर वह गया कहाँ ? क्या उसे आज पंख तो नहीं लग गया ? वह उड़कर तो नहीं चला गया ?"

"संभव है, उसे आज पंख ही लग गया होगा, मणि !" नवीन जरा व्यंग के स्वर में बोल उठा—"पंख लगे बगैर आखिर वह उड़ सकता कैसे ? पर खेद है, मैंने उसे उड़ते समय देखा नहीं, नहीं तो कह देता, वह किधर उड़ भागा।"

नवीन का व्यंग आग में घी का काम कर गया। मणि उस व्यंग को समझ न सकी। उसने समझा—उसके छिपाने में अवश्य नवीन का हाथ है। इसलिए वह तैश में आकर फट पड़ी—"क्या आप मुझे इतना मूर्ख समझ रहे हैं कि मैं आपकी बात समझ नहीं सकती ? आज मुझे मालूम हुआ कि पत्र को पंख भी

लगा करते हैं ! इसका मानी तो यह है कि आप उसे देना नहीं चाहते। पर, आप ही कहें, यह कहां की भद्रता है ? भद्र पुरुष बनने तो जा रहे हैं, पर अफसोस है, अभी आप उससे कोसों दूर हैं। खैर, मुझे इससे कोई मतलब नहीं—खुलासा तो यह है कि आप उसे दीजिएगा वा नहीं—"स्पष्ट कहिए !"

नवीन अभी तक उसी मूड में था, बोला—"स्पष्ट ही तो है मणि, मैं अस्पष्ट रखना भी नहीं चाहता। क्या तुम इसे अस्पष्ट समझ रही हो ?······पर, यह तो कहो मणि, उस पत्र से इतनी ममता क्यों ? आह, यदि ऐसी ममता मुझ गरीब के लिए···· !"

मणि अपने आपको खोकर बोल उठी—"देखती हूं, अब आप अपमान करने पर भी तुल पड़े। मैं आपकी जली-कटी बातें सह नहीं सकती। आपने मेरे साथ विवाह करके जो धारणा पाल रखी है, आज मैं कहे देती हूँ, वह निर्मूल है ! आप यह न समझ लें कि मैं आपके पाँव की जूती बन कर रहूंगी। वह जमाना लद गया ! ····ममता की बात कैसी ? किसी पर ममता हो क्यों ? क्या कभी किसी ने मेरे दर्द का अनुभव किया है ? कभी यह भी पूछा है कि, तुम्हारी आवश्यकता क्या है ? यहाँ तो चिंता है तो उनकी जो देवी हैं—शक्ति हैं !··· मुझे उनसे कोई बहस नहीं, मैं तो पत्र चाहती हूँ ! क्या आप उसे छिपा कर चाहते यह हैं कि··········।"

नवीन से अब और सहा न गया। उसने मणि से जो कुछ हँसी में कहा था, उसके लिए वह लज्जित हो उठा। उसने एक

वार गहरी आह ली और व्यथित होकर बोल उठा—

"मणि, मैं तुम से यह आशा नहीं करता था। तुम एक पढ़ी-लिखी संभ्रांत महिला होकर इतनी रोष में आकर इस तरह की बातें करोगी—इसका मुझे स्वप्न में भी विश्वास न था। मैंने तुम्हारे पत्र को पंख लगने की बात केवल हँसी में कही। क्या पति-पत्नी के लिए इतनी भी स्वतंत्रता नहीं कि इस तरह की बातों से मन बहलाया जाय।··· खैर, उसके लिए मैं स्वयं लज्जित हूँ। मैंने कभी ऐसी चेष्टा नहीं की है, जिससे तुम्हारा अपमान हो। जली-कटी बोलने का मैं आदी नहीं और न मैं इसे प्रश्रय देना ही चाहता हूं। आज तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें सुन कर मुझे आंतरिक खेद हो रहा है। मुझे और किसी तरह की धारणा नहीं है। मैं जैसा अपने को स्वतंत्र रखना चाहता हूँ, उसी तरह दूसरों के लिए भी उपयुक्त समझता हूं। इसे मैंने तुमसे न जाने कितनो वार कहा है—कहा ही नहीं केवल, ऐसा अवसर भी बराबर दिया है। मैंने अवश्य तुम्हारे दुख-दर्द का अनुभव किया है वा नहीं, इसे शब्दों के द्वारा तुमसे न जतला सका—इतनी भर भूल अवश्य मुझ से हुई है।"

नवीन बोल कर चुप हो गया। अपनी बात पर वह मन-ही-मन विचार करने लगा। वह सोच रहा था—कहीं मुझ से कोई ऐसी अनर्गल बात तो नहीं निकल रही है? उसे स्मरण हुआ—वह पत्र की सफाई में कुछ कह दे। और, यही कहने को शेष रह गया था। वह बोल उठा—

"जिस पत्र को लेकर तुम मुझे यहां तक आज सुना गई, मणि उसके संबंध में, भगवान साक्षी है, मैं मुतलक नहीं जानता। अब तक मैंने दूसरों के पत्र पढ़ना दूषित मनोवृत्ति का परिचायक समझा है। मणि, इसे मैं हृदय खोल कर कह सकता हूँ। छिपाने की बात तो और भी असंभव है मेरे लिए। क्या तुमने मुझे इतना नीच समझ लिया कि मैं उसे लुक-छिप कर पढ़ूँ और उसे तुमसे छिपा रखूं? मैं तो यह भी नहीं कह सकता हूँ, वह पत्र किसने लिखा है; तुमने लिखा है अथवा तुम्हारे पास किसी ने लिख भेजा है। इतने पर भी यदि तुम मुझ पर विश्वास न कर सको तो मेरा दुर्भाग्य ही समझो। इसके विषय में और अपनी सफाई ही मैं क्या दे सकता हूँ।"

नवीन बोल कर चुप हो गया। उसके हृदय में मणि के कर्णकटु वचनों से जो आघात लग चुका था, उस पर वह अपनी उदार भावनाओं से मरहम-पट्टी लगा रहा था; पर, मणि ने अब तक नवीन का वह अंतस्तल पहचान न पाया। उसने समझा—ऐसी बातें करने का इनका सरल स्वभाव-सा पड़ गया है। बाहर से चाहे वे जितनी साधुता का परिचय क्यों न दें, पर अंतस्तल में सदा से विष ही रहा है और मीठे विष का प्रयोग ये इस रूप में मुझ पर कर रहे हैं।

नवीन की बातों से क्षण भर के लिए उसका रोष ठंढा अवश्य हुआ, पर पत्र की बात पर उसे विश्वास ही न हुआ। वह कुछ क्षण तक कुछ सोचती रही, फिर नवीन से पूछ बैठी—"क्या

मैं जान सकती हूं कि, जब कि आपने भी उस पत्र को नहीं देखा और राधा ने भी उसे नहीं उठाया और आप दोनों को छोड़ कर कोई दूसरा आदमी मेरे कमरे में आता-जाता भी नहीं तो आखिर वह हुआ क्या ?"

"जब ऐसी बात है तो संभव है, उसे तुमने ही कहीं रख छोड़ा होगा और उसकी अभी याद ही न आती होगी ? क्या तुमने उसे अच्छी तरह ढूँढ़ लिया है ?"

"नहीं तो मैं यों ही आप पर दोष मढ़ने आई हूं !"—मणि ने व्यंग के रूप में कहा।

"मैं दोष मढ़ने की बात नहीं कहता ! इसमें दोष की बात क्या ? यह तो पूछना उचित ही था।"

मणि निरुत्तर हो गई, पर वह अपने को स्थिर न कर सकी। उसके हृदय में विद्रोहाग्नि भड़क चुकी थी और वह इतनी कमजोर पड़ चुकी थी कि उसे वह किसी तरह शांत न कर सकी। वह बड़ी देर तक शांत रही जैसे ज्वालामुखी फट पड़ने के पहलें शांत-सी दीख पड़ती है। उसने अपने को सब तरह से तैयार पाकर नवीन से कहा—

"खैर, मैं उन बातों को लेकर आपको विरक्त नहीं किया चाहती। पर, मैं यहाँ के व्यवहारों से काफी संतप्त हो उठी हूँ। देखती हूं, यहाँ रहने पर मैं पागल हो जाऊंगी। यहाँ का वातावरण, खेद है, मेरे अनुकूल नहीं दीखता। इसलिए, यदि आप बुरा न मानें तो मुझे इजाजत दें, मैं अपने घर में शांति से जाकर रहूं। मैं यह

भी समझती हूं, जब तक हिंदू-मैरेज ऐक्ट में कुछ सुधार नहीं होता, तब तक................!"

"नहीं, मणि ! उसमें चाहे सुधार न हो, पर मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूं। मैं तुम्हारी स्वतंत्रता का अपहरण करके तुम्हें दुखी नहीं करना चाहता। मुझे अपनी कमजोरियों का आप पता है। खेद है कि, तुम्हारा पति होकर मैं तुम्हें प्रसन्न नहीं कर सका। तुम्हारा दायित्व मेरे सिर है—इसे मैं अस्वीकार नहीं कर सकता। मुझे खेद नहीं, प्रसन्नता ही होगी कि, तुम मेरे साथ रहकर पागल न बनो। मेरे आश्रय में रहकर यदि तुम्हारा पतन हो जाय तो मैं इससे बढ़कर, दूसरा पाप नहीं समझता। तुम स्वतंत्र हो—मैं सर्वांतःकरण से तुम्हें मुक्त करता हूं !"

नवीन की आकृति पर इतनी देर तक जो एक प्रकार की उदासीनता आ गई थी, वह आप-से-आप दूर हो गई। क्षण भर के लिए उसकी आकृति पर एक ज्योत्स्ना की रेखा खिंच आई। मणि वहाँ से उठकर अपने कमरे की ओर चल पड़ी। नवीन बिछावन से उठकर बरंडे पर शांत भाव से टहलने लगा।

———

—चालीस—

मणि ने उस दिन स्नान तक नहीं किया—खाया तक नहीं। वह नवीन के कमरे से निकलकर अपने कमरे में आकर अपने सामान को ठीक करने लगी। उससे जितना जल्दी बना, सभी सामानों को बाँधा, अपने बक्सों में ताले लगाए, आलमारी से अपनी पढ़ने की पुस्तकों को निकाल कर बक्स में बंद किया और शांत होकर, चटाई पर यों ही लेट रही। वह प्रतीक्षा में थी, कब उसके घर से मोटर आएगी, कब सोफर उसे आकर सलाम करेगा!

ठीक दो बजे मोटर आकर दरवाजे पर लगी, सोफर ऊपर गया। मणि तब तक सँभल कर उठ बैठी थी। सोफर को अपने पास आया हुआ देखकर वह बोल उठी—"एक-एक कर सामान लादो!"

सोफर ने आश्रम के नौकर के सहारे जितने सामान अँट सके, मोटर पर रखे, उसके बाद वह मणि से आकर बोला—"अब अधिक जगह नहीं है। क्या अभी आप भी चलेंगी ?"

"हाँ !"

"तो यह बाकी सामान ?"

"पीछे ले जाना !"

सोफर बाहर आया। मणि उठ बैठी, शायद वह कुछ सोच रही थी। उसके बाद, उन्हीं कपड़ों में, वह चल पड़ने को उठ खड़ी हुई। वह कमरे से बाहर हुई। पर, बाहर आकर वह सीढ़ियों की ओर न जाकर चली गई नवीन के कमरे में। नवीन तैयार था महिला विद्यापीठ की ओर चलने को। उसने हठात् मणि को आए हुए देख कर कहा—"कुछ कहा चाहती हो, मणि !"

"नहीं !"—मणि ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"क्या तुम जा रही हो ?"

"हाँ !"—फिर भी वही मणि का छोटा-सा उत्तर।

नवीन क्षण भर मौन रहने के बाद बोल उठा—"माफ करना मणि ! मैं अपने पतित्व की रक्षा, खेद है, नहीं कर सका।"

मणि ने नवीन की बातें सुनी वा नहीं, नहीं कहा जा सकता। वह वहां से बाहर की ओर चल पड़ी थी। यदि वह एक बार नवीन की आकृति की ओर देख सकती तो संभवतः उसका सारा रोष, सारे अभिमान, उसकी सारी व्यर्थताएँ आप-से-आप दूर हो जातीं। सचमुच नवीन इतना उदास, इतना चिंतित, इतना शोका-

कुल और इतना मर्माहत हो चुका था कि, मणि से वह अधिक कुछ, इच्छा रहते हुए भी, नहीं कह सका। वह इतना अस्थिर हो गया था कि सीढ़ियों की राह बाहर होने को जैसे वह लपक पड़ा। पर, मोटर तब तक दूर निकल गई थी। नवीन वहां से वापस लौट कर बिछावन पर लेट गया। उस दिन वह बाहर नहीं निकल सका।

संध्या के समय वह स्वस्थ होकर, जैसे कुछ हुआ ही न हो, भागीरथी-तट की ओर, नियमित रूप से, चल पड़ा। वह शांत होकर, ठीक समय पर लौट कर उपासना-मंदिर में आया और नियमित रूप से, गीता-पाठ, व्याख्यान और उपासना आदि करता रहा।

दूसरे दिन से नवीन का कार्य पूर्ववत् संपन्न होने लगा। किसी ने अनुभव नहीं किया कि नवीन के हृदय में मणि के चले जाने पर किसी तरह का अंतर उपस्थित हुआ है। जैसी तल्लीनता पहले थी, वैसी अब भी थी। न किसी तरह की उदासीनता, न किसी तरह का मोह। वही हँसमुख प्रकृति, वही विनोदमय वार्त्तालाप!

इतना होते हुए भी, नवीन के हृदय में एक टीस उठती, उस समय वह वेदना से विह्वल हो उठता। उसे रह-रह कर होता था—मानव-जीवन का रहस्य कितना विचित्र, कितना सीमा-हीन और कितना जटिल है! मणि को वह आज से नहीं, वर्षों से जानता आ रहा था। उसने मणि का वह रूप भी देखा था जब वह उसके घर स्वतंत्रतापूर्वक आता-जाता और उससे विनोद की बातें करता

और मणि उन बातों को सुन-सुन कर आनंद से लोट-पोट हो जाती। मणि उस रूप में उसके समक्ष उपस्थित होती जिस दिन नवीन ने राधा के लिए उससे सहायता प्राप्त की थी। उस दिन मणि की सदाशयता कितनी उज्वल थी—कितनी शाश्वत थी ! नवीन ने मणि को विभिन्न रूपों में देखा, पर उसने उसका वह भी रूप देखा, जब वह पत्र के लिए कर्कश-कठोर तक बन गई। नवीन अवश्य इस रूप में उसे देखकर आप ही आप बोल उठा—यह मानवता पर पशुता की विजय है और कदाचित् संसार का यही धर्म है कि पशुता की विजय मानवता पर सदा से होती आई है।

तो क्या मणि का यहां तक पतन हो गया ?

नवीन अब दूसरे दृष्टिकोण पर विचार करने लगता—कौन इस विभेदक रेखा को अभी तक प्रस्फुटित करने में समर्थ हो सका है ? मैं या वह ? वह या मैं ? या दोनों की सम्मिलित शक्तियाँ ?

नवीन एक-एक पर, अलग-अलग आलोचना करता।

नवीन को बड़ा वैषम्य दीख पड़ा। विलासिता के हाथों पली-पोसी जाकर मणि ने अपना यौवन पाया और यौवन की उल्लास-मयी लालसाएँ। उसने मेरी ओर से दृष्टि फेर कर गले लगाया एक युवक को—धनी और विषयोन्मत्त किशोर को, कदाचित् वहां से मन उचटा और मरणासन्न माता की अंतिम आकांक्षा के सामने मणि को अवनत होना पड़ा ! उसने अपनाया—दरिद्र को, दुर्बल

को, विषय-वासना से विरक्त, साधना में तल्लीन, समाज-तिरस्कृत, कदाचित् नारकीय मानवात्माओं की सेवा में रत ऐसे युवक को जिसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं, जिसका न कोई पूछने वाला और न कोई आसरा !! उफ् ! कितना बड़ा अंतर ! महदंतरम् ! फिर मणि को धन्यवाद है, इतने दिनों तक, एक नहीं—दो नहीं, छः छः महीनों तक मेरा साथ तो देती रही ! कैसे उसका दोष दिया जाय ? आश्रम में उसने देखा—अनुभव किया ऐसी बातों का जो अनीतिमूलक थीं, गर्हित थीं, दूषित थीं। सावधान किया उसने मुझे; पर, मैं उसकी सम्मति-रक्षा न कर सका। फिर भी उसने मुझे अवसर दिया; पर, यहीं आकर दोनों को अपनी अपनी भूल मालूम पड़ी। मतभेद हुआ, गृह-कलह का सूत्रपात हुआ—हाँ, ठीक उसी दिन गृहकलह का सूत्रपात हुआ। यदि मैं संभालना चाहता तो अवश्य संभाल लेता, पर मैं अपनी शक्ति से लाचार था; क्योंकि मैं कमजोर था, मुझ में कमजोरी थी।

नवीन के मन में मणि को प्रति जो वितृष्णा के भाव थे वह आप-से-आप दूर हो गए। मणि को उसने उज्ज्वल पाया, सुंदर पाया। उसके हृदय में मणि के प्रति और कुछ कालिमा न रह गई। उसका हृदय शांत हुआ, स्वस्थ हुआ। पर, नवीन अपने आप को उतना सबल नहीं बना सका जिससे उसमें किसी तरह का संशय शेष न रह जाय।

नवीन जबतक अपने दैनिक कामों में सन्नद्ध रहता तबतक वह स्वस्थ रहता, पर जैसे ही रात को वह अकेला हो जाता, उस

समय उसकी मानसिक भावनाएँ प्रबल हो उठतीं। वह इन भावनाओं पर विजय प्राप्त न कर सका, दिन-दिन उसका हृदय बैठता गया, उसमें अभिनव स्फूर्ति फिर से दीख न पड़ी।

वह नियमित रूप से कार्य-संचालन करते हुए भी 'वह' नहीं रह गया था जो पहले था।

पर, समय की एक लंबी रेखा दीवार की तरह आकर नवीन और मणि को सर्वदा के लिये अलग करने में समर्थ हुई। अब तो चौबीसों घंटे उसके सामने रहने लगा—आश्रम का विशाल व्यवस्थापकत्व। मणि स्वप्न की तरह सदा के लिए नवीन के मस्तिष्क-पट से विलीन हो गई।

कई वर्ष निकल गए, पर नवीन को मालूम न हुआ कि किस तरह ये वर्ष निकले। उसने कभी इस पर विचार नहीं किया और न इसकी आवश्यकता ही कभी अनुभव की।

राधा तब से लेकर अबतक नवीन के दुख-सुख में साथ रही। वह भोजन बनाकर नवीन को खिलाती, उसके घर की सफाई और सजावट में लगी रहती। उसके लिए आवश्यक वस्तुओं को सहेज कर रखती। इतना होते हुए भी वह बालिकाओं के अध्यापन में तन-मन से योग देती। बच्चों को खेलाती और महिलाओं के बीच बंधुत्व-स्थापन कर उनके कामों में सहायता पहुँचाती। यही उसका कार्यक्रम था—यही उसके जीवन का ध्येय था।

पर, मनुष्य कब भूलें कर बैठता है, कोई नहीं कह सकता। राधा नवीन के सहवास में बहुत दिनों से रहती आई। नवीन ने

राधा के हृदय को पहचाना और राधा ने भी नवीन के हृदय को। उन दोनों के हृदयों में कभी किसी तरह का विकार उत्पन्न न हुआ। दोनों में जो एक तरह का अपनापन था, वह दोनों ने अक्षुण्ण रखने की भरसक चेष्टा की। पर हाय री मानव प्रकृति की दुर्बलताएँ! मनुष्य भ्रांत प्राणी है और रहेगा। वह कभी परिपूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। वह अपूर्ण है और बराबर रहेगा। उसकी दुर्बलताएँ उसके साथ रहेंगी, कदाचित् इसी में उसका अस्तित्व है—यही उसकी विभूति है।

राधा से ऐसी भूल होगी—इसकी कभी आशा तो क्या, संभावना तक न थी। पर, उससे भूल हुई, केवल एक क्षण के लिए—केवल पल भर के लिए। मनुष्य में राक्षस, सुना है, रहता आया है, वह कब प्रबल हो उठता है, उसके लिए न तो कोई निश्चित समय है और न निश्चित घड़ी। पर उसका आक्रमण हो जाता है। राधा पर भी उसका आक्रमण हुआ और इतने चुपके कि स्वयं राधा को भी पता नहीं चला। राधा क्या करती—विवश थी! असहाय थी!!

राधा रात्रि का भोजन नवीन को कराकर महिला-भवन में जाकर सो रहती। वहीं उसके रहने का कमरा था। वहीं वह अपना अध्ययन करती, सोती, बैठती। पर कई दिनों से, राधा रात को नवीन को भोजन करा चुकने के बाद उससे बातें करने को रुक जाती। नवीन के लिए इसमें संदेह करने की गुंजाइश नहीं थी। कारण था—नवीन ने उसके हृदय को पहचान लिया

था और राधा अधिकांश समय अपनी जिज्ञासा की निवृत्ति में ही लगाती। फिर नवीन के लिए संदेह का कारण ही क्या हो सकता था ?

एक दिन वह रात का भोजन लेकर उसके कमरे में आई। बाहर मूसलधार पानी पड़ रहा था, खिड़कियों की राह ठंढी-ठंढी हवा आ रही थी, बड़ा ही सुखद समय था वह। नवीन ने उठकर भोजन किया, वह वहीं बैठकर बातें करती रही। आज राधा में न जाने कहां का उन्माद आ गया। उसकी बातों में साम्य न था। वह कभी अधूरी बातें करती, कभी हँस देती, कभी विचित्र भावभंगी का प्रदर्शन करती, पर नवीन ने इन सब बातों पर लक्ष्य न किया। करता ही कैसे ? उसने भोजन शेष किया और बिछावन पर आ बैठा, राधा उसके पास ही कुर्सी पर आकर बैठ गई।

नवीन इन दिनों काम के बोझ से इतना थक जाता था कि रात को अधिक देर तक वह जग नहीं सकता। आज राधा उसके सामने बैठ गई थी, इसलिए नवीन ने राधा से आश्रम का प्रसंग छेड़ दिया। इससे उसके दोनों काम सधते थे—एक तो यह कि, वह सजग रह सके और दूसरा यह कि, वृष्टि थम जाने तक राधा को अपनी बातों में भुलाए रहे। खिड़कियों की राह ठंढी हवा जोरों से भीतर आ रही थी, उसके साथ जल के नन्हें-नन्हें छींटे भी भीतर आकर नवीन को तर कर रहे थे। इसलिए नवीन ने राधा से कहा—"सामनेवाली दोनों खिड़कियाँ लगा दो, राधा! और बगल-वाली दोनों खुली ही रहने दो।" राधा ने उसकी आज्ञा का

अनुसरण किया। राधा निश्चिंत आकर कुर्सी पर बैठते हुए बोल उठी—"क्या मैं पाँव दबा दूं आपके, नवीन बाबू ! बहुत थके-से जान पड़ते हैं।"

कुर्सी आगे की ओर सरका कर राधा बहुत पास आ गई, और उसने अपने हाथों को उसके पाँव पर रखा। नवीन ने पाँव खींचते हुए कहा—"यह क्या ? यह क्या, राधा ! ऐसा न करो ! मैं तुम से पाँव दबवाऊँ ?"

"तो, इसमें हर्ज ही क्या है ? क्या मैं सेवा का अधिकार नहीं पा सकती ?"

"मैं स्वयंसेवक हूं, राधा ! मुझे पाँव दबवाने की आदत नहीं; तुम स्वयं जानती हो। फिर आज यह नई बात कैसी ?"

नवीन स्वाभाविक रूप में बोल उठा। वह बाहर-भीतर से निर्मल था, पवित्र था।

राधा अप्रतिभ होकर चुप हो गई। उसके हृदय में जो एक प्रकार का उद्वेलन हो रहा था, उसने उसे जबर्दस्ती वश में करना चाहा। उसका हृदय धड़क रहा था, उसके ललाट में पसीने की बूंदें झलक रही थीं।

पर, नवीन ने उसकी ओर ध्यान तक न दिया। उसने आश्रम का प्रसंग उठाया अवश्य, पर जमा नहीं। उधर वृष्टि इतनी सघन हो रही थी कि, राधा से बाहर जाना एक प्रकार से असंभव ही था। नवीन ने इसका अनुभव किया और बोल उठा—"क्यों नहीं तुम बगल वाले कमरे में सो रहो, राधा ! देखता हूं, आज

पानी थमेगा नहीं। कब तक तुम इंतजार में पड़ी रहोगी ?"

राधा कुछ क्षण तक उसकी ओर देखती रही, फिर वह उदास होकर दूसरे कमरे में जा चटाई बिछाकर सो गई।

नवीन को क्या पता कि राधा की सजल आँखों में कितनी निराशा थी, कितना विषाद था !

पर राधा स्थिर न रह सकी। आज वह वर्षों की लगी आकांक्षा पूर्ण करने में तुली थी। ऐसे अवसर पर नींद कहाँ से आती ? बहुत मुश्किल से, करवटें बदलते, सासें लेते हुए उसने कुछ समय काटा, पर अभी तो आधी से अधिक रात खत्म होने को बाकी ही पड़ी थी ! ये लंबी घड़ियाँ कटेंगी कैसे ? हाय री वासने !

राधा अपने विचार में पागल हो उठी। वह बेचैन थी—विह्वल थी। उसने एकबार अपने दिल को कड़ा किया, वह उठ बैठी, देखा—उन्मुक्त वातायन से देखा—रोशनी जल रही है, पर नवीन अचेत पड़ा हुआ है। कैसा सुंदर सौम्य मुखमंडल !

वह खड़ी हुई, बाहर आई, उसने आकाश की ओर देखा—बादल बरस रहा है, रह-रह कर बिजली कड़क रही है, मादक समीर बहकर उसमें उन्माद भर रहा है। वह और ठहर न सकी। दरवाजा खुला ही था, वह नवीन के कमरे में आई, देखा—नवीन के बगल में सोने का स्थान रिक्त है। क्या वह लिपट कर सो नहीं सकती ?

उसने बिजली की स्विच दबा दी। कमरा अंधकार से परिपूर्ण हो उठा, वह आहिस्ते से नवीन के बगल में सो गई।

नवीन को क्या पता कि कौन कहां है ? वह निश्चल शांत भाव से शीतल वायु का स्पर्श पाकर अचेत पड़ा था; तिस पर दिन भर का थका-मांदा ।

कुछ रात बीती, उसने अँगड़ाइयाँ लीं, सजग हुआ, उसने अनुभव किया—वह किसी से आबद्ध है। उस पर जैसे बिजली कौंध गई, वह चमक उठा ! उसने अपने को बाहु-पाश से छुड़ाया, वह दौड़ पड़ा स्विच दबाने को, उसने उज्ज्वल प्रकाश में देखा—वह राधा थी ! राधा !!

वह चीख उठा—"राधा ? उफ़्, पतन ! तुम..........तुम हो विश्वासघातिनी !"

राधा की तंद्रा मिटी, उसने आँख खोली, बोध हुआ—कानों में कुछ कर्कश शब्द सुन पड़े हैं। उसने सामने देखा—नवीन मानो काल का रूप धारण किए खड़ा है ।

राधा को काटो तो खून नहीं। वह झपट पड़ी, उसके पैरों से लिपटती हुई वह बोल उठी—"वासना से मैं अंधी थी ! क्षमा करें—क्षमा करें, नवीन बाबू। मैं नहीं कह सकती—मैं होश में थी वा नहीं।.......मैं स्वप्न देख रही थी.......आनंद का अनुभव कर रही थी।.......नारी-हृदय.......।

नवीन मानो आसमान से गिरा ! उसने अपने पाँव छुड़ा लिए। राधा हाथ बांध कर खड़ी थी—मानो साकार करुणा क्षमा की भिक्षा मांग रही हो।

पर, नवीन को दया न आई, रोष उत्पन्न हुआ। वह गरज कर

बोल उठा—"मैं नहीं जानता था कि मैं साँप को दूध पिला कर पाल रहा हूँ। कहां गया तुम्हारा ध्यान? कहां गयी तुम्हारी श्रद्धा? बोल, पापिनी!"

राधा की आँखों से करुणा का उत्स प्रवाहित हो चला। वह बोल न सकी। पर, उसकी मूक भाषा बतला रही थी—वह अपने आप में न थी। फिर उसका अपराध?

नवीन की आँखों के सामने मणि की करुण मूर्त्ति प्रत्यक्ष दीख पड़ी। उसकी स्मृति सजग हो आई, साथ ही उसे स्मरण हुआ—वह क्या चाहती थी जो उसे उपलब्ध न हो सका? मणि ने ठीक कहा था—एक दिन उसकी (नवीन की) आँखें खुलेंगी।

नवीन ने अनुभव किया—राधा क्षम्य है। मैं सुधारना चाहता था दूसरे को; पर, सुधार क्या इतना सरल कर्म है?

नवीन चुप था, राधा चुप थी। नवीन को साहस नहीं होता था कि एक बार वह गर्दन उठा कर राधा की ओर देख सके। राधा तो लज्जा से आप ही गड़ी जा रही थी।

नवीन का रोष आप-से-आप जाता रहा, उसे राधा पर दया हो आई। नवीन समझ गया था—वासना पर विजय पाना सहज सरल व्यापार नहीं। वासना रहेगी ही, उसका भी एक अस्तित्व है। उस पर विजय पाना क्या इस हाड़-मांस के शरीर से कभी संभव है? वह बोल उठा—"क्यों, राधा! आखिर बता सकती हो, तुमने ऐसा गर्हित कार्य क्यों किया? क्या नारी-हृदय इतना वासनापूर्ण होता है?"

इस बार राधा का रोष भड़का। वह खड़ी थी और स्त्री-जाति पर लगाए गए लांछन को बर्दाश्त न कर सकी। वह विना किसी हिचकिचाहट के बोल उठी—"आप विद्वान हैं, विवेकशील हैं सही, पर आप लोगों की कठिनाइयाँ महसूस नहीं कर सकते! आपको जानना चाहिए—मनुष्य निर्जीव पदार्थ नहीं है—जड़ नहीं है, चेतन है। उसमें काम, क्रोध, वासना, अहंकार सदा से रहता आया है और रहेगा ही। आप इतना अस्तित्व नहीं मिटा सकते! यदि आपने यह सोच लिया कि, आध्यात्मिक विवेचन से इस पर विजय पाएँगे तो यह तब संभव होता—जब सांसारिक प्रलोभनों से मनुष्य विमुख हो जाता है। आज आश्रम की महिलाओं में जो एक तरह की अशांति है, उसे आप महसूस कर कैसे सकेंगे? आपको जानना चाहिए—यौन-संबंध यों मिटने वाली चीज नहीं। इस पर जबर्दस्ती कब्जा नहीं किया जा सकता। उचित तो यह होता कि आप उचित शिक्षा-दीक्षा देकर उन्हें वैवाहिक संबंध में आबद्ध कर देते। जिस तरह पुरुष में वासना है, उसी तरह दूसरों में भी। दोनों को आप मिटा नहीं सकते। जहाँ दोनों का संसर्ग है, वहीं समझिए स्नेह भी रह सकता है, शांति भी रह सकती है और सुख भी उपलब्ध हो सकता है। यह उम्र का तकाज़ा है। आध्यात्मिक विवेचन से काम नहीं चला करता। इसे आपको समझना चाहिए।"

नवीन ने राधा से जो कुछ सुना, उससे उसका मानो लाभ ही हुआ। वह सोचने लगा—लोग पाप क्यों करते हैं? उसकी

परिणति कहाँ है ? उसे अपनी कमजोरी मालूम पड़ी। वह नम्र स्वर में बोल उठा —"मनुष्य का हृदय शांतिपूर्ण है, वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। मैंने अवश्य भूल की है, राधा ! मैं अपने को अयोग्य समझ रहा हूं। मैं जब एक का सुधार नहीं कर सका तो यह कब संभव है कि इतनी बड़ी संख्या का सुधार कर सकूँगा ? मैं तुम्हारे विचार का अभिनन्दन करता हूं। तुमने जिस पहलू से सोचने को मुझे सम्मत किया है, अब मैं उसे मानने को तैयार हूँ। तुमने आज मेरे लिए एक नया ही मार्ग प्रस्तुत किया है। खैर, मैं इस पर विचार करूँगा फिर कभी। देखूँ, मैं कहाँ तक समर्थ हो सकता हूँ !"

नवीन के सामने आज नई समस्या उपस्थित थी। राधा ने उसकी आँखें खोल दी थीं। राधा को इसके लिए बड़ा गहरा मूल्य चुकाना पड़ा था। नवीन के सामने राधा खड़ी थी, पर उस रूप में नहीं, जिस रूप में वह कुछ क्षण पहले थी। उसके अंतर का विषाद, जिसे वह वर्षों से पालती आ रही थी, दूर हुआ। वह स्वस्थ हो चुकी थी। उसका हृदय शांत हो गया था। उसने नवीन की ओर एक बार आँख उठाकर देखा—देखा, वह गंभीरता पूर्वक सोचने में तल्लीन है। उसकी आकृति से राधा को पता लगा—जैसे वह संसार की असारता पर विषण्ण हो उठा है। राधा इस रूप को देख कर भयभीत हुई, देखा—मेरे चलते नवीन की दुनिया ही बदलने वाली है। कदाचित् क्षोभ से नवीन पागल न हो उठे। राधा इतनी डर रही थी। उसे बोध हो रहा था—

वह काँप रही है और इतनी जोर से काँप रही है कि, उसके पैर ठहर नहीं सकते। ऐसा सोचते ही वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ी।

नवीन का सहसा ध्यान भंग हुआ। उसने राधा को पकड़ कर उठाया, उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, नवीन ने उसे उठाकर बिछावन पर लिटा दिया। राधा की आँखें बंद थीं, बोध हो रहा था, जैसे वह अचेत हो गई हो।

नवीन ने उठ कर खिड़कियाँ खोल दीं। हवा का झोंका आया, और उसके स्पर्श से राधा सचेत होने लगी। उसने देखा—वह बिछावन पर पड़ी है, नवीन झुक कर उसका सिर सहला रहा है।

राधा को एक स्पंदन हुआ, पर, तुरत उसने अपने को सावधान किया, वह बिछावन से उठ खड़ी हुई। कुछ देर तक खड़ी ही रही, उसके बाद वह बोल उठी—"क्या आप क्षमा न करेंगे ? अवश्य मैं अपने आपे में न थी। ज्ञान खो गया था, बुद्धि लोप हो गई थी, मुझे अपने अपराध पर·······।"

नवीन बीच ही में बात काट कर बोल उठा—"गुनाहगार खुद हूं, राधा! मैं अब तक भ्रम में था, आज मैं प्रकाश देख रहा हूं। तुमने मेरी आँखों की पट्टी खोल दी है। फिर भी, मैं तुम्हें क्षमा करता हूं।"

राधा नवीन के पैरों पर गिर पड़ी और विना प्रतीक्षा किए झटक कर बाहर निकल गई।

नवीन चिंता-स्रोत में प्रवाहित हो चला।

—इकतालीस—

नवीन पागल की तरह खूब तड़के उठकर नदी की ओर चल पड़ा। वह कुछ देर तक वहां की स्वच्छ वायु में टहलता रहा, पर, उसका मन हलका न हुआ। उसने स्नान-पूजा की ओर तीव्र वेग से आश्रम में आ पहुँचा।

उसने अपने कमरे से ही देखा—सेनिटोरियम वार्ड की ओर से रोगियों में से एक छोटा सा गरोह उसी की ओर, बड़े कष्ट से गिरते-पड़ते आ रहा है। नवीन की आत्मा कराह उठी—वे अभागे! अवश्य कुछ घटा होगा। आ रहे हैं अपना रोना रोने! उस दिन भी ये आकर सुना गए थे! उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी—आकाश की ओर देखा। वह टहलने लगा। उसने उस ओर से अपनी आँखें फेर लीं।

वे लोग कार्य्यालय की सीढ़ियों पर बैठकर नवीन के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

नवीन कोठे से उतरा, कार्य्यालय की ओर बढ़ा। उसके आते ही उन लोगों ने उठने की चेष्टा की, पर नवीन उन्हें देखकर बोल उठा—"बैठे रहो भाई! कहो, अच्छे हो न!"

"अच्छे हैं—आपकी दया है! पर, हम पापी जीव! क्या कहें—आज सबेरे उठ कर देखते हैं–सुमरा और हरिया गायब! दोनों आज आश्रम छोड़कर भाग निकले! ऐसा सुख—ऐसा आराम! फिर न जाने, कौन सी बात थी, पता नहीं। हरिया को देखो, बाबू, उस दिन कैसा हो रहा था। जिस सुमरा ने उसके साथ बदमाशी की, आज वह उसी के साथ भाग निकला!"—उनमें से एक बोल उठा।

नवीन हँस पड़ा, न जाने उसकी हँसी प्रसन्नता की थी वा उपहास की। हाय रे अभागे!

आश्रम में यह पहला ही अवसर था कि कोई भाग निकला हो। पर, आज सचमुच, आश्रम के आरामोंको छोड़ भाग निकले, एक नहीं—दो-दो! कौन कह सकता है कि, संसार में सुख ही सब कुछ है। क्या वे दोनों फिर वैसा सुख—वैसा आराम पा सकेंगे? वही भीख मांगना! वही दर-दर की ठोकरें खाना! वही राह पर कहीं पड़ रहना! न सुख न आराम! फिर भी भाग निकले! कैसी दोनों में प्रीति थी! प्रीति थी वा वासना? तो क्या संसार वासनामय है? आज मानव पर वासना की ऐसी विजय-लीला

देख नवीन काँप-सा उठा। वह समझ नहीं सका, कैसा रहस्य है वह।

नवीन की समाधि भंग हुई। वह मानो सोकर उठा हो। वह बड़ी देर तक चुप रहने के बाद बोल उठा—"तो अब उनके लिए चिंता करना ही व्यर्थ है। वे दोनों गए—अच्छा ही किया। कैसे कहूँ कि आश्रम बंधन नहीं है? बंधन चाहे सोने का हो वा भावमय, फिर भी बंधन ही कहलायगा। यह कोई प्रश्न नहीं कि सुख और सुविधाओं में ही मनुष्य आवद्ध रह सकता है। रहा होगा इसके ऊपर भी कोई सुख जिसके अनुसंधान में वे लोग निकल भागे। तुम लोग क्यों उसके लिए अफसोस करते हो? भाई! संसार इसी का नाम है। जाओ तुम लोग, अपने आप को देखो। दुनिया देखने के लिए दुनिया स्वयं पड़ी हुई है। हम दुनिया को नहीं देख सकते, दुनिया अपने आप को देखेगी।"

वे लोग उठ खड़े हुए और नवीन के प्रति अपने अभिवादन जतलाकर सेनिटोरियम की ओर वे लोग चल पड़े।

नवीन अकेला रह गया। आज वह आश्रम की घटनाओं से संक्षुब्ध हो उठा और इतना संक्षुब्ध हो उठा कि, उसके ललाट पर पसीने की बूंदें निकल आईं। इतना सुंदर सुहावन प्रातःकाल में भी वह उष्णता का अनुभव करने लगा। उसके लिए एक क्षण भी आश्रम में रहना भार-सा बोध हुआ। वह क्षणभर में ही छटपटा उठा। उसने एक गहरी आह छोड़ी। फिर वह पैड उठाकर पत्र लिखने बैठ गया।

उसने चिट्ठी लिखी, लिफाफे में उसे भरा, उस पर टिकट लगा कर पोस्ट करने को उसे रख छोड़ा। वह उठ खड़ा हुआ। बाहर आया और फुलवाड़ी में आकर टहलने लगा। वह सोच रहा था। सोचने में आध घंटे से अधिक लग गए, वह उसी तरह टहल रहा था। अंत में वह आप-से-आप बोल उठा—हाँ, ऐसा ही होगा।

उसने निश्चय कर लिया कि, एकांत जीवन ही उसके लिए अनुकूल होगा। वहीं वह पश्चात्ताप की आँच में अपने को निर्मल करेगा—पवित्र करेगा। बस, उसके जीवन की साध है तो इतनी ही। वह किसी को सुधार नहीं सकता, दुनिया सुधर नहीं सकती। वह अपनी राह पर चलती रहेगी, उसकी राह कोई रोक नहीं सकता। उसे कोई समझा नहीं सकता। यही दुनिया है—और वह ऐसी रहेगी ही।

आज नवीन का धीरज भाग चुका था, आशा टूट चुकी थी, आकांक्षा का खून हो चुका था। वह आशावादी अवश्य था, पर कौन कह सकता था कि, वह अपने जीवन से—अपने कर्त्तव्य से, इतना निराश हो उठेगा।

हाय रे! मानव-जीवन का जटिल रहस्य!

नवीन सब तरह से अपने को जब्त कर, एकांत की खोज में चल पड़ने को तैयार हुआ। उसने अपने कमरे में जाकर देखा—उसकी प्रिय वस्तुएँ, अपने स्थान पर, ज्यों की त्यों हैं; पर, उन पर उसकी ममता नहीं—मोह नहीं। आज उसने उन चीजों को अपने लिए आवश्यक नहीं समझा। वह अकेला ही निकलेगा सबका मोह

छोड़ कर, सब की ममता छोड़ कर, अपने को संपूर्णतः रिक्त कर, निःसंबल—निर्बंध। अपनी एकांत तपस्या की खोज में, अपनी साधना की खोज में। ऐसी जगह, जहाँ फिर ये आश्रमवासी पहुँच न सकें, कोई उसे वापस न ला सके इस बंधन में उसे बांधने !

पर, जाने के समय उसे बोध हुआ—मानो उसकी अंतरात्मा किसी प्रिय वस्तु के लिए लालायित हो उठी है। वह समझ नहीं रहा था—कौन-सी वह प्रिय वस्तु है, जिसका मोह वह छोड़ नहीं सकता, जिसकी ममता उसे बाहर जाने से अब भी रोक रही है।

वह सीढ़ियों की राह नीचे उतर पड़ा। उसके पाँव आप-से-आप मातृ-मंदिर की ओर चल पड़े।

राधा के साथ कुछ बहनें उन छोटे अबोध बच्चों को खेला रही थीं। बच्चे मचल रहे थे, वे सब उन्हें मना रही थीं। बच्चे मानते नहीं थे। नवीन के पाँव वहाँ आकर आप-से-आप रुक गए। बच्चे उससे लिपट पड़े। पा···पा ! बा····बा ! मा···मा !

नवीन ने किसी को गोद में उठा लिया, किसी को चूमा लिया, किसी को पीठ पर थपकियाँ लगाने लगा। वह उनकी तुतली बोलियों पर अपने आपको भुला बैठा। कितना मोह ! कैसी ममता !

राधा और उन देवियों के बीच कानोकान बातें हो रही थीं। कोई कहती—कह डालो ! कोई उसे वर्जित करती—ऐसा नहीं। कोई कहती—इनसे छिपा ही क्या है ? कोई कहती—इन्हें सुन कर आनंद ही होगा ! और कोई कह रही थी—कहोगी तो मैं उठकर भाग जाऊँगी। मुझे लाज आ रही है।

पर, राधा की प्रसन्नता मानो अपनी सीमा लाँघ रही थी। वह बोल उठी—"भागोगी कहाँ दीदी! भाग नहीं सकोगी!"

नवीन का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ। उसकी दृष्टि राधा पर पड़ी। राधा ने भी नवीन की ओर देखा—वह विहँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोल उठी—"नवीन बाबू! आपको सुनकर हर्ष होगा, जिसे आपने गोद में लिया है—वह, मानदा दीदी कहती हैं कि, मेरा लड़का है।"

मानदा लजा कर भागना चाहती थी, पर राधा उसे पकड़ कर बोली—"देखिए न! इन दोनों के मुंह में कितना साम्य है!"

नवीन राधा की बात पर चौंक पड़ा। उसने उस बच्चे को, जिसे नवीन मन्नू कहा करता, देखा और देखा—मानदा को। अपूर्व साम्य था—मानो मानदा की प्रतिकृति हो!"

"पर, इतने दिनों के बाद यह कैसे मालूम हुआ आज?"—नवीन ने जिज्ञासा भरे स्वर में कहा।

राधा बोली—"मानदा 'दी कभी इधर आती न थी। उसे बच्चों को देखकर, न जाने क्यों रुलाई आती। इसलिये मानदा 'दी इधर कभी आई नहीं। पर, सबेरे न जाने कैसा हुआ, इसे संयोग ही कहना चाहिए, वह टहलती हुई मेरे कमरे में आई। मैं तैयार थी इधर आने को। मैं ही बोल पड़ी—'चलो मानदा 'दी! बच्चों को देख आएँ!' आज वह तैयार हो गईं। हम दोनों आईं। सबसे पहले इनकी दृष्टि मन्नू पर गई। मन्नू न जाने क्यों लपक पड़ा इनकी गोद में आने को! मानदा 'दी ने इसे गोद में उठा लिया। उठाना

था कि, दीदी की छाती से आप-ही-आप दूध फूट पड़ा। ऐसा आश्चर्य तो मैंने कभी नहीं देखा था। मानदा गद्दी बैठ गई और मन्नू को दूध पिलाने लगी। उसने दूध पिलाते समय देखा—मन्नू की छाती पर, उसके जनमते समय एक लाल दाग था, देखिए, नवीन बाबू! वह अब भी है! उस दाग को ही तो देखकर दीदी को विश्वास जमा।"

नवीन को कुतूहल के साथ विस्मय भी कुछ कम न हुआ। वह अपने को रोक न सका, वह बोल उठा—"आखिर मानदा ने इसे फेंक क्यों दिया था? उस दिन इतनी कठोर वह कैसे हो गई थी?"

नवीन ने देखा—मानदा की आँखों से आँसुओं की झड़-सी लग गई। उसका हृदय उच्छ्वसित हो उठा। पर, उसने कलंक को इन आँसुओं से बहा कर अपने को इतना तैयार कर लिया कि वह अपनी आपबीती नवीन को सुना सके। वह तैयार हो उठी कहने को। स्त्रियोचित लज्जा उसे रह-रह कर रोकना चाहती, पर वह रुक न सकी। उसने, जो कुछ कहना था, कह सुनाया।

नवीन ने सब कुछ सुना—उसने एक गहरी आह ली। उफ्! विधवा! विधवा होकर प्रेम करना! वही वासना-जनित प्रेम! फल—तिरस्कार! भर्त्सना! समाजच्युत! आसन्न-प्रसव शिशु का अपहरण!....निर्वासन!!....हरे-हरे! क्या सुन गया वह! वही वासना! वही यौन संबंध की आकुल उत्कंठा!!

तो क्या वासना इतनी प्रबल है? और यह स्त्री-जाति....? नहीं, वासना से भी ऊपर है मातृत्व—और कदाचित् इसी के लिए

स्त्री-जाति में एक आकुल उत्कंठा है, इसी के लिए वह सब कुछ मान-संभ्रम, यहाँ तक कि अपनी मर्य्यादा को छोड़ सकती है। मातृत्व का इतना मोह !

"मानदा लज्जा की रक्षा करती हुई बोल उठी—"क्या मैं अपनी संतान को लेकर अपना संसार नहीं बसा सकती ?"

"अवश्य—अवश्य ! मानदा ! मैं इतना क्रूर नहीं हूं, मैं मातृ-हृदय को पहचानता हूं। मैं वह अवसर अवश्य तुम्हें दूँगा। क्या तुम मन्नू को लेकर जाना चाहती हो ?"

"हाँ, यदि आप इतनी-सी कृपा करें !"

"पर, क्या तुम्हें यहां से अधिक सुख मिलेगा ?"

मानदा हँस पड़ी। "सुख ?"—वह बोल उठी—"नवीन बाबू ! आप बुद्धिमान हैं, विद्वान हैं—फिर सुख की बात कहते हैं ? स्त्रियों को इससे बढ़कर और क्या दूसरा सुख हो सकता है ? इसके सामने सुख ? मैं सभी कुछ सह सकती हूं, इन सुखों को तिलांजलि दे सकती हूं, केवल एक के लिए—संतान के लिए—आपके मन्नू के लिए ! संसार चाहे जो कहे, मन्नू को मैं अपने से विलग नहीं कर सकती—मन्नू मुझ से विलग नहीं हो सकता ! मन्नू मेरा है, मैं उसकी हूं—उसकी जननी हूं—उसकी माँ हूं !"

नवीन विचार-स्रोत में बह चला, उसकी आँखों से अविश्रांत आँसू बह चले। उसे हो रहा था—मानदा जिस संतान को अपनी छाती से चिपका कर इस स्वर्गीय आनंद का उपभोग कर रही है, यदि मैं भी उस स्वर्गीय आनंद का उपभोक्ता बनता !........

पर, हाय री मणि !.......क्या तुम्हारा हृदय इतना कठोर है ?.... मातृत्व का महत्व तुम क्या जानो ? उफ् ! यदि तुम्हें इतना-सा ज्ञान होता !!

मणि की आकृति एक वार नवीन की आंखों के सामने तरंग की तरह आई और विलीन हो गई। नवीन क्षण भर के लिए उसमें उद्बुद्ध हुआ सही, पर तुरत उसने अपने को संयत किया। उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया था। वह बंधन से मुक्त होने को छटपटा-सा उठा। उसके सामने सारा आश्रम माया-सा जान पड़ा। वह वहां से अपनी सारी ममता छोड़—उन बच्चों का मोह त्याग चल पड़ा। पर, इतने में ही मानदा बोल उठी—"तो क्या आज्ञा है ?"

नवीन ने उसकी बात सुनी और उन्माद के स्वर में बोल उठा—"अब भी आज्ञा मांगती हो मानदा ! संसार बसाने के लिए आज्ञा ? बंधन से तुम मुक्त कर दी गई। तुम्हारी इच्छा, जब तुम चली जाओ—सभी कोई चले जायँ। सभी स्वतंत्र हैं—सभी स्वतंत्र हैं—मैं जोर देकर कहता हूँ—सभी स्वतंत्र हैं और सभी को उस स्वतंत्रता का उपभोग करने का एक-सा अधिकार है !"

वहां जितनी स्त्रियाँ बैठी थीं—सभी विस्मयाभिभूत होकर नवीन की बातें सुन रही थीं। सभी चकित थीं—सभी विस्मित थीं। पर, उन सबों को क्या पता, नवीन आज क्यों स्वतंत्र होने की बात इतनी जोर डाल कर कह रहा था ? सभी क्या जानती थीं कि, नवीन आज स्वयं स्वतंत्र होने को आकुल हो उठा है ?

नवीन वहां से पागल की तरह—तीर की तरह चल पड़ा, बिना और कुछ बोले हुए, बिना बच्चों की ओर एक बार नजर डाले। वह सीधा बढ़ा जा रहा था। वह कार्यालय भी नहीं गया, अपने निवास-भवन में भी नहीं गया, वह बढ़ता चला गया—जहाँ तक उन सबों की दृष्टि गई, नवीन चलता ही रहा।

"तो क्या सचमुच नवीन बाबू पागल हो उठे हैं ?"—उनमें से एक बोल उठी।

मानदा बोली—"पागल नहीं, नवीन बाबू सचमुच देवता हैं ! कितनी दया है, कितनी ममता है, कितना स्नेह है, कितना अपनापन है !

पर, सभी ने देखा—राधा की आँखों में सावन-भादो की बाढ़-सी लग रही है। उसका कोमल हृदय उच्छ्वसित हो रहा है।

किसी ने नहीं जाना कि, उसके रोने में कौन सा रहस्य निहित है। किसी ने यह अनुमान नहीं किया कि नवीन आज कहाँ तीर की तरह बढ़े हुए चलता बना।

आश्रम ज्यों का त्यों है। आश्रम-निवासिनी अपने प्रतिदिन के कामों में सन्नद्ध हैं, बच्चे उसी तरह खेल रहे हैं—मचल रहे हैं, बालिकाएँ उसी तरह उमंग में पढ़ रही हैं, सेनिटोरियम के रोगी अपने आरोग्य-लाभ से तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं, पर राधा के हृदय में जो विषाद है, उसके लिए मरहम-पट्टी नहीं। वह रोती है—हँसती है, पागल की तरह नाचती है—गाती है ! आश्रम को नवीन नहीं मिल सका और न मिलने की आशा है। यही संसार है—यही संसार की माया है !

—बयालिस—

उस दिन मणि ने भी पागलपन का काम किया था—हाँ, उसे पागलपन का ही काम कहूंगा। जिस पत्र के लिए वह पागल हो रही थी, जिस पत्र के लिए उसने नवीन को भी पागल बना कर छोड़ा, वह पत्र था किशोर का भेजा हुआ और उस किशोर का जिस पर उसने एक दिन घृणा की थी, उपेक्षा की थी और जिसे लातों से ठुकरा कर भाग निकली थी। आज उसी का पत्र न पाकर वह पागल बनी। उसने अपना पति छोड़ा, पति का हृदय खोया, प्रेम खोया उसका। वह निकल भागी आश्रम से उसकी खोज में। नवीन को उसी दिन ज्ञान हुआ था स्वतंत्रता का। और उसने मणि को स्वतंत्र कर दिया।

मणि अपने घर वापस आ गई। उसने वहाँ आकर स्वतंत्रता की साँस ली। किशोर को पत्र लिखा—अपनी मर्यादा खोकर, अपनी लज्जा परित्याग कर। दुनिया कितनी दीवानी है! मनुष्य एक बार भूल कर सकता है, पर दोबारा वही भूल नहीं कर सकता और उसे ऐसा न करना चाहिए। पर, मणि आज वैसा ही करने को छटपटा रही थी, आखिर उसने वैसा किया भी।

किशोर—यौवनोन्मत्त किशोर—अप्सरा-सी मणि को पाने के लिए पागल की तरह फिर से छूट पड़ा। किशोर ने एकवार पहले उससे ठोकर खाई थी और ऐसी ठोकर खाई थी, जिसने उसे पागल-सा बना दिया था, जिससे उसकी मानसिक स्थिति तक बदल गई थी; पर आज उसी मणि के लिए वह सब-कुछ करने को—सब-कुछ सहने को तैयार था। इसे क्या कहा जायगा—मानवता का उत्थान या पतन?

और मणि?

मणि ने उसे, अपने गर्व और अभिमान को लेकर, अपने आपको गंवा कर, अपनी अमूल्य निधि को किनारे रख कर, फिर से प्राप्त किया।

आज मणि किशोर के लिए है और किशोर मणि के लिए।

मणि की दृष्टि में नवीन ससीम से बाहर है—बहुत बाहर। वह वहाँ है जहाँ सीमा नहीं है, परिधि नहीं है, हद नहीं है। वह एक स्वप्न था—आया और सदैव के लिए अस्तित्व खोकर

आँखों से ओझल हुआ। मणि ने स्मृति पर जोर देकर नवीन को वहाँ से खदेड़ा—उसकी छाया तक न रहने दी। अब उसकी जगह वहाँ किशोर का मूर्त्तिमान रूप है और है उसका रूप। मणि अपने अस्तित्व को उसके अस्तित्व में मिला कर देख रही है—वह सम्मिश्रित रूप। कितना सुंदर, कितना सौम्य, कितना मोहक, कितना आकर्षक !

मणि इस मिलन को अपने लिए उपयुक्त समझती है। उसके सामने विवाह एक स्वप्निल क्रीड़ा था। उसका कुछ मूल्य नहीं—उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं।

मणि के लिए संसार एक क्रीड़ा-क्षेत्र था—आनंद-निकेतन था, विलासमय रंगस्थल था। इससे अधिक और कुछ नहीं—इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। और यहीं पर भूल हुई थी नवीन से। वह कर्म्मठ युवक था, संसार उसके सामने भोग-भूमि नहीं, कर्म-स्थल था। वहां कर्त्तव्य पहले था और सब कुछ पीछे। फिर मणि-जैसी युवती कब तक उसकी आशा-प्रत्याशा में झूलती रहती ? वह उस कर्म-बंधन से मुक्त होते ही आनंद-उपभोग के लिए तीर की तरह छूट पड़ी।

किशोर मणि के लिए वह ध्रुव तारा था जिस पर लक्ष्य किए वह आनंद की पगडंडियों पर चला करती। कभी थियेटर, कभी सिनेमा, कभी क्लब, कभी कहीं, कभी कहीं !

वह खुल कर आनंद लूटने चली थी। वह स्वतंत्रता का मधुर फल चखने को आतुर थी—व्यग्र थी ! उसके सामने एक-से-एक,

सुंदर-से-सुंदर भोग वस्तुएँ पड़ी थीं और भोक्ता थे वह और किशोर। पर तृप्ति नहीं—परितोष नहीं!

तब से न जाने कितनी घड़ियाँ आईं और गईं, पर मणि के सामने उसका मानो कोई अस्तित्व ही न हो। कौन उन पर ध्यान रखने चला? कब दिन बीतता है और कब रात खत्म होती है—कौन हिसाब रखता है वहाँ? उफ़! आनंद में आप-से-आप व्याघात डालना! यह नहीं हो सकता और मणि ऐसा कर नहीं सकती।

एक दिन रात के समय मणि और किशोर एक ही पलंग पर लेटे हुए थे। विद्युत्-प्रकाश से कमरा प्रकाशमय हो रहा था। बाहर से वर्षा की बर्फीली हवा मुक्त वातायनों के द्वारा आकर थपकियाँ भर रही थी। मणि मदांध थी और किशोर पागल। दोनों में घुल-घुल कर प्रेमालाप हो रहा था। दोनों एक दूसरे पर झुके पड़ते थे। उसी समय बातों के सिलसिले में किशोर को उस दिन का स्मरण हुआ—जब मणि उसे कुत्तों-सा दुत्कार कर भाग खड़ी हुई थी। स्मरणमात्र से अवश्य उसे एक वार वितृष्णा हुई, हृदय ने न चाहा कि, इस आनंद के समय वह अमंगल विधान सामने रखा जाय। पर, वह अपने को जब्त न रख सका। जिज्ञासा को रोकना उसके लिए कष्टकर हो उठा। वह हँसते-हँसते जरा चुटकियाँ लेते हुए, बोल ही गया—

"मणि, यह तो कहो, उस दिन तुम्हें हो क्या गया था? उस दिन...उस दिन...!"

मणि समझ न सकी—वह क्या कहा चाहता है। वह भी उसकी ओर मुखातिब हुई, वह भी सुनने को ललचा-सी उठी। वह बोल उठी—"किस दिन की बात कहते हो ? क्या कहते हो ?"

किशोर जरा और मजा लेते हुए बोला—"क्यों तुम्हें याद रहने लगा, मणि ! उस दिन·······न जाने तुम्हें क्या हो गया था ! पर नहीं, मेरी गलती थी ! हाँ, जरूर मेरी भूल थी।···क्या सचमुच तुम्हें याद नहीं है ?"

मणि के लिए यह पहेली सुलझाना कठिन हो चला। वह नहीं चाहती थी कि, इस तरह की भूल-भुलैया में वह पड़ी रहे; इसलिए वह जरा तुनक कर बोल उठी—"क्या कह रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता ? क्या तुम्हारी गलती थी ? कब की बातें कह रहे हो, किशोर ! खुलकर कहो—खुलासा कहो—कही दो ! देखूँ तुम्हारी गलती !"

मणि सुनने को बड़ा ही व्यग्र हो उठी। अब उसके लिए एक क्षण ठहरना कठिन-सा प्रतीत हुआ। किशोर ने देखा—मणि की उत्कंठा सीमा को पार कर गई है तो वह मुस्किराते हुए बोल उठा—"उस दिन की बात···जब तुम बेखबर सोई पड़ी थी, जब मैं तुम्हें विरक्त करने को तुल पड़ा था। उस दिन······याद आया······क्या हो गया था तुम्हें ?"

मणि की विहँसती आँखों के सामने उस दिन का वीभत्स दृश्य चित्र की तरह स्पष्ट हो गया। एकवार उसकी आकृति फीकी पड़ गई—उसका हृदय सहम-सा गया। लज्जा से उसकी गर्दन नीचे

की ओर झुक गई, वह क्षण भर चुप रहने के बाद बोल उठी—"क्या तुम्हें और बात ही नहीं सूझती? किशोर! छोड़ो उस प्रसंग को।"

किशोर उसकी आकृति से समझ गया कि यह प्रसंग समयानुकूल न हुआ। इसलिए वह परिस्थिति को संभालते हुए, जरा तन कर तकिए पर भर दिए बोल उठा—"छोड़ा हुआ तो है ही; यह तो केवल मनोरंजन के लिए कहा गया। पर, मैं इतना अवश्य जानना चाहता हूं कि, वाक़ई मेरी गलती थी उस दिन, या मैंने तुम्हें पहचानने में भूल की थी?"

मणि न जाने क्यों, हँस पड़ी और ओठों में बोली—"शायद नहीं!"

"फिर?"

"फिर क्या?"—मणि की भवों पर बल पड़ गए—"क्या तुम्हें वैसा ही उचित था?"

"तो और मेरे लिए कौन-सी दूसरी राह थी, मणि! कह सकती हो?"

मणि लज्जा से गड़-सी गई। वह किशोर की ऐसी अश्लील, अप्रिय बातें सुनने को जरा भी तैयार न थी। कम-से-कम स्त्रियोचित मर्यादा से मणि अबतक बाहर जाने में समर्थ न हो सकी थी; इसलिए वह बोल उठी—"क्यों खोद-खोद कर ऐसी बातें निकाल रहे हो, किशोर? छोड़ो उस प्रसंग को—उसमें धरा ही क्या है?"

"हाँ, धरा है, मणि !"—किशोर अपनी बातों पर जोर डालते हुए बोल उठा—"धरा नहीं है कैसे ? मैं तुमसे ताड़ित हुआ, अपमानित हुआ, मानसिक वेदना हुई ! यहाँ तक कि मैं मरने-मरने को हुआ। क्या नहीं हुआ ?—सो क्यों ?"

मणि कुछ देर तक चुप रही, मानो वह कुछ कहने के लिए अपने में शक्ति का संचार कर रही हो। आखिर वह बोल उठी—"वह तुम्हारी गलती नहीं—बदमाशी थी ! क्यों तुम मेरे कपड़े चोर जैसे खैंच रहे थे ? क्या यह तुम्हारा ओछापन नहीं था ?"

"कदाचित नहीं।"

"संभव हो, नहीं ! पर उन बातों को याद कर क्यों अपने घाव को हरा करते हो ? जीवन में कब कैसा समय आता है—कौन कह सकता है ? एक हमलोगों के लिए वह समय था और एक आज का है ! तुम्हीं कहो—दोनों में कितना अंतर है। उसी दिन जैसा था, वैसा आज नहीं है। अवश्य उस दिन मुझे तुम पर रंज हुआ था—रोष के मारे मैं अपने-आपे में न थी। शायद उसी झोंक में मैं बहुत-कुछ अनाप-सनाप भी बक गई होऊँ। उस समय मैंने अपने बचाव का और कोई उपाय न देखा और मैं वहाँ से भाग खड़ी हुई। आज वह समय मेरे लिए नहीं रह गया—फिर तुम आज मेरे हो !"

किशोर जरा लज्जित हुआ, अवश्य उसे उन पुरानी बातों पर घृणा भी हुई। फिर भी वह अपने व्यथित हृदय का भार हलका करने को बोल ही पड़ा—"जानती हो, मणि ! मैं तुम्हारे विना

कैसा पागल हो गया था ? आह ! यदि तुमने मेरी वह अवस्था देखी होती ? मैं तो समझता था—इस जनम में तो क्या, उस जनम में भी तुम मुझे फिर से अपना सकोगी ! ज्यों-ज्यों मैं इस बात को लेकर सोचता, त्यों-त्यों मैं अपने से बहुत दूर निकल पड़ता । उस समय मुझ पर कैसी बन आती—मेरे सिवा इसका कौन अनुमान कर सकता है ? पर, मणि ! धन्यवाद है भगवान को, आज वह दिन चला गया—उस दिन की यंत्रणाएँ भी चली गईं, पर कालिमा की तरह उसकी स्मृति शेष है । आज वही स्मृति..........!"

अवश्य मणि को भी उस स्मृति ने चंचल कर छोड़ा । पर, वह बड़ी कठिनता से किशोर को पा सकी थी और उसी पर उसका आनंद मचल रहा था, इसलिए वह मुस्किराती हुई बोल उठी—"स्मृति ढोकर क्या करोगे, किशोर ! मुझे भी उसका कम रंज नहीं । मैंने भी धोखा खाया । आज उसी का प्रायश्चित्त कर रही हूँ । अब जीवन भर.........!"

"क्या जीवन भर ?"—किशोर बात काट कर व्यंग के स्वर में, अधरों के बीच मुस्किराहट समेट कर बोल उठा ।

"तो तुम क्या समझ रहे हो ?"—मणि जरा भवों पर बल देकर तीव्र स्वर में बोली ।

"वही तो मैं भी जानना चाहता हूँ ।"

"खैर, मैं कुछ नहीं जानती और न कुछ कहा चाहती हूँ ।"

"ना-ना; नहीं मानूंगा, मणि ! कह दो—कह दो एक वार !" किशोर भावावेश में आकर मानो पागल हो उठा । मणि ने उसे

शक्तिभर उत्तेजना दी। वह अधीर आँखों से मणि की ओर निहार रहा था। मणि ने सिर उठा कर एक बार उसकी ओर देखा—आँखें चार हुईं। मणि बोलने को हुई और उसे हुआ—कह दूँ—हाँ, जीवन भर! आखिर उसने कही दिया—"हाँ, जीवन भर!"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। आनंद का उत्स प्रवाहित हो चला। दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में आवद्ध हो गए। दोनों ने आदान-प्रदान स्वरूप अपने-अपने स्नेह की मुहरें एक दूसरे के कपोलों—अधरों—पर जड़ दीं।

कह नहीं सकता—किशोर स्वर्ग में था वा पृथिवी पर। और मणि? कदाचित् उसके लिए यही स्वर्ग रहा हो! और संभवतः इसी स्वर्ग के लिए उसने अपना संसार छोड़ कर—नवीन का सौम्य संबंध परित्याग कर—किशोर को पाया हो।

हाय री मणि!

—तैंतालीस—

कुछ नवीन का भी सुनिए—

उस दिन नवीन आश्रम को छोड़ कर, सारी मोह-ममता को ठुकरा कर—संवलहीन हो, तीर की तरह अपने गंतव्य पथ पर बढ़ चला। उसके मस्तिष्क में बवंडर था, पर उसकी आकृति में पूर्ण शांति थी। वह अपने पथ पर बढ़ा चला जा रहा था। वह कहाँ जा रहा था—उसे इसका भी कुछ पता नहीं। वह केवल चलना ही जानता था। न कहीं विराम—न विश्राम! पथ में जो कोई उसे देखता समझता कि होगा कोई पागल। इसके सिवा और कुछ नहीं। उसकी ओर देख लेता, पर वहाँ किसको पड़ी थी कि, कौन हो, कहाँ जा रहे हो! इसी का नाम तो संसार है। तुम खुश रहो तो सारा संसार तुम्हारा साथ देगा और तुम रोओ तो तुम्हें स्वयं रोना होगा—कोई इसमें हाथ बटाए तो क्यों? संसार रोना पसंद नहीं करता और न रोनेवाले का साथ देना चाहता है। ठीक नवीन के लिए भी यही बात थी।

नवीन को न तो अपनी सीमा का ध्यान था और न कहीं आश्रय लेने का ही निश्चय उसने किया था। वह तो निरुद्देश्य जा रहा था। उसके दृष्टि-पथ पर न तो कोई आकांक्षा ही थी और न हसरत। सांसारिक घात-प्रतिघातों का चपेट खाकर, जिस तरह मनुष्य कुछ क्षण के लिए व्यथित किंतु शांत हो जाता है, वही उसकी अवस्था थी। आज उसे धूप भी कष्टकर प्रतीत नहीं होती, और न भूख-प्यास ही उसके पथ में रोड़े अटकाती। उसे धुन सवार था और वह यह कि वह संसार की आँखें बचा ऐसी जगह में छिपे, जहाँ लौकिक मर्यादा काम नहीं करती, जहाँ न किसी के हँसने का खेद है और न सहानुभूति पर आनंद। पर, वह भी तो मनुष्य ही था, कहाँ तक शारीरिक धर्म को—भूख-प्यास, श्रांति और अवसाद को—सहन कर सकता। सभी की एक सीमा होती है। पूरे दस घंटे अविश्रांत चलने के बाद एक छतनार वृक्ष की छाया में वह मृतकवत् लेट गया।

संध्या का समय था। भूख-प्यास से व्याकुल, रास्ते की थकावट से परेशान नवीन के लिए आगे चलना कठिन हो उठा। उसने दम तोड़कर उस वृक्ष की शरण ली। उसके चारो ओर, जहाँ तक दृष्टि जाती, केवल मैदान-ही-मैदान नजर आता। न कहीं बस्ती थी और न किसी के आने-जाने की आशा ही। वह तो रास्ता भटक कर वहाँ आ पहुँचा था, फिर कोई कैसे नजर आए?

नवीन वृक्ष के नीचे सब्ज दूब पर लेट तो गया, पर नींद कहाँ? उस समय सांध्य सूर्य की रश्मियाँ उसके मन में तृप्ति और संतोष

भरने का उपक्रम कर रही थीं। चारो ओर से पत्ती अपने जोड़े के साथ, उस वृक्ष में आश्रय-ग्रहण करने को आ रहे थे। बस, ये ही उसके सखा थे, और वह इसी की सुखद कल्पना में, अकेले— उस निर्जन संसार में—विचरण करने लगा। उसकी कल्पना इतनी तीव्र वेग से सजग हुई कि, वह अपने आप को भूल बैठा। अवश्य इससे उसका अवसाद शांत हुआ, कदाचित् प्यास भी मिटी और फल-स्वरूप उसे नींद हो आई। उस दिन वह इतनी देर तक सोया रहा कि इसके पहले इस तरह सोने का आनंद वह कभी उपलब्ध कर सका हो।

आधी रात गए उसकी निद्रा भंग हुई। उसने चंद्रमा की सौम्य ज्योत्स्ना में अपने को अकेला पाया। वह उठ बैठा और कुछ देर तक निस्तब्ध निशीथिनी के ललाट-प्रदेश पर चंद्र-मंडल का विहँसना देख कर वह शांति का उपभोग करता रहा। वह नीरव संसार कोलाहलमय संसार से बड़ा सुखकर उसे प्रतीत हुआ। वह जरा लेटे-लेटे बाँहों का सहारा लिए अपने आप की, अपने जीवन की, आलोचना करने में सन्नद्ध हुआ। उसे जीवन की घड़ियाँ—एक-के बाद-एक, चित्रपट की नाईं—याद आने लगीं। उसने एक वार मणि का वह रूप भी देखा, जब वह देवी के रूप में उसके सामने अवतरित हुई थी, फिर उसका वह दूसरा रूप भी सामने आया, जब वह करालिनी काली के रूप में अपनी आरक्तिम आँखें दिखा रही थी। नवीन को आप-से-आप हँसी हो आई और उसने उस निर्जर प्रांतर को अपनी खिलखिलाहट से

मुखरित कर दिया। पर, यह अवस्था क्षणिक थी। उसके बाद उसने देखा—आश्रम को, आश्रम-वासियों को, उन प्यारे बच्चे-बच्चियों को, और ?—और अभागी राधा को ! उसके मुँह से अनायास ही एक सर्द आह कढ़ कर निकल गई। उसकी आकृति में घोर परिवर्त्तन हुआ। उसकी आँखें आप-से-आप झँप गईं और वह अपने को शांत करने के लिए फिर से लेट गया।

रात प्रायः निःशेष हो रही थी, फिर भी नवीन को नींद हो आई। वह उषाकालीन मुक्त शीतल मंद पवन का स्पर्श पाकर घोर निद्रा में विभोर हो गया। सूर्योदय हुआ, धूप कुछ तेज हुई। नवीन ने आँखें खोलीं, वह उठ बैठा। उसका शरीर हल्का हो रहा था और मन भी शांत। वह उठ कर इधर-उधर टहलने लगा।

अंत में उसने निश्चय किया कि, किसी ऐसे स्थान में आश्रय लेना चाहिए जहाँ वह कम-से-कम भूख और प्यास शांत कर सके। और वह ऐसा स्थान था जहाँ वह दो में एक भी शांत नहीं कर सकता; इसलिए वह फिर से वहाँ से चल पड़ा। उसने चलने के समय यह भी नहीं सोचा कि, किधर जाने से उसकी उद्देश्य-पूर्त्ति संभव हो सकती है। उसके पाँव जिधर बढ़ गए, वह उसी ओर को चल पड़ा।

इस वार उसकी गति में वह तेजी नहीं थी। वह काफी थक चुका था, फिर भी वह धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा था। ऊबड़-खाबड़ मैदानों को तय करते हुए सौभाग्य से वह एक नदी के किनारे आ पहुँचा। वह थका-मांदा तो था ही, किनारे पर एक

छोटे से पेड़ का आश्रय लेकर बैठ गया। कुछ देर तक बैठे रहने के बाद वह उठा, कपड़े उतारे, नित्य-क्रिया की, स्नान किया और गीले कपड़े पहने ही वह पेड़ की शीतल छाँह में बैठ गया।

उसके कपड़े सूखे, साथ ही थकावट भी मिटी। पर, धूप बड़ी तेज थी, इसलिए वह आगे बढ़ने को तैयार न होकर, वहीं सुस्ताने को लेट गया। उसने लेटे-लेटे ही अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया। उसके सामने उसका महान आदर्श इस बार दूसरे ही रूप में प्रकाशमान हुआ। उसने देखा - निरुद्देश्य जीवन उसके लिए बड़ा विषाक्त है। अवश्य उसे उस काम को हाथ में लेना चाहिए जो उसके लिए गौरव का कारण हो। वह उस स्थान में, नदी-तट पर, एक गहन विषय को सोचने में लग गया। घंटों गंभीरतापूर्वक उस पर विचार करता रहा, अंत में उसे आप-से-आप आनंद का अनुभव हुआ। वह विहँसता हुआ वहाँ से चल पड़ा नदी के किनारे-किनारे ही। बेर ढल चुकी थी।

रास्ते की अनेक कठिनाइयाँ झेलते हुए संध्या के समय एक भग्नावशेष मंदिर में उसने आश्रय ग्रहण किया। वहाँ से एक-डेढ़ मील पर एक गाँव भी दीख पड़ा। नदी के किनारे, निर्जन स्थान में, भग्नावशेष मंदिर और एक बड़ा बट-वृक्ष, जिसकी जड़ ऊँचे चबूतरे से जड़ी थी, उसे बड़ा ही आकर्षक जान पड़े। स्थान वास्तव में बड़ा ही रमणीक था। नवीन ने अपने लिए वही जगह तजवीज की। मानो वह स्थान उसी के लिए बनाया गया हो। नवीन बरगद के चबूतरे पर अस्त-व्यस्त दशा में पड़ गया।

संध्या के समय स्त्रियों का एक दल, जिसमें बालिकाएँ भी थीं, कुछ मांगलिक वस्तु और धूप-दीप लेकर आया। शायद वह कोई पर्व का दिन था। उन लोगों ने नवीन को अस्त-व्यस्त दशा में पड़े हुए देखा। शायद बहुत दिनों के बाद उस मंदिर को, विशेषतः उस बट-वृक्ष को, किसी को आश्रय देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यही कारण था कि इन आगत स्त्रियों को कुछ आश्चर्य भी प्रतीत हुआ। पर, उन लोगों ने उसके प्रति और न कुछ सोच कर मंदिर में प्रवेश कर देवताओं के सामने धूप-दीप जलाया और मांगलिक वस्तु चढ़ाई। कुछ क्षण तक अर्चन-वंदन होता रहा, उसके बाद शंख-ध्वनि से उस खंडहर का अंग-प्रत्यंग मुखरित हो उठा। नवीन की समाधि भंग हुई। उसने उठकर मंदिर की ओर लक्ष्य कर प्रणाम किया। स्त्रियाँ अपना कार्य संपन्न कर मंदिर से बाहर आईं। उन लोगों ने इस बार नवीन को बैठे हुए देखा। नवीन ने देखा—उसकी ओर एक ही साथ कितनी स्त्रियाँ विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से देख रही हैं। उसने अपनी गर्दन झुका ली।

स्त्रियों के बीच आपस में काना-फूसी होने लगी। नवीन का उदास मुख-मंडल, उसके अस्त-व्यस्त लंबे केश, उसकी दयनीय आकृति अवश्य उन लोगों को प्रभावित किए विना न रही। स्त्रियाँ जाने-जाने को ठिठक-सी रहीं, बालिकाओं को कुछ जानने की उत्सुकता हुई—कुछ कौतूहल हुआ। उनमें से एक, जो आठ नौ वर्ष से अधिक की न होगी, बोल उठी—"बाबाजी, प्रसाद लेंगे?"

और सभी उसकी ओर देखने लगीं। नवीन के ओठों पर

स्पंदन हुआ। कई दिनों के बाद सुकुमार कंठ से कुछ सुनने का अभी उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह एक सरल हृदया बालिका की जिज्ञासा थी। नवीन भावुक और सहृदय होकर कठोर कैसे होता? उसने मुस्किराते हुए प्रत्युत्तर में कहा—"देवता का प्रसाद कैसे ग्रहण न करूँ, बहन!"

वह बालिका अपनी माँ से थाल लेकर आगे बढ़ी और नवीन के सामने आकर बोली—"लो बाबाजी! प्रसाद; पर दूँगी किसमें?

"किसमें दोगी बहन!"—वह मुस्किरा कर बोला—"लाओ, मैं अपनी अंजली में भर लूँ!"

वह बालिका कुछ क्षण तक रुकी रही, फिर आप ही बोल उठी—"नहीं, केले के पत्ते हैं, उन्हीं में से थोड़ा चीर कर तुम्हारे सामने रखती हूँ, उसी में प्रसाद दूंगी!"

बालिका ने वैसा ही किया। पत्ते में फल, मिठाइयाँ आदि डाल कर उसके सामने रखते हुए उसने कहा—"लो बाबाजी, प्रसाद पा लो!"

"अच्छा, प्रसाद पा लूंगा, धन्यवाद!"

बालिका ने एकबार उसकी ओर सहानुभूतिपूर्ण नेत्रों से देखा और वह पीछे की ओर मुड़ी, वह फिर अपने समाज में आकर बोल उठी—"बाबाजी! इतने से तुम्हारी भूख तो मिटेगी नहीं, और थोड़ा ले लो!"

नवीन की, उसकी सरल और वात्सल्यपूर्ण बातें सुन कर, आखें भर आईं। उसने अपने को संयत करते हुए कहा—"प्रसाद

तो सिर पर चढ़ाने की वस्तु है, बहन ! फिर तुमने इतना अधिक दे दिया है कि इसी से मैं पेट भर लूंगा, और की आवश्यकता नहीं ।"

नवीन की शिष्टतापूर्ण बातें सुन कर सभी का हृदय दयार्द्र हो उठा। उन स्त्रियों के बीच बड़ी उत्सुकता बढ़ी। 'बहन' संबोधन को पाकर उसके प्रति सभी का ध्यान आकर्षित हुआ। उनमें से बालिका की माँ ने अपनी बेटी से कहा—"कहो उनको घर चलने को, यहाँ उन्हें तकलीफ होगी।" बालिका ने अपनी माता का अनुरोध उसे कह सुनाया। पर, नवीन ने विनीत शब्दों में अपनी अस्वीकृति जनाई। बाध्य होकर सभी चलने को तैयार हुईं। बालिका ने प्रसाद के रूप में फल और मिठाइयाँ उनके और भेंट की। सभी हृदय पर एक बोझ लाद कर अपने घर की ओर चल पड़ीं। नवीन ने जब देखा कि, वे सब बहुत दूर निकल गई हैं, तब वह धीरे-धीरे प्रसाद को लेकर नदी किनारे आया और कई दिनों बाद अपनी क्षुधा-तृषा शांत की।

वह फिर बरगद के चबूतरे पर आसन मार कर बैठ गया।

रात कुछ अधिक नहीं हुई होगी कि, उसने देखा—उसके सामने एक सज्जन भोज्य-पदार्थ को लेकर खड़े हैं और दूसरे आदमी के हाथ लैंप और लाठी है।

आगंतुकों में से एक बोल उठा—"बाबाजी! मालकिन ने आप के पास कुछ खाने की चीजें भेजी हैं और थोड़ा दूध है, आप भोजन कर लें।"

नवीन को बड़ा आश्चर्य हुआ। ये ग्रामीण स्त्रियाँ कितनी दयामयी हैं ! इतना उन्हें ज्ञान है ! वह विस्मयाभिभूत होकर बोल उठा—"प्रसाद ही इतना पा लिया है कि, अब भोजन की आवश्यकता ही नहीं रह गई। कृपया लौटा कर ले जाइए। हाँ, दूध लिए लेता हूं।"

पर उन आगत सज्जन ने बड़ा अनुरोध किया। अंत में विवश होकर नवीन को कुछ भोजन करना ही पड़ा।

उन लोगों ने अपने साथ नवीन को लिवा चलने की बड़ी चेष्टा की, पर नवीन किसी तरह तैयार न हुआ। वे लोग चल पड़े। नवीन आज सुखपूर्वक वहीं मंदिर के सामने, उसी चबूतरे पर लेट गया।

नवीन का कार्य दूसरे दिन से प्रारंभ हुआ। रात को जो सज्जन आए थे, वह उस बालिका के पिता थे। वह जैसा ही सहृदय थे, वैसी ही उनकी पत्नी प्राणमयी थी। और उनकी एकमात्र पुत्री ? ठीक नाम के अनुरूप, सोने में सुगंध जैसी, मानो दूसरी कमला ही कमला ने रूप में अवतरित हुई हो।

नवीन के लिए प्रातः-संध्या उन्हीं के घर से भोजन आता। वह मंदिर के बगल में एक झोपड़ी डाल कर अपनी अविश्रांत गति से पुस्तक का प्रणयन किया करता और उससे छुट्टी पाकर कमला के बाल्य चापल्य देख-देख कर परमानंद लाभ करता।

नवीन को संसार से जैसी ही वितृष्णा हुई थी, वैसी ही कमला को पाकर उसे तृप्ति और शक्ति उपलब्ध हुई। उसने देखा—

उसका भविष्य आगे—दूर पर हंसता हुआ दीख रहा है। उसने प्रणयन वाली वस्तु का नाम 'भविष्य' ही रखा। वह एक दृश्य काव्य था।

—चौवालिस—

नवीन ने जिस कार्य को हाथ में लिया था, एक महीने में वह पूरा हो गया। अवश्य उसमें उस सुन्दर परिस्थिति का हाथ था जो उसे अनायास ही उपलब्ध हुई थी। कदाचित् इसी परिस्थिति के कारण अबतक वह अपने विचारों को साकार रूप देने से असमर्थ था। उसने भविष्य का चिंतन जिन-जिन पहलुओं से किया था, उसका चित्रित करना आज उसके लिए संभव हो सका। उसने 'भविष्य' को पूरा कर निश्चिंतता की सांस ली। उसे इस अनुष्ठान से ऐसा मानसिक परितोष मिला, मानो बावन को चाँद उपलब्ध हो गया हो।

बरसों की आकांक्षा फलवती हुई। जिसके लिए वह अधीर होकर सारी मोह-ममताओं को परित्याग कर अब तक खाक छानता रहा था, उसकी पूर्णाहुति पर उसे कितना आनंद हुआ होगा, उसकी कल्पना वही कर सकता है जिसे यह सुवर्ण-संयोग प्राप्त हुआ है। उस दिन उसने सारा बंधन ढीला कर दिया। अबतक वह कभी अपने आश्रित सज्जन परिवार के घर तक न पहुँच सका था, आज विना कुछ सूचना दिए, विना किसी हिचक के, वह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उनके द्वार-देश पर उपस्थित हुआ। उसके बढ़े हुए बाल, उसकी तीक्ष्ण और प्रभावपूर्ण आँखें अवश्य दर्शकों पर एक अमिट छाप डाल देतीं। यद्यपि बाहर से वह एक पागल-सा दीख पड़ता था—और यथार्थ में यदि ऐसा कोई समझ रहा था तो कुछ गलत न था—फिर भी उसकी प्रतिभापूर्ण आकृति सहृदयों को बरवस अपनी ओर खींच ही लेती।

उसके घर पर पहुंचते ही घरवालों को जो प्रसन्नता हुई, उसका मूल्य तो वे ही आँक सकते हैं। गाँव में वे ही एक ऐसे थे जिन्होंने उसे (नवीन को) पूरी तरह पहचान पाया था; यों तो टोले-महल्ले के कितने आदमी ऐसे पागल जीव को देखने के लिए टूट ही पड़े थे। कमला को भी मालूम हुआ कि, उसके काकाजी—एक समय जिसे वह बाबाजी कह कर पुकारती थी—आए हुए हैं। वह घर से तीर की तरह छूट आई। नवीन ने उसे अपनी ओर खींच कर गोद में लिया और अपने स्नेह-चुंबन से उसे विरक्त कर दिया। फिर वह घुलमिल कर बातें करने लगी—"कैसे आए काकाजी! तब तो नहीं

आए जब मैं तुम से निहोरा करते-करते थक गई। माँ ने भी कई बार कहला भेजा, पर तब भी नहीं आए। पिताजी तो कहते थे, वे नहीं आएँगे, क्योंकि मैं तुम्हें चिढ़ाया करती हूँ। हां काकाजी! मेरे चिढ़ाने से नहीं आते थे?" इस पर नवीन ने हँसकर कहा—"दुर पगली! मैं तुम से चिढ़ूँ?"

कमला के पिता निर्मल बाबू इन दोनों की बातें सुनकर बड़े हर्षित हुए और कमला से कहा—"काका को जलपान भी कराओगी, कमला! या यों ही बातों में भुलाए रखोगी? जाओ घर, कुछ तैयार करा कर लाओ!"

कमला घर जाने को जैसे ही उद्यत हुई, नवीन ने उसे पकड़ रखा और बोला—"तुम जानती हो कमला! मैं जलपान नहीं करता, फिर तुम क्यों तकलीफ उठाने जा रही हो?"

"नहीं, करोगे कैसे नहीं? तुम कभी आते भी तो नहीं थे, फिर आज आए कैसे? वैसे ही यह भी समझ लो कि, रोजाना जलपान नहीं करते तो आज ही कर लो!"

इस वार नवीन को हार खानी पड़ी। उसने हँसकर कहा—"अच्छा जाओ, जरूर करूंगा जलपान। पर, यह तो बताओ, क्या खिलाओगी अभी कमला?"

"जो खाओगे, वही कराऊँगी! लूची, हलवा, चाय—जो कहो काकाजी, वही लाऊँ! क्या तुम पसंद करते हो, काकाजी?"

"और तुम क्या पसंद करती हो?"

"मैं? मैं?……मैं तो गरम-गरम हलवा पसंद करती हूँ!"

"बस, तब तो ठीक है ! जाओ, और खूब ढेर-सा हलवा बनाकर लाओ ! अच्छा ?"

"हाँ, अच्छा !"—कमला खुशी-खुशी भीतर की ओर दौड़ी।

नवीन के आने से सारे परिवार में आनंद छा गया। नवीन जैसे प्रिय अतिथि को पाकर निर्मल बाबू, उनकी पत्नी और कमला सब-के-सब बड़े प्रसन्न हुए।

उस दिन रात को नवीन वहीं रह गया। निर्मल बाबू और नवीन के बीच बड़ी रात तक इधर-उधर की बातें होती रहीं।

नवीन ने 'भविष्य' की पांडुलिपि निर्मल बाबू को पढ़ सुनाई। अब तक निर्मल बाबू यही जानते थे कि, ये मनबहलाव के लिए कुछ-न-कुछ लिख रहे हैं, पर आज उसकी कृति देख कर उन्हें पता चला कि यह एक उद्भट लेखक और कवि हैं। 'भविष्य' के पात्र, बोध होते थे, काल्पनिक नहीं—इसी संसार के जीते-जागते जीव हैं। नवीन ने 'भविष्य' के चरित्र-चित्रण में कमाल का काम किया था। निर्मल बाबू तो भावावेश में कई बार रो पड़े। कैसा सजीव चित्रण था ! सारी पांडुलिपि सुन भी न सके कि वे बोल उठे—"भाई, और न सुनाओ। मैं अब तक तुम्हें पहचान न पाया था। पर, नहीं, तुम मनुष्य नहीं, देवता हो ! आह ! क्या अच्छा हो, यदि इसे तुम स्टेज करने की अनुमति दो। दोगे विमल ?"

नवीन ने यहाँ, उन लोगों के बीच, अपना नाम विमल ही घोषित किया था।

"इसमें ऐसी कुछ नवीनता तो है नहीं, भाई साहब ! जो

दर्शकों पर प्रभाव डाल सके। नाटकवाले ऐसी चीजों को पसंद क्यों करेंगे ? और वहां दर्शक ही क्या करने आएँगे ? रोना कौन पसंद करेगा ?"

"करेगा और खूब करेगा। जो सहृदय हैं, भावुक हैं, जिन्हें संसार का कुछ ज्ञान है, वे इसे पसंद करेंगे। तुम अनुमति तो दो पहले, प्रवंध मैं करलूँगा। मेरे एक अभिन्न मित्रों में हैं, उन्हींका अभिनव नाट्य-मंदिर कलकत्ते में है, शायद तुमने उसका नाम सुना होगा। बड़े सहृदय हैं वे। अवश्य इस कृति को पाकर उन्हें प्रसन्नता होगी और नाट्य-मंदिर का गौरव-वर्द्धन होगा। तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी, साथ ही सुंदर पारिश्रमिक भी मिलेगा। मैं तो अब तुम्हें जनता के सामने लाए विना दम नहीं ले सकता। एक समय मेरे लिए वह था, जब मैं 'बीसवीं सदी' पत्र में 'नवीन' नामक लेखक की कृति पर न्योछावर था, बहुत दिनों के बाद आज मुझे उन्हीं जैसी रचना का आस्वाद मिला है। क्या तुमने 'नवीन' का नाम सुना है कभी, विमल ?"

नवीन के आनंद का क्या कहना ? उसे आज पता चला, नवीन ने निर्मल बाबू के हृदय में आज नहीं—वर्षों से स्थान बना रखा है। पर, वह कैसे कह दे कि मैं विमल नहीं—नवीन हूं ! उसे और कुछ जानने की उत्कंठा हो आई, इसलिए वह छूटते हुए बोल उठा—"मैं तो दिहाती आदमी ठहरा भाईजी ! मासिक पत्रों के पढ़ने का सौभाग्य कहाँ ? फिर मैं 'नवीन' को जानूं तो कैसे ?"

निर्मल बाबू हँस पड़े। बोले—"वाह! तुम भी एक ही जीव हो; उसका नाम नहीं जानते? कलकत्ता कोई दूर तो है नहीं यहां से; वहीं का वह रहने वाला है और उसका एक आश्रम है—सुदंर आश्रम; वह उसी का संस्थापक और व्यवस्थापक है। तुम उसे नहीं जानते?"

नवीन को संस्थापक और व्यवस्थापक का नाम सुन कर आनंद के बदले बड़ा विषाद हुआ। निर्मल बाबू जिस आश्रम को सुंदर आश्रम समझ रहे थे, उसके अंतराल में कैसी-कैसी बातें छिपी पड़ी हैं, वह नवीन के सिवा और कौन जान सकता है? नवीन को अभी यह भी अनुभव हुआ कि, जनता कितनी उदार है! जिसको एक बार वह उत्तम समझ लेती है, उसे बिना किसी मीनमेष के उत्तम ही समझती चलती है। और यही कारण है कि स्वार्थी, यशलोलुप उसकी सरलता का बुरी तरह दुरुपयोग करते हैं। वह अपने विचार से आप ही कुंठित हो उठा। उसका मुख-मंडल उदास हो गया। उसने एक बार निर्मल बाबू की ओर देखा। उसे हुआ—शायद ये मुझे ताड़ न जायँ! इसलिए वह हड़बड़ा कर बोल उठा—"ओह! उस आश्रम की बात?—हाँ, हाँ, उसे कौन नहीं जानता? मैं भी जानता हूँ, पर मुझे नहीं मालूम—नवीन ही उसका संस्थापक और व्यवस्थापक है। खैर, मुझे कुछ इतराज नहीं, यदि आप इसे स्टेज करवा सकें। मैं अपनी ओर से अनुमति दिए देता हूं।"

नवीन ने विषय को वहीं समाप्त करने के लिए अपने नाटक

को खेलने की अनुमति तक दे डाली। निर्मल बाबू जैसे बंधु के लिए और क्या कहा जाय ? उन्होंने दूसरे ही दिन अभिनव नाट्य-मंदिर के संस्थापक—उसके अभिन्न प्रेमनारायण को भेंट कर जाने को पत्र लिखा। इधर नवीन से कहा—"इसकी एक प्रति तुम अलग तैयार करके रख छोड़ो।"

नवीन अपनी कुटिया में आने को छटपटा-सा उठा। उसे हुआ—कदाचित् निर्मल बाबू उसे लख न जायँ कि यही नवीन है, या मेरे मुंह से कहीं ऐसा न निकल जाय कि मैं पकड़ा जाऊँ। साथ ही निर्मल बाबू से नवीन की दिनचर्या, उसका सेवा-भाव, उसका प्रेम-सम्भाषण—यहाँ तक कि, उसकी पत्नी मणि का उससे उदास होकर बाहर निकल जाना—तक सुन कर नवीन को हो रहा था, कहीं वह भावावेश में आकर ऐसा स्वयं न स्वीकार कर ले कि वह अभागा मैं ही हूँ। इसलिए वह निर्मल बाबू से बोला—"मैं आज अपनी कुटी पर जाता हूं, आवश्यकता पड़ने पर मैं स्वयं आऊँगा, पर आप जैसे ही याद करेंगे, मैं आ मिलूँगा।" पर, निर्मल बाबू इतनी जल्द छोड़ने वाले न थे। बोले—"आज तो तुम्हें रहना ही होगा, विमल ! कल से अपना डेरा-डंडा संभालना !" आखिर उसे रह जाना पड़ा।

दिहात की बात थी। वहाँ दो बजे डाक आती थी। उस दिन डाक से उसको 'स्टेट्समैन' मिला। बहुत दिनों के बाद नवीन को अखबार देखने का अवसर मिला। उसने कवर फाड़ कर पन्ने उलटे। मोटे अक्षरों में देखा—'ललित नामक डाकू सदल-बल

पकड़ा गया। सरकार इस बार उसका अंतिम निर्णय करेगी।'

नवीन के हाथ से पेपर छूट गया। ओह! उसका ललित दादा! आज हिरासत में होगा? उसका पकड़ा जाना आश्चर्य-जनक तो था नहीं, पर उसके दल-के-दल पकड़े गए—यही चिंत-नीय विषय था। ऐसी हालत में इस बार उसके छूटने की आशा ही क्या? नवीन ने एक सर्द आह ली, पर फुर्त्ती से कागज उठा कर, उनकी आँखें बचा बिछावन पर लेट गया। उसे साहस न हुआ कि और समाचार पढ़े जाएँ। कागज की ओट देकर गंभी-रता पूर्वक ललित के कामों की आलोचना करने लगा।

किसी तरह उस दिन रह कर निर्मल बाबू के परिवार को वह आनंदित करता रहा, पर उन सज्जनों को क्या पता था कि, उन्हें आनंद कितने गाढ़े मूल्य में चुकाना पड़ा है। यों तो ललित के लिए पकड़ा जाना कोई विशेष बात न थी, पर इससे न जाने क्यों नवीन के हृदय पर बहुत गहरी चोट पड़ी। दूसरे दिन खूब तड़के वह अपनी कुटी में आया। मन बहलाने की चेष्टा की, पर हो रहा था—जैसे वह फिर ललित को कभी देख नहीं सकेगा।

दूसरे ही दिन प्रेमनारायणजी मोटर पर आ धमके। निर्मल बाबू ने नवीन के बारे में कह सुनाया और उसे बुलाने के लिए आदमी भेजने लगे। पर, प्रेमनारायणजी का विचार हुआ—क्यों न हमलोग वहीं चलकर उन्हें लिवा लाएँ। आखिर, यही निश्चित हुआ।

प्रेमनारायण और निर्मल बाबू ने आकर देखा—नवीन (विमल) अचेत दशा में सोया पड़ा है। छोटी सी उदास कुटिया, न संबल

और न कुछ सामान ! प्रेमनारायण को हुआ—'भविष्य' का रचयिता ऐसा ही आदमी हो सकता है ? उन लोगों ने उसे उठाया नहीं, उसी तरह सोये हीं रहने दिया। उसके बगल में 'भविष्य' की पांडुलिपि थी, निर्मल बाबू ने वह उठा ली और प्रेमनारायण को संकेत कर कहा--"चलो, चबूतरे पर बैठकर तबतक इसे देखा जाय।"

प्रेमनारायण ने बड़ी उत्सुकता से उनका समर्थन किया। दोनों बैठ गए। प्रेमनारायण ज्यों-ज्यों भविष्य के पन्ने उलटते, त्यों-त्यों सोए हुए नवीन की ओर उनकी दृष्टि दौड़ पड़ती। यही है उसका लेखक? ऐसा जोरदार लिखने वाला और इस वेश में ? और उसका भविष्य ? कुछ ही पन्नों में प्रेमनारायण जी ने अपना अभिमत दे दिया—"भविष्य खेलूंगा और बड़ी शान से खेलूंगा। बस, आगामी विजयादशमी में ही।" प्रेमनारायण को पहली दृष्टि में नवीन को देख कर जो वितृष्णा हुई थी, वह तुरत ही मिट गई। अब उनके लिए असंभव हो चला कि, विमल (नवीन) को बिना उठाए वह चैन से रह सकें। आखिर ऐसा किया गया। विमल उठा, सामने देखा—निर्मल बाबू और उनके बंधु को। उसने मुस्किराते हुए अभिवादन किया। निर्मल बाबू ने अपने मित्र से परिचय कराया। सभी घुलमिल कर स्नेह-संभाषण करने लगे।

नवीन ने पांडुलिपि दूसरी तैयार न की, जैसा लिखा था, वैसा ही उसे प्रेमनारायणजी के हवाले किया। वह विजयादशमी का निमंत्रण देकर 'भविष्य' के साथ कलकत्ता वापस आए।

—पैंतालिस—

'भविष्य' को जिस तत्परता और स्नेह से नवीन ने प्रेम-नारायण को समर्पित किया, उतना ही उसे उनका निमंत्रण ग्रहण कर खेद भी हुआ। इधर निर्मल बाबू नित्यप्रति यह चर्चा करने लगे कि, प्रेमनारायण जी का अभिनव नाट्य-मंदिर बड़ी खूबियों के साथ भविष्य को अभिनीत करेगा। उस दिन हमलोगों को कितनी प्रसन्नता होगी और खास कर विमल (नवीन) को। और विमल से वह कह बैठते—'क्यों विमल ! उस दिन तुम हम लोगों को क्या भेंट दोगे ?'

विमल न जाने क्यों इन बातों को सुन-सुन कर विषाद के गर्त्त में ही गिरता जाता। क्यों उसे इतना विषाद हो रहा था—यह स्वयं विमल भी नहीं कह सकता। फिर भी अपने बंधु को प्रसन्न करना वह जानता था। इसलिए वह प्रत्युत्तर में एक हल्की सी मुस्किराहट के साथ कह बैठता—'इसका सारा श्रेय तो आपको ही है, भाई जी, मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ। जानते हैं, यदि मेरी कमला मेरी आँखों के सामने न होती तो कभी संभव नहीं था कि मैं अपने 'भविष्य'-निर्माण में सफल हो सकता। भविष्य का बैक ग्राउंड जितना ही करुण है, उसका अंत उतना ही प्रेममय है। सो क्यों ? बस, उसका एकमात्र कारण मेरी कमला है। और भेंट देने की बात कहते हैं ? आपको भेंट दे ही क्या सकता हूँ ? संसार का एक नगण्य जीव और दे ही क्या सकता है अपने आपको छोड़ कर ? और उसे वह देने को सदैव प्रस्तुत है।'

निर्मल बाबू विमल के इस तरह की स्नेह-सौजन्यमयी बातों को सुन कर विमुग्ध हुए बिना नहीं रहते। वह भावावेश में यहाँ तक कह बैठते—'यदि तुम्हारी कमला तुम्हें इतनी प्यारी है, विमल ! तो अपनालो उसे, उसे तुम अपने अनुरूप ही बना लो।' उस समय विमल के आनंद की कोई सीमा नहीं रहती। वह प्रेम से विह्वल हो जाता, उसकी आँखों से प्रेमाश्रु निकल पड़ते और यदि कमला वहां आ पहुँचती तो अपनी गोद में उठा कर, अगणित चुंबनों से उसे विरक्त किए बिना वह दम नहीं लेता। उस समय वह अपने आपको भूल जाता। उसके दृष्टि-पट

पर कमला की सौम्य-मूर्त्ति साकार रूप धारण कर लेती। इसी तरह से विमल के दिन कट जाते।

पर हाय रे विमल! विजयादशमी को केवल दो ही दिन शेष रह गए। निर्मल बाबू, उनकी पत्नी और कमला—सब-के-सब प्रेमनारायण का निमंत्रण पाकर—विशेषतः विमल का 'भविष्य' देखने के लिए—बड़े उत्सुक हो उठे। नये-नये कपड़े बने। निर्मल बाबू ने कई जोड़े कपड़े विमल के लिए बनवाए। सारी तैयारियां होने लगीं। कपड़े और सामान ट्रंक और सूटकेस में रखे गए। यात्रा का दिन भी नियत किया गया। पर यह क्या? विमल लापता कहाँ हो गया? वह कमला को छोड़ कर कैसे भाग निकला? कहाँ भाग निकला? निर्मल बाबू की पत्नी दुखित होकर बोली—"विमल कितना सूधा, कितना सरल है! ऐसा आदमी न देखा न सुना। अवश्य उनके जीवन में कोई गहरी चोट लगी है जिसे वह चेष्टा करके भी कभी-कभी छिपने में समर्थ नहीं होते। जाकर देखिए तो सही—कहीं कुटिया में तो नहीं पड़े हैं! और तू भी जा कमला, अपने काका को लिवा ला। कहना, मां तुम्हें याद करती हैं।"

निर्मल बाबू कमला के साथ कुटी की ओर चल पड़े। देखा—विमल गहरी नींद में सुनसान सोया पड़ा है। कमला से न रहा गया। वह उसके अंगों से चिमट कर जोर-जोर से पुकारने लगी—"काका! काका!!"

विमल ने आँखें खोलीं, उसने कमला को देखा, वह विहँस

पड़ा, बोला—"कैसे आई, कमला! कैसे आई ?"

कमला बोली—"बड़े वैसे हो काकाजी! तुम भाग निकले! चलो, घर चलो! मां तुम्हारी आशा में बैठी होंगी। पिताजी, खड़े क्या देख रहे हो ? कहो न काका को, घर चलने !"

नवीन ने चौंक कर देखा—उसके सिरहाने निर्मल बाबू खड़े हैं। वह उठ बैठा, बोला—"कब से खड़े हैं, भाई जी !"

"चलो-चलो, विमल! तुम चुपचाप यहाँ चले आए, सभी अंदेशा में पड़े हैं। उठो, चलो !"

विमल बिना कुछ उत्तर दिए ही उठ खड़ा हुआ। उसके पाँव आगे की ओर बढ़े, पर उसे हो रहा था, जैसे कुटिया की ओर कोई उसका हृदय काढ़े लिए जा रहा है। वह रह-रह कर अपनी कुटिया की ओर देखता जाता। अवश्य कमला उसके साथ थी, यही एक प्रलोभन था जिससे विवश होकर वह तीर की तरह गाँव की ओर बढ़ा चला जा रहा था। पर, रह-रह कर कुटिया की ओर उनका ताकना कमला ताड़ गई और वह स्नेह के स्वर में बोली—"आज उदास होकर कुटिया की ओर क्यों ताकते हो, काका! वहाँ ऐसी कौन-सी चीज है जिसे तुम ले नहीं सके हो ?"

इस पर विमल हँस देता और उसके कानों में कहता—"हाँ, छोड़े जा रहा हूं कमला! तुम्हारे लिए······छोड़े जा रहा हूँ !"

कमला नवीन को पकड़ कर मां के सामने ले आई। नवीन कई बार कमला की मां से बातें कर चुका था। वह सहृदया गृहिणी नवीन को छोटा भाई जैसा समझ रही थी। उससे न कोई

छिपाव था और न दुराव। उसे अपने सामने आते देख कर गृहिणी हँस कर बोल उठी—"कमला, आखिर अपने काका को ले ही आई—भगोड़ काका को!"

नवीन भी हँस पड़ा। बोला—"भागा तो नहीं था, दीदी! फिर कमला को छोड़ कर मैं भाग ही कैसे सकता था?"

इसी समय निर्मल बाबू कह गए—"जल्द तैयार हो जाओ। समय नहीं है, संभव है, यह ट्रेन भी हमलोग नहीं पा सकें।"

नवीन पर मानो बज्र गिर पड़ा। वह तैयार न था कि, वह अपने 'भविष्य' का साकार रूप अपनी आँखों देखे। उसमें उसका विषाद, उसकी घृणा, उसकी उपेक्षा, उसकी करुणा, उसका दारिद्र्य—सब कुछ निहित था, यद्यपि सभी को दूर कर उसके लिए सौभाग्य-सूर्य की सुनहरी किरणें भी उसमें निहित थीं तथापि न जाने क्यों वह उसे देखने को जरा भी उत्सुक न था। वह बोल पड़ा—"दीदी! तुमलोग जाओ, मैं यहाँ घर की निगरानी करूँगा।"

"निगरानी?"—उसकी दीदी हँस पड़ी—"वाह, क्या कहने? वर जाने को तैयार नहीं, बाराती जाने को ऊधम मचा रहे हैं!"

इसी समय कमला आकर बोली—"तो क्या तुम न जाओगे, काका! सो कैसे होगा? मैं नहीं मानूंगी। क्या तुम मेरी खातिर इतना नहीं कर सकते, काका!"

इस बार नवीन अपने को जब्त न रख सका। बोला—"तो मैं जरूर चलूँगा दीदी! तैयार होओ! और कमला, चलो बाहर!"

बात-की-बात में सभी तैयार होकर गाड़ी पर आ बैठे।

कलकत्ते में आकर नवीन ने देखा—काफी चहल-पहल है। अभिनव नाट्य-मंदिर की ओर से 'भविष्य' के बड़े-बड़े पोस्टर, स्थान-स्थान पर दीवाल पर चिपकाए गए हैं। कई दिनों से 'भविष्य' अभिनीत हो रहा है। दर्शकों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है और आज तो वह विशेष समारोह के साथ दिखलाया जायगा। नवीन की आकृति पर एक हल्की-सी छाया खिंच आई। उसने कमला की ओर दृष्टि फेरी। बोध हुआ—वह उसी की ओर देख रही है। वह आप-ही-आप हँस पड़ा, बोला—"क्या देख रही है, कमला!"

सभी प्रेमनारायण जी की कोठी में उतरे। प्रेमनारायण जी विमल को लेने के लिए दरवाजे पर आए। वह उससे हाथ मिला कर कृतज्ञता पूर्ण शब्दों में बोले—"नाट्य-मंदिर का गौरव-वर्द्धन जितना अकेले तुमसे हुआ, विमल! उतना अब तक हमलोग सैकड़ों आदमी न कर पाए थे। धन्यवाद है भाई निर्मल को, जिसने आप-जैसा मित्र नाट्य-मंदिर को भेंट किया।" पर विमल को इसके लिए जितना प्रसन्न होना चाहिए, उसका कुछ भी चिह्न उन लोगों ने उसमें न देखा। हाँ, यह अवश्य अनुभव किया—विमल कितना संकोची, कितना लजालू है।

सभी ऊपर आए। समय पर स्नान-भोजन हुआ। और सभी निश्चित समय की प्रतीक्षा करने लगे। पर विमल? उसका हाल नहीं कहना ही अच्छा होगा।

संध्या समय प्रेमनारायण की स्पेशल मोटर अपने विशिष्ट

मित्रों के लिए तैयार हुई। प्रेमनारायण जी सभी को लेकर मोटर पर आकर बैठे। विमल की गोद में कमला थी। प्रेमनारायण जी मोटर पर बैठते ही बोल उठे—"विमल जी, आज मैं दर्शकों के सामने आपको हाजिर करूँगा। उन लोगों को लेखक का नाम जानने की बड़ी उत्सुकता हो उठी है, मैं आपको सभी के सामने उपस्थित कर यह कहूँगा कि हमारे यहां युवकों में ऐसे भी हैं जो 'भविष्य' का निर्माण कर सकते हैं। क्यों भाई निर्मल, ठीक है न ?"

निर्मल बाबू ने अपनी सम्मति दी, पर विमल नाहीं-नाहीं ही करते रह गए। मोटर गंतव्य पथ पर चल पड़ी।

विमल ने नाट्य-मंदिर में आकर देखा—दर्शकों की अपार भीड़ उमड़ी पड़ी है, तिल धरने तक की जगह नहीं। विमल ने अनुमान तक न किया था कि, 'भविष्य' के दर्शक इस रूप में दीख पड़ेंगे। उसका हृदय मानो बैठा जा रहा था—उसे हो रहा था—मानो भविष्य के रूप में वह अपनी आत्मा का साकार रूप देखने को वहाँ उपस्थित हुआ है। उसे मानो अपनी शक्ति क्षीण-सी दीख पड़ी, मानो शरीर का बल—उसकी जीवनी-शक्ति उससे बाहर हो रही है। प्रेमनारायण जी ने अपने मित्र-परिवार को अलग सीट पर बैठाया और उनसे आज्ञा लेकर नेपथ्य की ओर वह चले गए।

दर्शक-मंडली में होहल्ला मचा था। दल-के-दल दर्शक भीतर घुसने का असफल प्रयास कर रहे थे, मगर भीतर में जगह कहाँ जो उन्हें दी जा सके ? निश्चित समय पर घंटी बजी और बाजों

के साथ पर्दा उठा। सूत्रधार नटी के साथ दर्शकों पर पुष्प-वृष्टि कर चले गए। दूसरा पर्दा उठा। नायक एक दीन-दुखी वेश में अवतरित हुआ। नायिका आई—लकदक में! इसी प्रकार एक के बाद दूसरे पात्र-पात्री आए और अपना-अपना पार्ट अदा कर चलते हुए। विमल उस समय, बोध होता था, जैसे अपने आप में था ही नहीं। बीच-बीच में निर्मल बाबू विमल को संबोधित कर कह उठते—"वाह! वाह!! क्या कहना! कमाल है! विमल! विमल! देखो जरा! ऊँघ रहे हो क्या?"

और दर्शकों में वहाँ ऐसा भी था, जिसे हो रहा था—मानो उसी का हू-बहू चित्र उतार कर दर्शकों के सामने रखा जा रहा है। कौन है वह चितेरा? इतना भाव-साम्य कल्पना की वस्तु नहीं हो सकता। वह तो कोई भुक्तभोगी ही हो सकता है। उसका हाहाकार फूट उठा है। उसकी वेदनाएँ साकार रूप में थिरक उठी हैं। उफ़्, कितना अद्भुत! कितना उज्वल! कितना तीव्र प्रकाश!!!………तो वह कौन है?………वही तो नहीं है?……नहीं, वह नहीं हो सकता. उसकी कलम में ऐसी कहाँ ताकत!………धत्,………किसकी याद हो रही है? क्यों उसकी स्मृति सजग हो उठी है? छिः!

और क्षण भर के लिए उसकी आँखें ढक जाती हैं।

भीड़ के कारण उस दिन 'इंटरवल' भी नहीं दिया गया। दर्शक दम रोक कर अंतिम दृश्य को देखने के लिए चंचल हो उठे।

अंतिम दृश्य दिखलाए जाने के पहले प्रेमनारायण जी ने 'भविष्य' का छोटा सा इतिहास कह सुनाया। आज के दर्शक उस भाग्यशाली लेखक को जानने के लिए उत्कंठित हुए। सभी के कंठ से बस एक ही पुकार—'लेखक का नाम बतलाने की कृपा करें।'

प्रेमनारायण जी ने विनीत शब्दों में निवेदन किया—"न केवल लेखक का नाम ही कहूंगा, वरन उनसे मैं अनुरोध करूँगा कि, नाटक की समाप्ति पर वे आपलोगों को अपने दर्शनों से विमुग्ध और आनंदित करें।"

दर्शकों की हर्ष-ध्वनि से नाट्य-स्थान गूँज उठा। प्रेमनारायण जी सभी को आश्वासन देकर चले गए। अंतिम दृश्य दिखलाया जाने लगा।

सफलता पूर्वक 'भविष्य' समाप्त हुआ।

दर्शकों में एक बार हल्ला पड़ा। सभी लेखक को देखने के लिए व्यग्र हो उठे। प्रेमनारायण जी आए और स्टेज से उतर कर उस ओर बढ़े, जहाँ विमल अपने साथियों के बीच बैठे थे और उसका हाथ पकड़ कर स्टेज की ओर बढ़े। दर्शकों का कौतूहल बढ़ उठा। विमल के परिचित व्यक्ति—जो वहाँ दर्शकों के रूप में आ सके थे, सोचने लगे—कहीं वह तो नहीं है?····हाँ, वही तो है! प्रेमनारायण जी ने उन्हें स्टेज पर खड़ा कर, उनका परिचय देते हुए कहा—"जिन्हें जानने के लिए आपलोग उत्सुक हो रहे हैं—वही आप हैं! यथार्थ नाम मैं भी नहीं जानता; पर, 'भविष्य' की पांडु-लिपि में समाप्ति के स्थान पर 'नवीन' लेखक का नाम लिखा

हुआ है। मेरा खयाल है, कदाचित् आपने अपना नाम गुप्त रखने के लिए ही 'विमल' नाम रख छोड़ा हो!"

प्रेमनारायण रंगमंच से नीचे उतरे।

दर्शकों के आनंद का क्या कहना। लगा, जैसे आनंद का अपार पारावार उमड़ पड़ा हो। 'साधु' 'साधु' की हर्ष-ध्वनि से नाट्य-मंदिर का कोना-कोना मुखरित हो उठा। चारो ओर से उपहार की वस्तुएँ बरस पड़ीं, रंगमंच उस गौरव-भार से जग-मगा उठा। नवीन ने जिस बात की कभी कल्पना तक न की थी, आज अपने सामने अपनी आदर-संवर्द्धना के ऐसे अभिनव समारोह को पाकर वह हतचेत-सा हो उठा। वह एक ही साथ इतनी प्रसन्नता को कहाँ स्थान दे? उस जनम के कंगाल की झोली में इतना स्थान है ही कहाँ? जीवन-भर असफलताओं से युद्ध करने वाला व्यक्ति वह, आज वह सफलता का इतना बड़ा वरदान पाकर कैसे विश्वास करे अपने आप पर? वह दोनों हाथ जोड़े, सिर झुकाए खड़ा था। उसके ओठ फड़क रहे थे, वह कुछ बोलना चाहता था; पर आनंदातिरेक से, उससे कुछ बोला न गया। हाँ, उसकी समुज्वल आँखों में कृतज्ञता के आंसू उमड़ पड़े थे!

मगर, यह क्या? इसी समय कौन उद्भ्रान्त-सी एक रमणी भीड़ फाड़ती हुई रंगमंच पर फाँदना चाहती है? कौन है वह? इतनी अस्त-व्यस्त, न कपड़ों का ठिकाना, न कुछ पर्दा! दर्शकों की दृष्टि उस ओर आकृष्ट हुई। सभी अपनी-अपनी कल्पनाओं के बीच से उसको परखने में लगे। वह डरी नहीं, न हिचकिचाई

और न कुछ लज्जित ही हुई। वह अत्यधिक भावावेश में इतनी दूर निकल आई थी कि जहाँ से नवीन की दिव्य मूर्त्ति के सिवा, संसार उससे अलग जा पड़ा था। वह रंगमंच पर चढ़ी और पागल जैसी धड़ाम से नवीन के चरणों पर लोट गयी।

और नवीन ? उसे होश तक न था कि, वहाँ क्या होने जा रहा है। वह काफी 'नरवस' हो उठा, उसके पैर काफी थरथरा रहे थे, वे स्थिर न रह सके। वह नीचे की ओर झुका और लड़खड़ा कर उस रमणी को अपने चरणों से उठाने की चेष्टा की। पर वह खुद संभल न सका; वह नीचे गिर पड़ा; मगर गिरते ही जैसे वह नारी-स्पर्श पाकर होश में आया। उसकी झँपी हुई पलकें खुलीं और अपने पैरों पर पड़ी उस नारी को उठाने के लिए उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया। दर्शक विमुग्ध होकर क्या देख रहे हैं ? कौन है वह नारी? आज वह रहस्यमयी होकर कौन-सा कौतुक कर रही है ? मगर यह क्या ? नवीन ने एक बार उसकी ओर देखा, उसकी आँखें, क्षणमात्र में ही, विहँस पड़ीं; और ओठों पर एक सहज-सरल मधुरिमा खेल गई और उसी मधुरिमा के बीच उसके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—"कौन ? कौन ? मणि ?...उठो, चलो !"

और देखने वालों ने देखा—नवीन मणि का हाथ पकड़े खड़ा हुआ। मणि के मुख पर संकोचसने विजयोल्लास की स्वर्णिम अरुणिमा जगमगा रही है और नवीन के ओठों पर एक सहज सरल मुस्कान !

—बस—

विज्ञप्ति

क्या आपने मंदिर की प्रकाशित पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं ? यदि नहीं, तो आप इन सब पुस्तकों को एक बार देख जाएँ। आपकी मानसिक क्षुधा की तृप्ति होगी और आपके ज्ञान-कोष की वृद्धि। आप अपना आर्डर तुरत भेजें। स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य में पुस्तकें मिलने की सुविधा प्राप्त है।

(१) समाज की वेदी पर (पत्र-उपन्यास)—ले० श्री अनूप साहित्य-रत्न। इतना सजीव पत्र-उपन्यास हिंदी-साहित्य में बहुत कम ही मिलेगा। देखिये—इसके विषय में प्रतापी 'प्रताप' क्या कहता है—'हिंदी में पत्रात्मक उपन्यास की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। यह पुस्तक उसी ढंग के उपन्यासों में है ×× इस समय हिंदी में इसीतरह के युगांतरकारी उपन्यासों की आवश्यकता है। ×× तरुण लेखक ने समाज के अंतस्तल में एक नवीन किंतु भव्य भाव के बैठाने का प्रयत्न किया है।" तीसरा संस्करण। मूल्य १।)

(२) हास्य-सरोवर—(बीस हास्य रसात्मक कहानियाँ)—ले०—हिंदी के यशस्वी समालोचक पं० अवध उपाध्याय। हास्यरस की इतनी सुंदर कहानियाँ दूसरी जगह बहुत कम पढ़ने को मिलेंगी। 'माधुरी' की राय में—"हास्य रसात्मक कहानियों में उपाध्याय जीने अच्छी सफलता पाई है। कुछ कहानियाँ तो सचमुच बड़ी अच्छी उतरी हैं।" दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा कीजिए। मूल्य ॥=)

(३) साकी—(उपन्यास) ले०-श्री अनूप साहित्यरत्न। 'गंगा' कहती

है—"साक़ी अंगूरी शराब का भरा प्याला है, जिसके हरएक कतरे में दिल और दिमाग को मुअत्तर करने की अजीव ताकत है। ×× चरित्र-चित्रण में सजीवता है, सादगी है। ×× अनूप जी ने इसे जो लगा कर लिखा है और उस समय लिखा है, जब उनके हृदय में अगाध करुणा, अनंत पीड़ा और अनगिनत ममता एक साथ ही नृत्य कर रहे थे।" दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा कीजिए—मूल्य १)

(४) वियोग—(गद्य काव्य) ले०—श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' एम० ए०। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर अनुभूति के रूप में लेखक के जीवन की सुकुमार विभूति बिखरी हुई है। पढ़ते जाइए और स्थान-स्थान पर अगाध करुणा, अनंत उच्छवास, अविच्छिन्न भाव-प्रवाह में आप तल्लीन हो जाएँगे। मासिक 'विश्वमित्र' ने इसके लेखक के सात्विक भावों तथा मँजी हुई भाषाशैली की बड़ी-प्रशंसा की है। दूसरा संस्करण। मूल्य ॥।०)

(५) सुहाग—(काव्य) ले० 'बीसवीं-सदी'-संपादक श्रीमाहेश्वरी सिंह 'महेश' एम० ए०। इसके भावुक और सहृदय कवि ने सात्विक श्रृंगार और करुणा को एक साथ समन्वय कर इसे इतनी रसवती कर दिया है कि कहीं कहीं तो ये कविताएँ अंतस्तल को गुदगुदाए बिना नहीं छोड़तीं। और वही कवि का साफल्य है। इन सरस रचनाओं का आस्वादन कर आप हमारे विचार से पूर्ण सहमत होंगे। परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण। मूल्य ॥), ॥=)

(६) मणिमाला—(गद्य काव्य) ले० पं० नोखेलाल शर्मा, बी० ए० साहित्योपाध्याय। पृष्ठ-पृष्ठ पर मनमोहक किंतु सात्विक भावावली, सजीव अनुभूत कल्पना, सौंदर्यमय, शिवमय दार्शनिक विवेचन। मूल्य ॥।)

(७) रूप-रेखा—(पत्रात्मक उपन्यास) ले० श्री अनूप साहित्यरत्न। कथानक में सौंदर्य, चरित-चित्रण प्राणमय, अनोखे-अछूते भावोत्कर्ष, भाषा

में सादगी किंतु मस्तानापन । पढ़ते जाइये—जी न अघायगा, अंत में आप बेचैनी का अनुभव करेंगे । ऐसी है यह रूप-रेखा । दूसरा संस्करण मूल्य १)

(८) काव्य में अभिव्यंजनावाद—(समीक्षा-शास्त्र) ले०—लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान तथा तत्त्वदर्शी समीक्षक श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' एम० ए० । इसके द्वारा आप आधुनिक युग की काव्य-कला के वास्तविक स्वरूप का स्पष्ट दर्शन कर सकते हैं । पुस्तक के विषय जितने गंभीर हैं इसकी भाषा उतनी ही सुलझी हुई, स्वस्थ और सुंदर है । प्रसंगानुकूल उत्कृष्ट कविताओं के जो उद्धरण इसमें दिखाए गए हैं, उसकी विश्लेषणात्मक व्याख्या पढ़ कर आप फड़क उठेंगे, मुग्ध हो जाएँगे । अध्ययन एवं मनन की अपूर्व सामग्रियों से भरी हुई इस अनुपम मौलिक पुस्तक में अपने सहृदय पाठक के मानस-क्षितिज को विस्तृत करने की अपूर्व क्षमता है । मूल्य २॥)

(९) द्रुम-दल (काव्य) ले०—पं० यमुनाप्रसाद चौधरी 'नीरज' बी० ए० बी० एल० । इस सुंदर द्रुम-दल पर पावस तो निसार है ही, स्वयं जाह्नवी का स्पर्श भी इसे प्राप्त है । इसमें मयंक की सुखद ज्योत्स्ना है, सनसन करता बहता समीर है और दर्द भरे स्वर में पी-पी करने वाला पपीहा भी है । कवि-हृदय जिन जिन वस्तुओं को सदा साथ रखता आया है वे सभी आपकी इसी कृति में विद्यमान हैं । मूल्य केवल ॥।)

(१०) सविता—(उपन्यास) ले० श्री अनूप साहित्यरत्न । इसमें उस प्राणमयी पतिता का जीवन-चित्र अंकित है जिसके प्रति हमारा समाज अत्यंत उग्र है । मगर आप इसे पढ़कर पाएँगे कि किस तरह पतिता कहलाने वाली देवी ने अपने प्रेम और कर्त्तव्य का साथ-साथ निर्वाह कर अपनी आत्म-बलि दे दी है । पुस्तक का अंत सचमुच इतना करुण हो उठा है कि, समाप्ति पर एकबार आह आये बिना आप न रहेंगे । मूल्य—२)

(११) बरवै रामायण सटीक—ले०-पं० जर्नादन मिश्र, 'परमेश'। इस पुस्तक में तत्त्वदर्शी टीकाकार ने गागर में सागर भरने का प्रयास किया है। प्रत्येक बरवै में अर्थ करने के लिए शब्दार्थ, सूचना, अर्थ, अलंकार, अलंकार के लक्षण आदि जितनी ज्ञातव्य बातें हो सकती हैं, एक साथ सभी का समावेश कर दिया है। इस तरह यह टीका पठनीय ही नहीं, संग्रह के योग्य हो गई है। अवश्य देखिए। मूल्य—॥)

(१२) मीमांसा—(उपन्यास) ले०—श्री अनूप साहित्यरत्न। दांपत्य प्रेम का इतना सुंदर सजीव चित्र दूसरी जगह नहीं मिल सकता। पति की ओर से आदर-संवर्द्धन में किसी प्रकार की न्यूनता न होने पर भी पत्नी, अपनी दुर्बलता के कारण, अपने प्रियतम से क्यों झिझकती रही—इसी की यह मीमांसा है। मनोवैज्ञानिक आधार पर पूर्णतः निर्भर रहने के कारण मीमांसा में आप जीवन पाएँगे और लेखक के कलम की दाद आपको देनी ही पड़ेगी। मूल्य—२)

(१३) कला—ले० 'बिजली,' 'छाया' आदि के संपादक श्री हंसकुमार तिवारी। 'कला' पर हिंदी-साहित्य में बड़ी गवेषणा पूर्वक यह मौलिक ग्रंथ लेखक की अध्ययनशीलता का परिचायक ही कहा जायगा। इतनी सुंदर चीज हिंदी में इसके पहले देखने में नहीं आई। यह सर्वथा अध्ययन करने की वस्तु है। मूल्य—१)

(१४) मधुमयी-(कहानी-संग्रह) ले०-बिहार के यशस्वी कवि और विद्वान—पं० जर्नादनप्रसाद झा 'द्विज' एम. ए.। मधुमयी की एक एक कहानी, सीधे हृदय पर चोट करने वाली है। इसमें जैसे लेखक का व्यक्तित्व और उनकी अनुभूति फूट-सी उठी है। कहानियों का ऐसा सुंदर संग्रह अवश्य संग्रहणीय है। मूल्य—१)